मुगल शासन-पद्धति

[Hindi Version of **J. N. Sarkar's** *Mughal Administration*]

मूल लेखक
सर जदुनाथ सरकार

अनुवादक
विजयनारायण चौबे, एम. ए., एम. एड्.
राजकीय जुबिली इण्टर कॉलेज, लखनऊ

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी (प्रा०) लिमिटेड
पुस्तक-प्रकाशक एवं विक्रेता
जयपुर • आगरा • इन्दौर

प्रथम अंग्रेजी संस्करण १६२१
द्वितीयावृत्ति १६२४, तृतीयावृत्ति १६३५, चतुर्थावृत्ति १६५२

प्रथम हिन्दी संस्करण १६६०
द्वितीयावृत्ति १६६४

प्रधान कार्यालय
अस्पताल रोड, आगरा
○
शाखाएं
खजूरी बाजार, इन्दौर ● चौड़ा रास्ता, जयपुर

मूल्य : ६·२५ रुपये

दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा

दो शब्द

किसी एक भाषा की पुस्तक का दूसरी भाषा में अनुवाद करना अत्यन्त कठिन कार्य है और फिर सर जदुनाथ सरकार ऐसे महान् इतिहासकार के ग्रन्थ का अनुवाद करना तो और भी कठिन है। मूल पुस्तक (Mughal Administration) की रचना ऐसे स्रोतों के आधार पर हुई है जो मुख्यतः फारसी भाषा में हैं और मूल पुस्तक में जिनका अनुवाद दिया हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें मूल स्रोतों की आत्मा को लाने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, कह नहीं सकता। फारसी शब्दों के अर्थों को समझने, उनको शुद्ध लिखने आदि में मुझे श्री शाह मुहम्मद बाकर, सहायक अध्यापक (उर्दू), राजकीय जुबिली इण्टर कालेज, लखनऊ से बड़ी सहायता मिली है और मैंने यह यत्न किया है कि मूल भावों की हत्या न हो और वे ज्यों के त्यों पाठक के समक्ष प्रस्तुत किये जायँ। एतदर्थ मैं अपने सहयोगी श्री बाकर महोदय का आभारी हूँ।

इस कार्य को सम्पन्न करने की प्रेरणा मुझे श्री शारदाप्रसाद दुबे, सहायक वि[illegible]ाधिकारी (पाठ्य-पुस्तक), उत्तर प्रदेश, लखनऊ से मिली है और उ[illegible] महती अनुकम्पा से यह कार्य पूर्ण हो सका है। इसके लिए मैं उनका आजन्म [illegible]णी हूँ।

उपर्युक्त परिस्थितियों में इस पुस्तक का अनुवाद करने का दुस्साहस किया गया है। यदि किसी भी अंश तक मुझे इस कार्य को सम्पन्न करने में सफलता मिली, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

विजयनारायण चौबे

वसन्त पंचमी, २०१६

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक के इस संस्करण को मैंने पूर्णतया संशोधित किया है। इस संशोधन-कार्य में मैंने एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम का समुचित प्रयोग किया है जिसे १९३८ तक की शोधों को एक सप्लीमेंट में समाकलित करके पूर्ण बना दिया गया है। इसका फल यह हुआ कि तृतीय संस्करण के कुछ भागों को फिर से लिखा गया और उनका विस्तार किया गया। इसमें (क) कुरान-विधि, व्यवहार (सामान्य विधि) तथा सरकारी निर्णयों की क्रमानुसार वैधानिक रीतियों तथा (ख) संगीत के प्रति 'शरा' के रुख का स्पष्टीकरण जोड़ दिया गया है। मीराते अहमदी की भलीभाँति छानवीन की गयी है, और यत्र-तत्र छोटे-छोटे उपयुक्त विवरणों का समावेश कर लिया गया है। सैन्य-विभाग तथा नगर-प्रशासन नामक दो नये अध्याय और जोड़े गये हैं। पुस्तकों की सूची को पुन: ठीक किया गया है और अन्त में एक परिशिष्ट (Index) भी जोड़ा गया है।

अपने इस रूप में यह पुस्तक दिल्ली के मुग़ल सम्राटों की शासन-पद्धति पर एक पूर्ण विवरणात्मक तथा विवेचनात्मक ग्रन्थ होने का दावा कर सकती है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैंने इस बार अत्यन्त लाभप्रद फारसी पाण्डुलिपि के सम्पूर्ण पाठ की जाँच कर ली है जिसे मैंने "अधिकारियों के कर्तव्यों के रजिस्टर" (Manual of Officers' Duties) की संज्ञा दी है। सन् १९३५ तक (जिस समय तृतीय संस्करण मुद्रित हो रहा था) ज्ञात इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि में शुरू के दो पृष्ठों की कमी थी जिनमें लेखक का नाम, पुस्तक का नाम तथा उसके लिखने की तिथि का उल्लेख था। अब इसे १७१५ ई० में हेदायतउल्ला विहारी द्वारा लिखित हेदायेतुल कवायद की संज्ञा दी गयी है।

इस पुस्तक का विकास जनवरी, १९२० ई० तथा फरवरी, १९२१ ई० में पटना विश्वविद्यालय में भारतीय इतिहास के रीडर की हैसियत से मेरे द्वारा दी गयी छह-छह वक्तृताओं की दो मालाओं से हुआ है। १९२४ ई० में

प्रकाशित द्वितीय संस्करण में दो नये पाठ जोड़े गये थे, और अवैधानिक करों, संवाददाताओं, न्याय आदि भागों को इस प्रकार फिर से लिखा गया कि वे सर्वथा नवीन बन गये थे। अपने अध्ययन के आधारस्वरूप मैंने मुग़ल-साम्राज्य के अखबारात की महती राशि तथा फारसी में लिखे हुए दूसरे प्राचीन सरकारी दस्तावेजों का प्रयोग किया है। ये कागज जयपुर राज्य के रक्षालय तथा आर० ए० एस० (टॉड, पाण्डुलिपि) से प्राप्त हुए हैं। ये सिद्धान्त से भिन्न मुग़ल शासन-पद्धति की वास्तविक कार्य-प्रणाली का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ये दस्तावेज भारत में मुग़ल-शासन के सम्बन्ध में वही महत्त्व रखते हैं जो कि मिस्र के प्रारम्भिक अरब शासन-प्रबन्ध के अध्ययन में (वहाँ के) कागज (papyri) रखते हैं।

मैंने केवल मालगुजारी विभाग की बारीक बातों को छोड़ दिया है।

१०, लेक टेरैस,
कलकत्ता-२६ — जदुनाथ सरकार
जनवरी, १९५२

विषय-सूची

अध्याय १

सरकार, उसके लक्षण एवं उद्देश्य

१. मुग़ल शासन-प्रबन्ध की रूपरेखा का अध्ययन

भारत में मुग़ल-साम्राज्य के इतिहास—कुल क्रमागत सम्राटों की लम्बी कहानी—दिल्ली के राजसिंहासन के लिए उनका युद्ध, अपने विद्रोही सामन्तों एवं स्वतन्त्र पड़ोसियों के विरुद्ध विजयाभिमान तथा भारत की प्राकृतिक सीमा के वाहर उनके साहसिक अभियानों से हम लोग भलीभाँति परिचित हैं। भारत में आये हुए वहुत-से यूरोपीय यात्रियों के लेखों के आधार पर हम मुग़ल-सम्राटों के निजी जीवन, उनके राजदरवार की सजधज एवं उत्सव तथा सड़कों की दशा के वारे में वहुत कुछ जानते हैं। किन्तु मूल फारसी लेखों के आधार पर उनकी शासन-प्रणाली का विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है।

यह कार्य निस्सन्देह वड़ा कठिन है। इसके दो कारण हैं—अंशतः समय की गति के प्रभाव के कारण वहुत-से लेख नष्ट हो गये हैं; और मुख्यतः केवल वे ही लोग जो आधुनिक भारतीय शासन-प्रणाली के वास्तविक संचालन में अनुभवी हैं, मुग़ल शासन-पद्धति को हमारे सम्मुख सजीव रूप में रख सकते हैं। रोमन साम्राज्य के पतन के महान् इतिहासवेत्ता ने भी यह स्वीकार किया है कि अंग्रेजी सेना[1] के कप्तान तथा ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सदस्य के रूप में उसके निजी अनुभव ने ही उसे रोमन सेनानायकों के आक्रमण एवं प्राचीन रोम के सीनेट के वाद-विवाद को समझने के योग्य वनाया। हम भारतीय इतिहास के अतिनिकट के विद्यार्थी इसके लिए पुराने दस्तावेजों एवं अतीत के हस्तलेखों का ही प्रयोग कर सकते हैं। हम लोग केवल मुग़ल शासन-पद्धति के वाह्य रूप का ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; उस पद्धति की वास्तविक कार्य-प्रणाली, उसके आन्तरिक स्रोत एवं प्रत्यक्ष प्रभाव को भलीभाँति वही समझ

---

[1] आधुनिक पैदल सेना के विकास एवं अनुशासन ने मुझे व्यूह एवं सैन्य-दल के सम्बन्ध में एक स्पष्ट विचारधारा दी है और रोमन साम्राज्य के इतिहासवेत्ताओं के लिए हैम्पशायर के गोला फेंकने वाले सिपाहियों के कप्तान निरर्थक नहीं हो गये हैं। [देखिए, गिव्वन की संक्षिप्त जीवनी]

सकता है जो ऐतिहासिक फारसी पाण्डुलिपियों के ज्ञान के साथ-साथ दीर्घकालीन प्रान्तों के शासन में अनुभवी भी हो, अर्थात् जो उत्तरी भारत के सिविल सर्विस के विद्वान सदस्य हों।

आधुनिक यूरोपीय लेखकों ने मुग़ल शासन-प्रबन्ध के केवल दो विभागों, भूमि-कर (land revenue) तथा सेना, का ही विस्तृत अध्ययन किया है। इन दोनों विभागों के विषय में अंग्रेजी में अधिक सामग्री भी उपलब्ध है। अतः मैं इस पुस्तक में सैन्य-विभाग का संक्षिप्त विवरण दूंगा और भूमि-कर के सम्बन्ध में, पाण्डुलिपियों के आधार पर, जो मेरे पूर्ववर्ती लेखकों को अज्ञात थीं, अतिरिक्त सूचना देने में ही अपने को सीमित रखूंगा।

२. वर्तमान में मुग़ल-शासन के चिह्न

हम लोगों के लिए मुग़लकालीन शासन-पद्धति शास्त्रीय आकर्षण की अपेक्षा और अधिक महत्त्व की है। मुग़ल-शासन के अधीनस्थ प्रदेश के बाहर की हिन्दू रियासतों ने भी इस प्रकार की शासन-पद्धति, व्यवस्था, कार्य-प्रणाली, ढाँचा तथा उपाधियों को अपनाया था। यह देखकर आश्चर्य न होगा कि जयपुर और बुन्देलखण्ड के राजसामन्तों ने मुग़ल-पद्धति का ठीक उसी प्रकार अनुसरण किया था जिस प्रकार इस समय बड़ौदा, ग्वालियर, इन्दौर तथा अलवर के दरबारों ने ब्रिटिश शासन-पद्धति का अनुकरण किया है। किन्तु मुग़ल शासन-पद्धति भी तत्कालीन किसी स्वतन्त्र हिन्दू राज्य द्वारा अपनायी गयी पद्धति का ही प्रतिरूप थी। हिन्दू धर्मपरायणता के पक्के पुजारी शिवाजी ने भी सर्वप्रथम महाराष्ट्र में इसी की नकल की थी और बाद में ही उन्होंने अपने दरबार में फारसी पदवियों के स्थान पर संस्कृत उपाधियाँ प्रयुक्त कर अपने शासन के ढाँचे को हिन्दुत्व के रंग में रँगने का यत्न किया था; किन्तु उनके राज्य में भी जहाँ पर मराठी भाषा के उपयुक्त शब्द नहीं थे, बहुत-से विभागों के नाम, सरकारी लेख एवं अधीनस्थ कर्मचारी की उपाधियाँ इस्लामी ही रहीं।

इस प्रकार एक समय ऐसा था जबकि समस्त सभ्य एवं संगठित भारत में मुग़ल-पद्धति ही फैली हुई थी। इस समय भी इसका बिलकुल लोप नहीं हुआ है। इसके चिह्न अब भी अवशेष हैं। इतिहास का चैतन्य विद्यार्थी वर्तमान ब्रिटिश-भारतीय शासन सम्बन्धी प्रासाद के नीचे मुग़लकालीन शासन-पद्धति के ढाँचे का पता लगा सकता है। विगत अठारहवीं शताब्दी में जब अंग्रेजी सौदागरों और कर्णिकों (clerks) के एक दल को यकायक एक अपरिचित भूमि एवं विदेशी जाति पर शासन करना पड़ा, तब उन लोगों ने स्वतः उस

(मैं इस शब्द का प्रयोग अति व्यापक रूप से कर रहा हूँ) समाज अथवा जातिगत भ्रातृत्व पर ही छोड़ दिये गये थे और भारतीय शासन के विद्यार्थी को उसे चुपके से टाल जाना चाहिए।

इस प्रकार, शासन का उद्देश्य अत्यन्त सीमित, भौतिक एवं अत्यन्त निम्न कोटि का था।

४. मुग़ल शासन-पद्धति में विदेशी तत्त्व

सरकारी दस्तावेजों तथा अन्य मौलिक साधनों के आधार पर भारत में मुग़ल-साम्राज्य के सूक्ष्म अध्ययन से हमें कुछ ऐसी बातों का ज्ञान होता है जो मुख्य रूप से इस शासन की विशेषताएँ हैं।

सर्वप्रथम, मुग़ल शासन-पद्धति अपने बादशाहों के धर्म व जाति के रंग में रँगी हुई थी। वे विदेशी मुसलमानी राजवंश के थे, जो भारत के बाहर कुछ देशों में इस्लाम के प्रसार के आठ शताब्दी पश्चात्, भारत में बस गये थे। उन देशों में नवीन शासन-पद्धति का विकास हुआ था।

हमारे तुर्की विजेता अपने साथ अपने नये देश में वही शासन-पद्धति लाये जो भारतेतर मुसलिम देशों में आदर्श समझी जाती थी और जो शताब्दियों के अनुभव से अत्यन्त सफल सिद्ध हो चुकी थी; उदाहरणार्थ, इराक के अब्बासी खलीफाओं तथा मिस्र के फातिमी खलीफाओं की शासन-पद्धति। मुग़ल-शासन भारतीय एवं अभारतीय तत्त्वों का मिश्रण था, अथवा दूसरे शब्दों में सचमुच यह भारतीय वातावरण में ईरानी-अरबी शासन-पद्धति थी।

उनके शासन-सिद्धान्त, उनकी धार्मिक नीति, उनके कर सम्बन्धी नियम, उनके विभागीय प्रबन्ध तथा उनके कर्मचारियों की उपाधियाँ, भारत के बाहर से बनी-बनायी लायी गयी थीं, किन्तु शासित जनता से परिचित एवं उस क्षेत्र में पहले से ही प्रचलित प्राचीन देशी पद्धति से समझौता कर लिया गया था। विदेशी पद्धति की विशेषताओं को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार सुधार लिया गया था। उस समय की प्रचलित भारतीय पद्धतियों एवं व्यावहारिक नियमों की उस सीमा तक प्रतिष्ठा थी जहाँ तक वे समस्त मुसलिम राज्यों के मूल सिद्धान्तों के विपरीत न थे। समस्त अनावश्यक कार्यों, राजनीतिक कौतुकों[२] एवं प्रायः ग्राम-शासन तथा निम्न श्रेणी के कर्मचारियों

---

[२] भूमि-कर वसूल करने से पहले लार्ड क्लाइव प्रति वर्ष मुर्शिदाबाद में 'पन्याह' नामक एक कृत्य किया करता था। यह एक हिन्दू भूमि-कर प्रथा है जो अत्यन्त प्राचीनकाल से ही, मुसलिम-युग से लेकर ब्रिटिशकाल के आरम्भ तक, होती चली आ रही थी।

में भारतीय रीतियाँ प्रचलित थीं, किन्तु दरवार (जो शाहंशाह के लिए व्यक्तिगत विषय था) और उच्चाधिकारी क्षेत्रों में (जिसे फारस तथा मिस्र से प्रोत्साहन मिला था) विदेशी आदर्श का ही बोलवाला था।

मुग़ल-शासन में विदेशीयता का ज्वलन्त उदाहरण प्रान्तीय शासन से सुविधापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है। हैम्वर्ग के प्राध्यापक सी० एच० वेकर लिखते हैं कि "अरव राज्य के आदि में (मिस्र में) दो राजनीतिक कार्य स्पष्ट रूप से पहचाने जाते थे, राज्याधिकार तथा कोप। राज्यपाल को अमीर कहते थे। इसी के अधीन सेना तथा पुलिस थी। इसी के समकक्ष कोपाध्यक्ष था, जिसे 'आमिल' कहते थे। ये दोनों अधिकारी एक-दूसरे पर कड़ी निगाह रखते थे। सैन्य एवं शासन-विभाग के प्रधान के नाते अमीर का प्रभुत्व में प्रथम स्थान था किन्तु वे दोनों पद की दृष्टि से समान थे और कोपाध्यक्ष का शाहंशाह पर अधिक प्रभाव था। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २,** पृ० १३]

सूवेदार (प्रान्तीय शासक) और दीवान (प्रान्त का भूमि-कर अध्यक्ष) का पारस्परिक सम्वन्ध ठीक इसी प्रकार का था। दोनों के वीच अधिकार सम्वन्धी शत्रुता तथा अपने स्वामी से उनके परस्पर दोपारोपण का ज्वलन्त उदाहरण सरकारी दस्तावेजों पर आधारित सत्रहवीं शताब्दी के उड़ीसा के इतिहास में मिलता है क्योंकि प्रोफेसर वेकर के कथनानुसार "एक-दूसरे की कड़ी निगरानी करना उनका कर्तव्य था।" इन दस्तावेजों को मैंने अपनी "स्टडीज़ इन औरंगज़ेव्स रेन" नामक पुस्तक के अध्याय १४, अनुच्छेद १५ में प्रकाशित किया है। रोमन साम्राज्य में प्रान्तीय शासक (जिसे लिगेटस (Legatus) कहते थे) का भूमि-कर अध्यक्ष (प्रोक्युरेटर (Procurator)—दीवान के तुल्य) से निरन्तर विरोध था और वह प्रायः उसकी शिकायत किया करता था। रोमनकालीन ब्रिटेन में रानी वौडिका (Boudicca or Boadicea) के पतन के कुछ ही समय पश्चात् प्रोक्युरेटर ने लिगेटस को छलपूर्वक वापस बुला लिया था।

इस प्रकार, मुसलिम देशों के आदर्श को भारत के वाहर भी शासन के विभिन्न विभागों के विभाजन में अपनाया गया था।

दूसरे, सरकार मूलतः फौजी थी और यद्यपि यह थोड़े समय में देशी वन गयी थी, फिर भी इसने अपने फौजी लक्षण को अन्त तक वनाये रखा। मुग़ल-शासन के प्रत्येक अधिकारी को फौज में भरती होना पड़ता था। उसे मनसवदार (वहुत-से घुड़सवारों का नाममात्र का नायक) वनाया जाता था जो उसके वेतन एवं उसकी सामाजिक स्थिति का द्योतक था। सिविल कर्मचारियों,

न्यायाधीशों, डाक, कर अथवा चुंगी के अध्यक्षों तथा उच्च वेतन-क्रम के लिपिकों और गणकों (Accountants) को भी मनसबदारी अर्थात् सेना की सदस्यता का पद प्रदान किया जाता था। सेना की क्रमिक सूची में उनके नामों का उल्लेख होता था, 'बख्शी' उनका वेतन निश्चित करता था और उनकी पदोन्नति उनके औपचारिक प्रभुत्व की वृद्धि के रूप में होती थी। इससे यह सिद्ध होता है कि शासन का कोष अथवा राज्य व्यय-विभाग सैनिक और सिविल सेवाओं के लिए एक था; वस्तुतः सिविल कोष बिलकुल था ही नहीं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि वेतन-पावना-पत्र (Salary-bills) को बख्शी अथवा सैन्य वेतन अधिकारी ही स्वीकृत करता था, किन्तु (अभियान के समय रणभूमि के सैनिकों के अतिरिक्त) सब लोगों के वेतनों का भुगतान दीवान ही करता था जिसकी गणना एक सिविल अधिकारी के ही रूप में होती थी।

तीसरे, मुग़लकालीन भारत की भूमि-कर-व्यवस्था की मुख्य उल्लेखनीय विशेषता देश की प्राचीन प्रथाओं, कार्य करने की रीति एवं परम्पराओं का ठीक-ठीक अनुसरण करना है। वस्तुतः, प्रारम्भिक मुसलिम विजेताओं ने अत्यन्त बुद्धिमानी से प्राचीन हिन्दू भूमि-कर-व्यवस्था को ज्यों का त्यों कायम रखा था, प्राचीन हिन्दू भूमि-कर अधिकारियों को नियुक्त किया था और जब तक इसमें किसी प्रकार का महत्त्वपूर्ण दोष अथवा गबन न होता तथा नियमानुकूल भूमि-कर वसूल हो जाता था, कदाचित् ही इस विभाग की कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप किया।

यह बात केवल भूमि-कर के लिए ही सत्य है जो सदैव भारत में राजकीय कार्य की अत्यन्त परम्परा-प्राप्त एवं सनातनी शाखा रही है। किन्तु राज्य की आय के अन्य साधन कुरान के नियमों तथा भारत के बाहर प्राचीन मुसलिम देशों की प्रथाओं से ही पूर्ण रूप से प्रभावित थे। भूमि-कर विभाग सम्बन्धी राज्य की वास्तविक कार्यप्रणाली को इस्लाम के धार्मिक कानूनों के अनुकूल बनाने के यत्नों के प्रमाण[3] हमें भारतीय इतिहास में मिलते हैं। इस प्रकार, सत्रहवीं शताब्दी में विकसित मुग़ल-साम्राज्य की सम्पूर्ण भूमि-कर-व्यवस्था अधिक समय से मान्य हिन्दू प्रथाओं तथा आदर्श अरबी सिद्धान्तों, इन दो बातों से प्रभावित थी।

इन दो विरोधी तत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध सदैव उचित और सफल न था और अन्त में भारतीय प्रथाओं का प्राचीन भार फिरोज़शाह तुग़लक और

उदाहरणस्वरूप फिरोज़शाह तुग़लक (इलियट, जिल्द ३, पृ० ३७७)

औरंगजेब ऐसे कुरान के कट्टरपंथियों के शास्त्रानुसारी ओज (orthodox zeal) को अत्यन्त भारी प्रतीत हुआ। उनकी मृत्यु के पश्चात् अथवा उनके जीवन-काल में ही कुरान के सिद्धान्तों के अक्षरशः पालन तथा नयी पद्धति के उन्मूलन के थोड़े ही समय पश्चात् सभी बातें पुनः अपने परम्परागत मार्गों पर आ गयीं। इस विषय पर अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जायगा।

५. उत्पादक के रूप में राज्य

चौथे, मुग़लकालीन भारत में राज्य ही बहुत बड़ी संख्या में कई वस्तुओं का सबसे बड़ा अथवा बड़े पैमाने पर उत्पादक था। खुले बाजार में तैयार वस्तुओं के क्रय करने अथवा ठेकेदारों को अधिक संख्या में वस्तुओं के लिए आदेश देने की राज्य की वर्तमान पद्धति गृह-उद्योग के उस काल में सफल न होती, जबकि विक्रय की दृष्टि से वैयक्तिक क्षमता द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन अज्ञात था। अतः राज्य ही विवश होकर आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करता था।

इसकी आवश्यकता भी अत्यधिक थी। वर्ष में दो बार, बरसात और जाड़े में, बादशाह प्रत्येक मनसबदार को ऋतु के अनुकूल खिलअत प्रदान करता था। सन् १६९० में वेतन एवं जागीर-प्राप्त मनसबदारों की संख्या क्रमशः लगभग ७५०० और ७००० थी। [जवाबिते आलमगीरी, पृ० १५अ] उच्च-पदस्थ अमीरों के हेतु सम्मानसूचक कई वस्त्रों वाली एक पोशाक भी थी। ऋतु के अनुकूल इन दोनों उपहारों के अतिरिक्त राजकुमारों, राजसामन्तों, दास और बहुत-से मनसबदारों तथा दरबारियों को भी बादशाह के चन्द्र और सौर महीनों के अनुसार दोनों जन्म-दिवसों, राज्याभिषेक के चन्द्र मास सम्बन्धी वार्षिकोत्सव, दोनों ईद के अवसरों और औरंगजेब के राज्य तक प्राचीन फारसी वर्ष के नये दिन पर, जबकि सूर्य नवरोज में प्रवेश करता है, सम्मानसूचक वस्त्र दिये जाते थे। नियमानुकूल उन लोगों को भी खिलअत दी जाती थी जो दरबार में उपस्थित कराये जाते थे, छुट्टी लेते थे अथवा पदों पर नियुक्त किये जाते थे। औरंगजेब के राज्यकाल में अपना धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म को अपनाने वालों को भी खिलअत प्रदान की जाती थी।

इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि शासन को वर्ष भर की आवश्यकता के अनुसार बहुत बड़ी संख्या में कपड़ों और सिले हुए वस्त्रों को संचित करना पड़ता था। साम्राज्य के प्रमुख नगरों में राज्य पर अवलम्बित अनेक कारखानों द्वारा इनकी पूर्ति निश्चित रूप से हो जाती थी। यहाँ पर (कभी-कभी सुदूर प्रान्तों से) कुशल कारीगर लाये जाते थे, जो सरकारी

अध्यक्षों (दारोगा) के अन्तर्गत रखे जाते थे और जिन्हें दैनिक मजदूरी दी जाती थी। वे लोग स्वहस्त-निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करते थे जो गोदामों में संचित की जाती थीं।

शाहंशाह की घरेलू उपभोग एवं विलास की विभिन्न सामग्री हेतु भी ऐसा ही किया जाता था। बाजार में उपलब्ध ऐसी वस्तुओं के क्रय करने तथा दूसरी सामग्रियों को आवश्यकता पड़ने के बहुत पहले ही तैयार कराने का कार्य खानसामा का था। कारखानों के विस्तृत अध्ययन से हमें औद्योगिक क्षेत्र में कार्य के वृहत् क्षेत्र का पूर्ण विवरण प्राप्त हो सकेगा।

पाँचवें, मुगल-शासन एक अत्यन्त केन्द्रित निरंकुश राज्य-शासन था। राज्य-शासन के सम्पूर्ण ढाँचे का प्रेरक राज्य-पद ही था। जहाँ पर शासन निरंकुश, सर्वोच्च सत्ता एक ही मनुष्य के हाथ में केन्द्रित, जिलों के बीच यातायात के साधन शिथिल तथा जनता में राजनीतिक चेतना एवं स्वतः किसी कार्य को करने की शक्ति की कमी होती थी, वहाँ पर इसके फलस्वरूप सरकारी पत्र-व्यवहार की बहुतायत और लिखित सरकारी दस्तावेजों की भरमार हो जाती है। आक्रमणों के वास्तविक संचालन के अतिरिक्त शेष परिस्थितियों में मुग़ल-शासन एक कागजी राज्य था। इसके अधिकारियों को बहुत-से रजिस्टर रखने पड़ते थे, जैसे पत्रव्यवहार का रजिस्टर, अधिकारियों के नामों की सूची, विवरण-पंजिका, अधिकारियों की सेवा-पंजिका, प्राप्त समाचारपत्रों एवं निष्क्रान्तों (despatches) का लेखा, हिसाब-किताब का दो अथवा तीन प्रतियों में पूर्ण अथवा संक्षिप्त लेखा। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के सूचनार्थ गुप्तचरों और हरकारों की एक सेना भी नियुक्त थी।

'आईने अकबरी' में वर्णित पद्धति की आलोचना करते हुए एक अनुभवी ऐंग्लो-इण्डियन प्रशासक का कथन है कि "अकबर विस्तृत वर्णन पसन्द व्यक्ति था किन्तु आईने अकबरी में इसे बहुत-चढ़ाकर लिखा गया है। वैसे सर्वत्र यही माना जाता था कि उचित रजिस्टरों के रखने पर ही कार्य का नियन्त्रण निर्भर है, जबकि हमारे समय के अधिकारियों के लिए यह पद्धति पूर्णतया भ्रमात्मक है।" [डब्ल्यू क्रुक्स एन० डब्ल्यू० प्राविन्सेज, पृ० १०१]

६. न्याय एवं व्यवस्था

छठे, न्याय एवं व्यवस्था के प्रति रुझान आधुनिक विचारधाराओं के विपरीत था। न्याय करना तथा व्यवस्था बनाये रखना वर्तमान राज्यों के प्रमुख कर्तव्यों में से एक है, किन्तु मुग़ल-शासन समयानुकूल सुधार एवं प्रसरण के लिए अत्यन्त

निर्बल और अयोग्य था। इसमें निस्सन्देह बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों से देश को बचाने तथा अपने अधिकारियों द्वारा नगरों के जन-धन की रक्षा करने का यत्न किया गया था किन्तु विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र की सुरक्षा का भार स्थानीय लोगों पर ही छोड़ दिया गया था। इसे स्थानीय चौकीदार ही करते थे। ये ग्राम के नौकर होते थे, ग्राम की भूमि अथवा पैदावार के एक अंश से ही इनका भरण-पोषण होता था और इनकी गणना उन अधिकारियों में नहीं होती थी जो राज्य की ओर से वेतन पाते थे तथा जिन पर राज्य का नियन्त्रण होता था। गाँवों की शान्ति एवं सुरक्षा का भार अपने ऊपर न लेकर मुग़ल-शासन ने ग्रामीणों पर ही उनके निजी धन तथा समीपस्थ सड़कों पर यात्रा करने वाले यात्रियों की सुरक्षा का दायित्व मढ़ दिया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राज्य की ओर से एक अधिकारी (फौजदार) की नियुक्ति हुई थी किन्तु उसका अधिकार-क्षेत्र इतना विस्तृत था कि वह उस मण्डल के समस्त ग्रामों की पुलिस की देखभाल करने में असमर्थ था। चारों ओर फैले हुए कुख्यात हिंसात्मक कार्यों जैसे स्थानीय जमींदारों के विद्रोहों एवं डाकुओं के बहुत बड़े गिरोहों द्वारा सुसंगठित धावों को रोकना अथवा बहुत बड़े पैमाने पर भूमि-कर न देने पर दण्ड देना, उसका प्रधान कर्तव्य था।

जहाँ तक न्याय का सम्बन्ध था, मुग़ल शासक न्याय-स्रोत होने का दिखावा करने के प्रेमी थे और अति प्राचीन पूर्वीय पद्धति को अपनाये हुए थे जिसके अनुसार राजा को स्वयं खुले दरबार में मुकदमों का फैसला करना चाहिए। अगले अध्याय में इस विषय पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला जायगा।

७. राज्य द्वारा समस्त सामाजिक कार्यों की उपेक्षा

प्रान्तीय शासन के बारे में चर्चा करने की बहुत ही कम आवश्यकता है क्योंकि प्रान्तों की राजधानियों के कार्य शाही दरबार के कार्यों के प्रतिरूप थे और स्थानीय सूबेदार, दीवान और काजी उन्हीं पद्धतियों का अनुसरण करते थे। एक यूरोपीय लेखक ने बड़े ही उपयुक्त शब्दों में कहा है कि प्रत्येक सूबेदार अपने प्रान्त में 'बादशाह' की भाँति कार्य करने का यत्न करता था।

जनता (विशेष रूप से गाँवों की जनता) के राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन का कोई विवरण प्राप्त नहीं है। इसके लिए पर्याप्त कारण भी है। जैसा कि मैंने पहले ही संकेत कर दिया है, उन दिनों राज्य पुलिस के कर्तव्यों का

प्रचलित थी। किन्तु इस प्रकार के स्वराज्य-प्राप्त भौगोलिक क्षेत्र इतने छोटे थे और उनके कार्य इतने विशुद्ध नागरिक और सामाजिक होते थे कि यह कहना अधिक उचित होगा कि मुग़ल-साम्राज्य के अन्तर्गत ग्रामों और छोटे नगरों को स्थानीय स्वराज्य की अपेक्षा ग्राम्य-स्वराज्य प्राप्त था। वे लोग स्थानीय स्वराज्य का आनन्द लेने वाले नहीं कहे जा सकते हैं जिन्हें राजनीतिक तथा (साम्प्रदायिक एवं जातीय उद्देश्यों से भिन्न) राष्ट्रीय हितों के लिए स्वयं कर लगाने की स्वतन्त्रता न प्राप्त हो।

अध्याय २

सम्राट् एवं विभागीय अध्यक्ष

१. मुगल सम्राट् की वैधानिक स्थिति तथा अधिकार

कुरान के नियमों के अनुसार सम्राट् सच्चे उपासकों का एकमात्र नायक (अमीर उल मुमनीन) और अपने कर्तव्यों के उचित पालन में मुसलिम महा-सभा (जमैत) के प्रति उत्तरदायी था, किन्तु उस पर नियन्त्रण रखने वाली अथवा उसके कार्यों को समझने वाली, जनता के प्रति उत्तरदायी, सभा या मन्त्रि-परिषद् की भाँति, कोई भी वैधानिक वस्तु किसी भी मुसलिम देश में न थी, और न किसी ने इसका अनुमान ही किया था। मुसलिम राज्य सचमुच एक सैनिक राज्य था और अपनी सत्ता के लिए राजा के निरंकुश अधिकारों पर आश्रित रहता था और वही इसका प्रधान सेनापति भी होता था। रोमन सम्राटों के कार्य भी ऐसे ही थे किन्तु रोम के विधानानुसार सम्राट् की निरंकुशता के नियन्त्रण के लिए, मुख्य अधिकारियों के लोकप्रिय निर्वाचन तथा राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में राज्य-सभा की स्वीकृति प्राप्त की जाती थी (व्यवहार में यद्यपि यह निरर्थक थी।) मुसलिम-जगत् में सिद्धान्त रूप में भी इस प्रकार के नियन्त्रण का अभाव था, यद्यपि व्यवहार में सम्राट् के कार्य मुसलिम सैन्य-दल के भय तथा सामाजिक घृणा उत्पन्न करने की उसकी अनिच्छा से प्रभावित थे।

सम्राट् ने कुरान के नियमों का उल्लंघन किया है, फलतः वह राज्य करने के लिए अयोग्य है और राजसिंहासन से उसे हटा दिया जाय, ऐसा निर्णय देने के सम्बन्ध में बहुत-से उलेमा निस्संदेह स्वतन्त्र थे, किन्तु इस प्रकार के निर्णय को लागू करने का एकमात्र साधन विद्रोह ही था। कोई वैधानिक समिति नहीं थी जो शान्तिपूर्वक एक बादशाह को राजगद्दी से हटा देती तथा दूसरे को सिंहासनारूढ़ करा देती। एक अत्याचारी सुल्तान के हटाने में सफलता का अर्थ एक बहुत बड़ी सैनिक शक्ति के साथ गद्दी पाने के एकजूटे अधिकारी का उदय है। राज्य की स्थायी सेना वस्तुतः राजाज्ञा का पालन करने के लिए ही बाध्य थी, न कि उलेमाओं और मन्त्रि-परिषद् की।

मुग़ल शासकों के पास कोई स्थायी मन्त्रि-परिषद् न थी। सम्राट् के बाद वजीर अथवा दीवान ही राज्य का सबसे बड़ा अधिकारी था। किन्तु दूसरे अधिकारी किसी भी अर्थ में उसके सहयोगी न थे। वे निश्चित रूप से उससे निम्न श्रेणी के थे और मन्त्री कहलाने की अपेक्षा सचिव कहलाने के अधिकारी थे क्योंकि उनके सभी कार्यों को वजीर दुहरा सकता था और राजाज्ञा प्रायः उसी के द्वारा उन लोगों तक पहुँचती थी।

व्यावहारिक रूप में जब सम्राट् दीवाने-खास में बैठता था, तो दूसरे उच्चाधिकारी (जैसे प्रधान बख्शी, प्रधान काजी, खानसामा तथा प्रधान सेनापति भी) वजीर के साथ बैठते थे और उनसे भी सलाह ली जाती थी। किन्तु राज्य के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को सम्राट् और वजीर, दूसरे मन्त्रियों के ज्ञान के बिना ही, स्वतः तय कर लेते थे। इसके कहने की तो आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती है कि न तो निम्न श्रेणी के मन्त्री ही और न वजीर ही राजेच्छा को नियन्त्रित कर सकते थे। वे परामर्श दे सकते थे किन्तु वोट नहीं दे सकते थे। राजा के प्रत्यक्ष रूप से कुमार्ग का अनुसरण करने पर भी उनके असुरक्षित एवं परतन्त्र पद ने उन्हें राजा का विरोध न करने के लिए विवश कर दिया था। इस प्रकार मुग़ल-शासन व्यक्ति विशेष का शासन था और औरंगजेब तो सचमुच अपने समकालीन चौदहवें लुई की भाँति स्वयं ही अपना प्रधानमन्त्री था।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक मन्त्रिमण्डल की भाँति मुग़ल-सम्राटों के पास कोई मन्त्रिमण्डल न था। उनके मन्त्री केवल सचिव मात्र ही थे जो प्रत्येक कार्य में राजेच्छा की पूर्ति किया करते थे और साधारण अनुरोध एवं अन्तर्निहित चेतावनी के अतिरिक्त वे राजा की नीति को कभी भी प्रभावित नहीं कर सकते थे। यदि राजा उनकी सलाह को अस्वीकृत कर देता था तो वे कभी भी त्यागपत्र नहीं देते थे। संक्षेप में, सम्राट् की सुषुप्तावस्था में ही मन्त्री राज्य-संचालन करते थे। इस प्रकार काम न्त्रियों द्वारा नियन्त्रण सचमुच विधान (यदि मैं इस नाम का प्रयोग करूँ, जहाँ पर इस प्रकार की कोई भी वस्तु नहीं थी) की आत्मा के विरुद्ध था। यह उस समय की अराजकता का द्योतक था जिस समय इंगलैण्ड में विटेनजेमोट (Witenagemot) ऐंग्लो-सैक्सन-काल में प्रभावपूर्ण ढंग से राज्य-शासन को नियन्त्रित किये हुए थी।

मुग़ल शाहंशाह की अपरिमित शक्ति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह राज्य और धर्म दोनों का प्रधान था। प्रत्येक मुसलमान शासक विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से उस समय का खलीफा अथवा मुसलमानों की श्रेणी में पैगम्बर का प्रतिनिधि का उत्तराधिकारी था और जब तक वह

उलेमाओं के निर्णय से राजसिंहासन से च्युत नहीं किया जाता था तब तक उसकी शक्ति महान् थी।

मुग़ल बादशाहों को दूसरे मुसलमान बादशाहों की भाँति दो प्रकार के कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। एक तो राजा की तरह उन्हें अपने राज्य की समस्त जनता का शासन करना था और दूसरे सम्प्रदाय विशेष के धर्म का प्रतिनिधि तथा धर्मरक्षक होना पड़ता था। अतः वह प्रत्येक मुसलमान जनता से उसकी वार्षिक आय का चालीसवाँ भाग 'जकात' के रूप में वसूल करता था। इसे वह उन्हीं के लाभ के हेतु व्यय करने के लिए विवश था, जैसे मसजिदों का निर्माण करना, धार्मिक व्यक्तियों एवं उलेमाओं की आर्थिक सहायता करना, फकीरों की दरगाहों और कब्रों की आर्थिक सहायता करना तथा मुसलिम भिखमंगों को दान देने एवं मुसलिम स्त्रियों के विवाहोत्सव के अवसर पर दहेज देना आदि। भूमि-कर अथवा चुंगी की ही भाँति जकात भी जन-कोष में एकत्र होता था। शाहंशाह के धर्म और राज्य के प्रधान होने का ज्वलन्त उदाहरण यह है कि उत्तरकालीन मुसलमान शासकों ने 'जकात' को अपनी निजी आवश्यकता तथा शासन के साधारण कार्यों में व्यय करके इस विश्वास का दुरुपयोग किया था।

२. मुग़ल सम्राट् का दैनिक जीवन

मुग़ल सम्राट् किस प्रकार अपने दिन व्यतीत करते थे, इसका पूर्ण विवरण हमें फारसी इतिहास में भलीभाँति मिलता है। [देखिए, **स्टडीज इन औरंगज़ेब्स रेन, अध्याय २**]

प्रातःकालीन नमाज़ एवं धार्मिक पाठ तथा झरोखा-दर्शन के पश्चात्, जहाँ से वह गज-युद्ध और अश्वारोहियों की कवायद देखता था, बादशाह दीवाने-आम में दो घण्टे तक दरबार करता था। प्रधान बख्शी सैनिक अधिकारियों के प्रार्थनापत्रों के सम्बन्ध में उसके समक्ष विवरण प्रस्तुत करता था और तत्काल ही उनसे सम्बन्धित राजाज्ञा भी प्राप्त कर लेता था जिसके अनुसार कुछ की पदोन्नति तथा कुछ की नये पदों पर नियुक्ति होती थी। तत्पश्चात् विभिन्न प्रान्तों से आये हुए और किसी प्रान्त में अथवा पद पर नये नियुक्त किये गये अधिकारी विभागाध्यक्षों द्वारा बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किये जाते थे। इसके पश्चात् शाही भूमि अथवा बादशाह के निजी कोष के लिपिकों की बारी आती थी। अपने-अपने अध्यक्षों के माध्यम से वे बादशाह के सम्मुख अपने विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव उपस्थित करते थे और उनके सम्बन्ध में राजाज्ञा प्राप्त करते थे।

बादशाह के विश्वस्त राजसेवक इसके उपरान्त राजकुमारों, प्रान्तपतियों तथा दूसरे प्रान्तीय अधिकारियों द्वारा भेजे गये पत्रों तथा उपहार की वस्तुओं को उनके सम्मुख रखते थे। राजकुमारों तथा मुख्य अधिकारियों के पत्रों को सम्राट् स्वयं पढ़ते थे; शेष पत्रों का संक्षिप्त विवरण उन्हें पढ़कर सुनाया जाता था। इस कार्य की समाप्ति के पश्चात् मुख्य सदर प्रान्तीय सदरों के यहाँ से आये हुए पत्रों का विवरण देता था। वह जरूरतमन्द विद्वानों, सैयदों, शेखों और धार्मिक व्यक्तियों की ओर बादशाह का ध्यान आकर्षित करता और उनके लिए दानस्वरूप धन प्राप्त करता था।

तदनन्तर मनसबों, जागीरों, नकद धन तथा दूसरे आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में पूर्व-आदेशों को दूसरी बार पुष्टि के लिए बादशाह के सम्मुख रखा जाता था। तत्पश्चात् शाही अस्तबल के कर्मचारी बादशाह के समक्ष अश्वों और गजों का इस दृष्टि से प्रदर्शन करते थे जिससे वह यह जान सके कि उनका भरण-पोषण भलीभाँति हुआ है अथवा उनके लिए निश्चित की गयी खुराक का दुरुपयोग हुआ है।

जनसाधारण के चले जाने के पश्चात् बादशाह अपने उच्च मन्त्रियों तथा चुने हुए व्यक्तियों से दीवाने-खास में मिलता तथा गोपनीय विषयों के सम्बन्ध में कार्यवाही करता था। यहीं पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्रों का उत्तर लिखा जाता था और बादशाह के मौखिक आदेशों के अनुसार दूसरे पत्रों के उत्तर में राजाज्ञा (फरमान) तैयार की जाती थी। भूमि-कर का सर्वोच्च अधिकारी राज्य-भूमि आदि के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर विवरण प्रस्तुत करता था और प्रत्येक के विषय में बादशाह की इच्छा जान लेता था। प्रधान दान-वितरक (The Head Almoner) बादशाह का ध्यान उन दीन व्यक्तियों की मुख्य समस्याओं की ओर आकर्षित करता था जो दान पाते थे। कुशल कारीगरों एवं जौहरियों आदि के कार्य तथा राजकीय भवन-निर्माण-योजना की छानबीन की जाती थी और उन पर विचार-विनिमय होता था।

आवश्यकता पड़ने पर, इसके पश्चात्, शाह बुर्ज पर गुप्त-परिषद् की बैठक होती थी जिसमें केवल वजीर और कभी-कभी विशेष रूप से आमन्त्रित एक या दो अधिकारी भाग लेते थे।

यदि कोई कार्य करना होता था तो अपराह्न में तीन बजे एक छोटा-सा दरबार लगता था। दरबारी और उस रात्रि के रक्षकों के अधिकारी सन्ध्या समय को सलामी देते थे और राजकीय ध्वज (कुर) फहराया जाता था।

सन्ध्या समय दीपकों के जल जाने के पश्चात् बादशाह दीवाने-खास में

'शायरी' करवाता था। शाहजहाँ अपने चुने हुए साथियों के साथ यहाँ लगभग दो घण्टे व्यतीत करता था। इसमें से कुछ समय वह शासन-प्रबन्ध में तथा कुछ समय गायन, वादन, नृत्य आदि मनोरंजनों में व्यतीत करता था। औरंगजेब कट्टर धर्मपंथी था। उसके दरवार में किसी भी प्रकार का गायन अथवा नृत्य नहीं होता था। वह केवल राज-काज का ही संचालन करता था। वजीर भूमि-कर सम्वन्धी सभी विषयों के वारे में विवरण प्रस्तुत करता था और उन पर उसकी आज्ञा प्राप्त करता था। राज्य के दूसरे कार्यों का भी सम्पादन यहीं पर होता था।

सप्ताह के तीन दिन इस दैनिक कार्य में परिवर्तन हो जाया करता था, जैसे शुक्रवार (मुसलमानी स्नान-दिवस था), गुरुवार (आधे दिन की छुट्टी होती थी) और बुधवार (न्याय का दिन था)। इन दिनों दरवारे-आम नहीं लगता था और वादशाह मुकदमों का फैसला करने के लिए दीवाने-खास में वैठता था।

३. मुख्य विभाग एवं उनके प्रधान

मुग़ल-शासन के निम्नलिखित मुख्य विभाग थे :

(१) राज्य-कोष एवं आय-विभाग (उच्च दीवान के अधीन)।

(२) राज-परिवार विभाग (खानसामा अथवा प्रधान भांडागारिक (High Steward) के अधीन)।

(३) सैन्य वेतन एवं लेखा विभाग (शाही बख्शी के अधीन)।

(४) व्यावहारिक तथा आपराधिक दोनों प्रकार की धार्मिक विधि (काजी के अधीन)।

(५) धार्मिक दान आदि (प्रधान सदर के अधीन)।

(६) जन-सदाचार की देखरेख (Censorship of Public Morals) (मुहतसिब के अधीन)।

इनसे निम्न श्रेणी के किन्तु लगभग उपर्युक्त विभागों के ही समकक्ष निम्नलिखित विभाग भी थे :

(७) तोपखाना (तोपखाना के दारोगा अथवा मीर आतिश के अधीन)।

(८) डाक और गुप्तचर विभाग (डाक-चौकी के दारोगा के अधीन)।

असंख्य कारखाने (फैक्टरी तथा गोदाम) भी थे। इनमें से प्रत्येक की देखरेख एक दारोगा करता था किन्तु ये विभाग न थे। इनमें से वहुत-से खानसामा के अधीन थे।

४. वज़ीर या महामात्य (Chancellor)

मुग़ल-साम्राज्य में वज़ीर[1] शब्द का अर्थ प्रधानमंत्री था। यह एक सम्मानसूचक उपाधि थी। यह आवश्यक न था कि इसके अधीन शासन का कोई मुख्य विभाग हो, किन्तु निस्सन्देह वह आय-विभाग का प्रधान था। यह अधिकार उसे दीवान होने के नाते ही प्राप्त था। सभी दीवान वज़ीर नहीं होते थे। किसी हिन्दू दीवान को वज़ीर का पद दिये जाने का उदाहरण नहीं मिलता है। अकबर के राज्य में प्रधानमंत्री को वकील कहते थे और वित्त-मंत्री को वज़ीर कहते थे। इनके अतिरिक्त दीवाने कुल तथा जागीरों, बुयूतातों और धर्मार्थ अनुदानों (सदात) के भी दीवान होते थे। [आईने अकबरी, अंग्रेज़ी अनुवाद, जिल्द १, पृ० २६०-२६८]

प्रारम्भ में वज़ीर आय-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। धीरे-धीरे दूसरे विभाग भी इसी के नियन्त्रण में आ गये। बादशाह के अयोग्य, विलासी अथवा अल्पवयस्क होने पर तो वज़ीर सेना पर भी नियन्त्रण रखता था। इस प्रकार आरम्भ में वज़ीर का पद केवल जनसाधारण से सम्बन्ध रखता था और सैनिक-क्षेत्र में उसका उच्चपदस्थ होना अस्वाभाविक एवं शाही पतन का द्योतक था। निस्सन्देह वज़ीर से मुग़ल राज्य के प्रत्येक दूसरे उच्च अधिकारियों की भाँति सैन्य-संचालन की आशा की जाती थी और प्रायः वह साधारण अभियानों का नेतृत्व भी करता था किन्तु बादशाह के समीप निरन्तर

---

१ विद्वान लोग निर्णय करने के अर्थ में प्रयुक्त पह्लवी भाषा के 'विचिर' तथा संस्कृत भाषा के 'विचार' शब्द से 'वज़ीर' शब्द की उत्पत्ति का होना बतलाते हैं। प्राचीनकाल के खलीफाओं के अधीन सेक्रेटरी ऑव स्टेट (राज्य-सचिव) को 'कातिब' अर्थात् 'लेखक' कहा जाता था। किन्तु अब्बासी खलीफाओं ने जिन्होंने अधिकांश फारसी शासन-व्यवस्था को अपनाया था, सर्वप्रथम इसे 'वज़ीर' शब्द से विभूषित किया था। धीरे-धीरे वज़ीर ने लिखने के कार्य के अतिरिक्त कोषाध्यक्ष तथा प्रार्थनापत्रों पर निर्णय देने के अधिकार को भी अपना लिया। ऑटोमान तुर्कों के समय वज़ीरों की संख्या में विभिन्नता थी। कभी-कभी इनकी संख्या सात तक पहुँच जाती थी। नियमानुसार उत्तर-काल में 'वज़ीर' उच्च अधिकारियों की पदवी मात्र था। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ५, पृ० ११३५] दकन के सुल्तानों के समय में भी यही दशा थी जबकि (शाहजी भोंसले अथवा जंजीरा के अबीसीनियन शासकों के सदृश) कोई भी उच्च अधिकारी वज़ीर कहलाता था। उत्तर भारत में यह बात न थी।

उपस्थित रहने तथा राजकीय शिविर से दूर होने के कारण वह अधिक समय तक सैनिक-अभियान का दायित्व ग्रहण करने से वंचित रहता था।

वज़ीर के ही कार्यालय में मालगुज़ारी के सभी कागज, सूबों तथा सैन्य-क्षेत्र से आये हुए पत्र, भेंट एवं हरजाने लिये जाते थे। अनेक अवसरों पर वह राजा का प्रतिनिधित्व भी करता था। वह बादशाह के संकेत पर अपनी 'आज्ञा से' (हस्बुलहुक्म) पत्र लिखा करता था। थोड़े अथवा पूर्व-निर्धारित धन के अतिरिक्त भुगतान सम्बन्धी सभी आदेशों पर दीवान ही हस्ताक्षर करता था। रणभूमि की सेना तथा राजकीय कारखानों के कर्मचारियों को छोड़कर शेष सभी प्रकार का भुगतान उसी के विभाग द्वारा किया जाता था। इसीलिए मालगुजारी-संग्रह सम्बन्धी सभी बातों का निर्णय भी दीवान ही करता था। किन्तु महत्त्वपूर्ण विषयों पर वह बादशाह से परामर्श करता था और राजकीय कोष के सम्बन्ध में प्रायः उसके समक्ष विवरण भी प्रस्तुत करता था। मुग़ल-कालीन प्रसिद्ध वज़ीरों में से कुछ फारसी-गद्य के पंडित भी थे और वे अपने स्वामी की ओर से विदेशी शासकों के पास राजकीय पत्र लिखने में सचिव का कार्य करते थे।

केवल औरंगजेब के अधःपतित वंशजों के समय में ही वज़ीर मध्यकालीन फ्रांस के 'मेयर ऑव द पैलेस' की भाँति राज्य के वास्तविक शासक हो गये थे।

५. बख्शी अथवा वेतनाध्यक्ष

मुग़ल राज्य का प्रत्येक अधिकारी घुड़सवारों की संख्या के अनुसार उनके नायक के रूप में भरती होता था। यह पदवी उसके वेतन का हिसाब लगाने तथा पद-ज्ञान के लिए एक सुविधाजनक साधन मात्र थी। इसका यह अर्थ नहीं था कि उसे सचमुच उतने घुड़सवार अपनी सेना में रखने ही पड़ते थे। इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से सिविल अधिकारी भी सैन्य-विभाग से सम्बन्ध रखते थे। इसीलिए सभी अधिकारियों के वेतन-पावना-पत्रों (Salary bills) को सेना का वेतनाध्यक्ष ही तैयार और स्वीकृत करता था।

६. खानसामा

खानसामा मुग़लकाल का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अधिकारी था क्योंकि वह राज्य-परिवार-विभाग[२] का प्रधान होता था और राजा के यात्रा तथा अन्य

---

[२] मनुची का कथन है कि छोटी-बड़ी दोनों वस्तुओं से सम्बन्धित राज्य-परिवार के सभी प्रकार के व्यय का दायित्व उसी पर था। [स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ४१९] मेरे द्वारा रचित "हिस्ट्री ऑव औरंगजेब" जिल्द ३, अध्याय २७, अनुच्छेद ९ को भी देखें।

अभियानों के समय उसके साथ-साथ जाता था। बादशाह के समस्त निजी नौकर इसी अधिकारी के नियन्त्रण में रहते थे। वह बादशाह के दैनिक व्यय, भोजन, शिविर, गोदाम आदि की भी देखभाल करता था। स्वभावतः खानसामा अत्यन्त विश्वासपात्र और प्रभावशाली व्यक्ति था। खानसामों में से वज़ीरों की नियुक्ति किये जाने के उदाहरण मिलते हैं।

७. न्याय-व्यवस्था

प्राचीनकाल के खलीफाओं की भाँति सैद्धान्तिक दृष्टि से बादशाह ही सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था। वह न्याय-दरबार करता था और प्रति बुध-वार को महत्त्वपूर्ण मुकदमों का फैसला स्वयं करता था। प्राथमिक न्यायालय होने की अपेक्षा उसका दरबार अपील का सबसे बड़ा न्यायालय होता था। काजी केवल धार्मिक मुकदमों का न्यायाधीश होता था। वह इस्लामी नियमों के अनु-सार ही उनका फैसला करता था। मुफ्ती जो कानून-विभाग का स्नातक होता था, काजी की सहायता करता था। यह न्यायशास्त्र के प्राचीन अरबी ग्रन्थों का अध्ययन करता था और अभियोग सम्बन्धी व्यावहारिक तथ्यों को उसे बतलाता था। तत्पश्चात् काजी अपना निर्णय सुनाता था। (साधारण नियमों के अनुसार निर्णीत अभियोगों के सम्बन्ध में छठा अध्याय देखें।)

काजी की महती शक्ति एवं उसके अनुत्तरदायित्वपूर्ण पद ने उसे अपने कार्यालय को भ्रष्टाचार के एक वृहत् क्षेत्र में परिणत करने के योग्य बना दिया था। कुछ प्रतिष्ठित काजियों को छोड़कर मुग़लकाल के सभी काजी रिश्वत लेने के लिए कुख्यात थे। [हिस्ट्री ऑव औरंगजेब, जिल्द ३, अध्याय २७, अनुच्छेद १०] साम्राज्य के प्रधान काजी को काजी-उल-कजात कहते थे। उसे शाही शिविर का काजी भी कहते थे। वह सदैव बादशाह के साथ-साथ रहता था। प्रत्येक शहर और बड़े गाँवों में भी एक स्थायी काजी होता था। इसकी नियुक्ति प्रधान काजी करता था। प्रायः रिश्वत लेकर ये पद बेच दिये जाते थे और मुग़लकाल में काजी का विभाग एक कहावत तथा तिरस्कार का पात्र बन गया था।

नव-नियुक्त काजी को दीवान द्वारा दिया गया साधारण कार्यभार निम्न-लिखित है :

"न्यायसंगत हो, ईमानदार हो, निष्पक्ष हो, दोनों पक्षों के समक्ष, न्यायालय में और महकमे में मुकदमा सुनो।

"जिस स्थान पर कार्य करते हो उस स्थान के लोगों से न तो भेंट

लो और न प्रत्येक व्यक्ति अथवा व्यक्ति विशेष द्वारा आयोजित उत्सव में सम्मिलित हो।

"अपने निर्णयादेशों, विक्री-पत्रों (वयनामों), भोग वन्धकों (रेहननामों) तथा दूसरे व्यावहारिक पत्रों को अत्यन्त सावधानी से लिखो जिससे विद्वान लोग उनमें त्रुटि न निकाल सकें और तुम्हें लज्जित न कर सकें।[3]

"फक्र (दरिद्रता) को अपना फख्र (विभव) समझो।"

[हेदायेतुल कवायद, पृ० ४३-४४]

मुकदमों के विवरणों एवं न्यायशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन में ही मुफ्ती को अपने सम्पूर्ण दिन-रात व्यतीत करने पड़ते थे जिससे व्यावहारिक पूर्व-दृष्टान्तों को लोग जान सकें। वह काजी के ही अधीन कार्य करता था। अतः जव कभी भी काजी द्वारा दिये गये किसी मुकदमे का निर्णय उसे पूर्व-दृष्टान्तों के विरुद्ध जान पड़ता था तो वह काजी से नम्रतापूर्वक निवेदन करता था, "महोदय! अमुक पुस्तक में दिये हुए इसी प्रकार के मुकदमे का निर्णय इस तरह दिया हुआ है। क्या ही अच्छा होता यदि आप उस पुस्तक के पढ़ने के पश्चात् अपना निर्णय देते।"

अवकाश के समय प्रामाणिक ग्रन्थों से न्याय-सिद्धान्त सम्वन्धी वाद-विवादों एवं व्यावहारिक निर्णयों का अनुकरण कर मुफ्ती को स्वयं कुशल वन जाना चाहिए। [हेदायेतुल कवायद, पृ० ४५-४६]

सदर धार्मिक व्यक्तियों, विद्वानों एवं भिक्षुओं के पालन-पोषण के निमित्त वादशाहों तथा राजकुमारों द्वारा दी हुई भूमि का प्रवन्धक एवं निर्णायक होता था। इस प्रकार के अनुदानों (grants) के सदुपयोगों को देखना तथा नये अनुदानों के लिए प्रार्थनापत्रों की छानवीन करना उसका कर्तव्य था। प्रायः नकद रुपये की भी सहायता दी जाती थी। माफी में दी हुई भूमि को तुर्की में सयुर्ग़ल, अरवी में मददेमाश, अयमा आदि नामों से पुकारा जाता

---

[3] सत्रहवीं शताव्दी के मध्य के दो मराठी सनदों में दकन के काजी के कर्तव्यों का उल्लेख इस प्रकार है :

"कानूनी मुकदमों का फैसला करना, अत्याचारों एवं झगड़ों को दवाना, अनाथ वालिकाओं के विवाहों का प्रवन्ध करना, धार्मिक नियमों के अनुकूल मृत मनुष्यों की सम्पत्ति का विभाजन करना और धार्मिक नियमानुसार निर्णयों तथा चकवन्दी के दस्तावेजों को लिखना। इन काजियों में से कुछ मुहतसिव भी थे जिन्हें अपने कर्तव्यों के अतिरिक्त उसके कर्तव्यों का भी पालन करना पड़ता था। [मावजी तथा परसनीस, सनद एवं पत्र, पृ० ७६, ८१]

था। सदर बादशाह का दान-वितरक (almoner) ही था। रमजान के महीने तथा दूसरे धर्म एवं दरबार के उत्सवों पर बादशाहों द्वारा दिये गये दान के बहुत बड़े धन को (औरंगजेब के राज्यकाल में डेढ़ लाख) वही खर्च करता था। उसे अपने पद के कारण रिश्वत एवं सट्टों द्वारा स्वयं धनी बनने की अपरिमित सम्भावनाएँ प्राप्त थीं। अकबर के राज्यकाल में सदर धन लेकर बिक्री करने तथा अपनी क्रूरताओं के लिए कुख्यात थे। साम्राज्य के प्रमुख सदर को सदर-उस-सदर, सदरेजहाँ अथवा सदरेकुल कहते थे। इनके अतिरिक्त प्रान्त में भी एक स्थानीय सदर होता था।

प्रमुख सदर को इस बात का आदेश था कि जब कभी भी वह प्रान्तीय सदरों को उनके पदों पर भेजे तब उसे उन्हें प्रान्तानुसार दैनिक भत्तों एवं माफी में दी हुई भूमि के पाने वालों की सूचियों तथा मकतबों के सहायक अध्यापकों, अयमादारों, रोजीनादारों, विद्यार्थियों और पैतृक तथा नवीन वृत्तियों के पाने वाले दूसरे व्यक्तियों के भागने या मरने से सम्बन्धित शाही आदेशों की प्रतियों को दे देना चाहिए और राजकीय आदेशानुसार ही उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। [हेदायेतुल कवायद, पृ० ४१-४२]

८. जनाचार-दोषवेचन (The Censor of Public Morals)

इस्लामी विधि के अनुसार जन-जीवन को धार्मिक ग्रन्थों के नियमों के अनुकूल आचरण करने के निमित्त निरीक्षक अथवा जनाचार-दोषवेचक (Censor of Public Morals) (मुहतसिब) की नियुक्ति करना बादशाह का कर्तव्य था। पैगम्बर की आज्ञाओं को लागू करना तथा उसके द्वारा निश्चित रीति व रस्मों (आम्र व नही)—जैसे चुआई हुई तथा सड़ाकर बनायी हुई शराब, भंग तथा दूसरे मादक पेय-पदार्थों का सेवन करने, जुआ खेलने, व्यभिचार करने आदि—को रोकना मुहतसिब के कार्य थे। सूखे मादक पदार्थों का सेवन करना निन्दनीय नहीं समझा जाता था। यद्यपि औरंगजेब ने अपने राज्य में भंग की खेती पर प्रतिबन्ध लगा दिया था किन्तु अफीम और गाँजा के सेवन की आज्ञा थी। धर्म-विरुद्ध आचरण एवं धर्म-प्रवर्तक की निन्दा करने के लिए तथा मुसलमानों द्वारा रोजा न रखने और प्रतिदिन नमाज़ न पढ़ने के लिए दण्डित करना भी मुहतसिब के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत था। वह सिपाहियों के एक दल के साथ बाजार में निकल जाता था और जहाँ कहीं भी उसे शराब की दुकानें, शराब तैयार करने के स्थान और जुआ खेलने के अड्डे मिल जाते थे, उन्हें वह लुटवा लेता अथवा गिरवा देता था। वह भंग बनाने के बरतनों तथा बाल्टियों को

तुड़वा देता था और मुसलमानों की बस्तियों में धार्मिक रीतियों की कड़ी पाबन्दियों पर जोर देता था। कभी-कभी उसके अधिकारियों को उन निर्भीक पापियों के साथ सशस्त्र संघर्ष भी करना पड़ता था जो उनके झगड़ा करने के लिए उद्यत हो जाते थे। नव-निर्मित मन्दिरों को विध्वंस करना भी उसका एक कर्तव्य था। [हिस्ट्री ऑव औरंगजेब, जिल्द ३, अध्याय २८, अनुच्छेद २ तथा ३४, परिशिष्ट ५]

नव-नियुक्त मुहतसिब को उसके कर्तव्य के रूप में निम्नलिखित निर्देश दिये जाते थे :

"तुम्हें उन मुसलमानों को, जो सच्ची धर्मनिष्ठा के साथ उपासना के नियमों तथा मुसलमानी आचरण अथवा रीति-रिवाजों को नहीं जानते हैं, इनके सम्बन्ध में शिक्षा दे देनी चाहिए। यदि वे अपनी अयोग्यता जताते हों तो उनकी निन्दा करनी चाहिए अथवा उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य करना चाहिए।

"यदि बाजार तथा गलियों में तुम देखते हो कि किसी ने नियमों और रीति-रिवाजों के विरुद्ध सड़क के एक भाग को रोक रखा है, रास्ते को बन्द कर दिया है, अथवा उस पर कूड़ा-करकट फेंक दिया है, या किसी ने सड़कों पर चलने वाले लोगों और गाड़ियों के आने-जाने के लिए बाजार के सुरक्षित क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया है और वहाँ अपनी दुकान खोल रखी है, तो ऐसी परिस्थिति में तुम्हें उन्हें नियमों का उल्लंघन न करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

"शहरों में न तो मादक पेयों के बेचने की और न तवायफ़ों (नर्तकियाँ) के रहने की आज्ञा दो, क्योंकि ये बातें धार्मिक नियमों के विरुद्ध हैं।

"कुरान की आयतों का उल्लंघन करने वालों को नेक सलाह तथा चेतावनी दो। पहले निष्ठुरता न दिखलाओ अन्यथा तुम्हें वे लोग कष्ट पहुँचायेंगे। सर्वप्रथम उनके नेताओं के पास अपना परामर्श भेजो और यदि वे लोग तुम्हारी बातों पर ध्यान न दें तो गवर्नर को इस सम्बन्ध में सूचित कर दो।" [हेदायेतुल कवायद, पृ० ४७-४८]

आगे चलकर कुछ प्रान्तों में मुहतसिब को बाजार में वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करने के साथ-साथ ठीक बाट तथा नाप के प्रयोग को लागू करना पड़ता था। [सनद और पत्र, पृ० ८१; मीराते अहमदी, सप्लीमेण्ट, पृ० १७४] किन्तु दूसरे स्थानों पर कुछ दूसरे ही अधिकारी, उदाहरणार्थ कोतवाल, इस कार्य को करते थे।

अध्याय ३

राजकोष एवं राज-परिवार (Household) विभाग

१. दीवान अथवा राजकोष महामात्य (Chancellor of the Exchequer)

उच्च महामात्य (High Chancellor) (दीवाने-आला) राज्य-कर-विभाग का अध्यक्ष होता था। यह वज़ीर की उपाधि से विभूषित था। दीवानेतन (वेतनाध्यक्ष) और दीवाने-खालसा (राज्य-भूमि अध्यक्ष) इसके दो सहायक थे।

पूर्वीय भाषा-विद् 'दीवान' शब्द को औपकाल्पनिक (hypothetical) ईरानियन शब्द 'दीवान' से उत्पन्न हुआ मानते हैं। यह 'दवीर' शब्द से सम्बन्धित है (तुर्की राजकीय उपाधि वितिक्ची की भाँति), जिसका अर्थ लेखक है। यूनान (सीरिया और मिस्र) तथा अरब आक्रमण के प्रारम्भिक काल में पह्लवी (फारस) में रखे गये जन-आय-व्यय रजिस्टर के अर्थ में 'दीवान' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ था। तत्पश्चात् यह खजाने के अधिकारियों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा था। इसके अनन्तर अब्बासी खलीफाओं के काल में तथा सलादीन के समय में स्वयं खलीफा के लिए इसका प्रयोग होने लगा था। **[एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द १, पृ० ९७९]**

यदि हम निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखें तो हमें प्रधान दीवान के पद एवं कर्तव्यों के बारे में स्पष्ट साधारण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(क) वह बादशाह और शेष अधिकारी-जगत् के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था।

(ख) यथार्थतः विशेष प्रकार के अथवा सूक्ष्म विवरण वाले कागजों को छोड़कर शेष सभी प्रकार के कागजों को उसके निरीक्षणार्थ एवं उसके नियन्त्रण में संग्रहार्थ उसके कार्यालय में भेज देना पड़ता था। उसके कार्यालय का नाम 'लोक-अभिलेख कार्यालय' (पब्लिक रिकार्ड आफिस) था।

(ग) वह छोटे विभागों को छोड़कर शेष सभी विभागों के भुगतान और व्यवहारों के तथ्यों की जाँच और आलोचना करता था।

(घ) उसकी लिखित स्वीकृति के बिना निम्नकोटि के कर्मचारियों, श्रमिकों

निम्नलिखित के कोप (खजाना):

(१) इतवा (अनुयायी, कर्मचारीगण)।
(२) अहदीस (अश्वारोही)।
(३) पारितोपिक (इनाम)।
(४) अन्तःपुर (महल) का रोकड़।
(५) हरिण-उद्यान (The deer-park)।
(६) अधिकारियों के अग्रदान (Advances) अथवा सहायता की प्राप्ति (वाज़याफ्तेमुशादत)।
(७) बकाया (अवशिष्ट धन)।
(८) बर्कन्दाज़ (द्वारपाल अथवा ढाल-तलवार से सुसज्जित रक्षक)।
(९) अर्थ-दण्ड (जुर्माना)।
(१०) साधारण खर्च (खर्चे कुल)।
(११) पशु-भोजन (खुराके दवाव)।
(१२) निम्नकोटि के भृत्य (शार्गिद-पेशा)।
(१३) वालाह—शाही आज्ञा से एक सच्चे और ईमानदार व्यक्ति के पास दरवारे-आम में कुछ सोना और चाँदी रख दिया जाता था जिससे जरूरतमन्द लोगों की आवश्यकताएँ तत्काल पूरी कर दी जाती थीं। वादशाह सुप्रतिष्ठित लोगों में से एक को एक वृहद् धन सौंप देता था जिसका एक अंश कोप (खजाना) में जाता था। हिन्दी में इसे 'वालाह' कहते हैं। यही कारण है कि इस प्रकार के व्यय को देशी भाषा में खर्चे-वालाह कहते हैं। [आईने अकवरी, जिल्द १, पृ० १५] (मैं इसके दूसरे पाठ वहलिया, अथवा पैदल वन्दूकची को पसन्द नहीं करता हूँ।)
(१४) जागीर के बदले में नकद धन (एवजे जागीर)।
(१५) वेगमें।
(१६) कुलियों तथा यातायात के जानवरों का किराया।
(१७) नीमगोश्त तथा पावगोश्त। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० २१७]
(१८) नकद (माव्लाघी)।
(१९) अग्रदेन धन (advances) (मुशायदात)।
(२०) वादशाह को नजर।
(२१) सिक्का ढालना (जरावत)।

(२२) फसल की हानि (पैमाले ज़रायत)।

(२३) अन्तःपुर के भृत्य (खादिमान)।

२. वे धन, जिनका दीवान के कार्यालय में 'सियाहा' नहीं अपितु केवल 'आवारिज़ा' भेजा जाता था।

(१) बटलर का विभाग (आवदारखाना)।

(२) आगरे के किले के अष्टभुज बुर्ज की वस्तुएँ।

(३) असबावे माब्लाघी।

(४) अजनास (विभिन्न सामग्री)।

(५) आफ्ताबचीखाना (सुराहीवारी (Ewer-holder's) विभाग)।

(६) लोहारी।

(७) चार शाखाओं वाला भोजनालय।

(८) सरकारी कागजात (वस्ताखाना)।

(९) पान विभाग—(क) पान, तथा (ख) तत्सम्बन्धी पात्र।

(१०) भाण्डखाना (मिट्टी के बड़े पात्र)।

(११) तोपखाना—इसका अर्थ साधारण तोपखाना नहीं है, अपितु इसका तात्पर्य दिल्ली के किले की रक्षा करने वाले तथा बादशाह के अंगरक्षकों में सम्मिलित होने वाले बन्दूकचियों और तोपचियों से है। (नौबतखाना अथवा बाजावालों का कमरा—इस पाठ को मैं अस्वीकृत करता हूँ।)

(१२) पालकीखाना (चौंडोलखाना)।

(१३) चीनी के पात्रों का गोदाम।

(१४) छोटी कौड़ियों का गोदाम (खर-मुहर)।

(१५) चमड़े के सामान का गोदाम।

(१६) जा-नमाज़खाना (पूजा-आसन-गृह)।

(१७) बूचड़खाना।

(१८) चर्खीखाना (अग्निचक्र)।

(१९) इत्र, सुगन्ध।

(२०) प्रासाद-भवन।

(२१) बैलों का चारा।

(२२) ऊँटों का चारा (मूल में 'चीता' शब्द है)।

(२३) सीप बैठाने का विभाग (खतम-बन्दीखाना)।

(२४) भोजन की थाली के आवरण।

(२५) तोल-गृह (डण्डीखाना)।
(२६) कड़ाहा गोदाम, ताम्र-पात्र।
(२७) थाली गोदाम।
(२८) सोने की कसीदाकारी के गोदाम।
(२९) चारजामों का गोदाम।
(३०) गाड़ियों की लगाम (सुतलखाना)।
(३१) सुखशय्या[२] अथवा सुखकर शय्या।
(३२) चार भागों वाला फंद (रखवत) विभाग—(क) तेंदुओं के शिकार के लिए फंद, (ख) हाथियों के पकड़ने का फंद, (ग) हवेली के लिए फंद, तथा (घ) बारिशखाना (वर्षा-गृह)।
(३३) दीपक-गृह।
(३४) शरबतखाना।
(३५) चन्दन-पात्र गृह।
(३६) रकाबियाँ एवं तश्तरियाँ—(क) स्वर्ण-पात्र, (ख) ताम्र-पात्र, (ग) चित्रकारी किये हुए पात्र, तथा (घ) किरकिराकी (देखिए, अध्याय १०, अनुच्छेद ५)।
(३७) जानवरों का भोजन।
(३८) परिमाण एवं अस्त्र-शस्त्र विभाग—(क) परिमाण, (ख) तलवार, (ग) गदा, तथा (घ) भाला-विभागों के नकद वेतन पाने वाले भृत्य।
(३९) पुस्तकालय।
(४०) घड़ियाली (घण्टा)।
(४१) मशाल।
(४२) मिट्टी के पात्र।
(४३) फल।
(४४) सदानन्द (गाँजा अथवा किसी अन्य प्रकार का मादक द्रव्य)।
(४५) चित्र।
(४६) रजत-पात्र।

---

२ 'सुखशय्या' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ सुखकर शय्या है। सन् १७०१-२ के कोर्ट बुलेटिनों से हमें ज्ञात होता है कि औरंगजेब इसे अपने साथ दक्खिन में ले गया था। आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० १३४ में सुखासन का वर्णन मिलता है जिसे बंगाल के धनी लोग यात्रा के समय प्रयोग करते थे।

(४७) शेर का भोजन (शिकारी तेंदुआ)।

[जवाविते आलमगीरी, पृ० १३ब-१४ब]

३. विभिन्न दीवानों की वैयक्तिक कार्य-संचालन पद्धति

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के कुछ प्रसिद्ध दीवानों के लिखित तरीकों के आधार पर उच्च दीवान के कार्यालय के कार्य एवं इनके संचालन की पद्धति का हम स्पष्ट विवरण प्राप्त कर सकते हैं। [दस्तूरुल अम्ल, पृ० १०१अ-१०२अ] शाहजहाँ का अत्यन्त प्रसिद्ध वज़ीर, सादुल्लाखाँ, निम्नलिखित ढंग से कार्य किया करता था :

सर्वप्रथम वह प्राप्त पत्रों को पढ़ता तथा उनका उत्तर देता था। तत्पश्चात् 'तनखा' विभाग के स्वीकार करने के योग्य प्रार्थनापत्रों को चुनता था तथा उनके नीचे अपने हस्ताक्षर कर उनकी स्वीकृति के कारणों के साथ उन्हें बादशाह के समक्ष प्रस्तुत करता था। तदनन्तर माफी में दी हुई भूमि (Rent-free land grant) (अयमा) के कागजों पर हस्ताक्षर करता था। इसके बाद अमीन के कार्यालय के स्मृतिपत्रों (याददाश्त) पर दस्तखत करता था। अन्त में वह मुद्दई (वादी) की बातों को सुनता था। कार्यालय छोड़ने के पूर्व राजकुमारों, सूबेदारों तथा दूसरे अमीरों के प्रतिनिधियों की बातें सुनता था, जो अपनी प्रार्थनाओं पर जोर देते थे।

प्रातःकाल दूसरे कार्यों के पूर्व चौकियों (विभिन्न रात्रियों को प्रासाद के चारों ओर विभिन्न अश्वारोही रक्षक-दल) की वितरण-सूची पर हस्ताक्षर करता था।

वह राजकीय पत्रों को एकान्त में तथा आवश्यक पत्रों को कार्यालय के अपने कमरे में ही लिखा करता था।

जफरखाँ के कार्यालय की कार्यपद्धति निम्न प्रकार की थी :

सर्वप्रथम वह फरमानों (राजकीय आदेशों) एवं आवश्यक पत्रों को लिखता था। इसके पश्चात् वह 'तनखा' विभाग के कागजों, प्रार्थनापत्रों (अर्जियों) तथा आज्ञाओं (परवानों) को पढ़ता था। तदनन्तर वह तुरन्त ही 'खालसा' विभाग के कागजों (नकदी अथवा साधारण स्मृतिपत्र) जो उसके समक्ष किसी ने प्रस्तुत किये हों, इत्यादि पर विचार करता था। इसे वह तय करने के बाद दूसरे कामों में लगता था।

सादुल्लाखाँ की मृत्यु (७ अप्रैल, १६५६, ओ० एस०) तथा उसके उत्तराधिकारी मीर जुमला के नियुक्त होने (७ जुलाई, १६५६) के बीच तथा १६५७ से १६६३ ई० तक राजा रघुनाथ ने स्थानापन्न (officiating)

दीवान के रूप में कार्य किया था। वह दीवान के कार्य को इस प्रकार किया करता था—

वह उच्च दीवान की भाँति प्राप्त प्रार्थनापत्रों के सारांश को बादशाह को सुनाता था और तब उसके समक्ष कागजों को प्रस्तुत करता था। राजकीय पत्रों का लेखा तैयार कर वह उन्हें बादशाह के सामने पेश करता था। उसकी स्वीकृति के पश्चात् ही वे साफ-साफ लिखे जाते थे। दीवान के रिसालों (राजाओं) की प्रमाणित प्रतियों (तस्दिकात) पर, जिनके अनुसार साधारण स्मृतिपत्र तैयार किये जाते थे, वह लिखा करता था, "घटनाओं (वाकिया) के विवरण के साथ सम्मिलित करो।" वाकिया के साधारण स्मृतिपत्रों पर वह लिखता था, "बादशाह के कानों में दूसरी बार लाओ (अर्जे मुकर्रर, परिपुष्टि के लिए) और मूल घटना (वाकिया) से तुलना करो।"[3]

---

[3] आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० २५८-२५९ में दिये हुए विस्तृत विवरण से कार्यप्रणाली स्पष्ट हो जायगी—

बादशाह ने चौदह क्लर्कों (वाकियानवीसों) की नियुक्ति की थी। बादशाह के कारनामों एवं आदेशों और विभागाध्यक्षों के विवरणों··· मनसबदारों की नियुक्तियों, वेतनों, जागीरों, दानस्वरूप दिये गये नकद अथवा भूमि अनुदानों, आदेशों···लड़ाइयों, मृत्यु···घटनाओं के विवरणों आदि का उल्लेख करना ही उसका कार्य था। शाही नौकरों में से किसी एक के द्वारा दैनन्दिनी (diary) शुद्ध कर दिये जाने के पश्चात् बादशाह के समक्ष प्रस्तुत की जाती थी और उसी के द्वारा स्वीकृत भी होती थी। क्लर्क तब प्रत्येक विवरण की नकल करता था और उन्हें दे देता था जो इसे प्रमाणपत्र के रूप में चाहते थे। तब इस पर बादशाह के समक्ष ले जाने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर हो जाते थे। इस प्रकार के विवरण को 'याद-दास्त' अथवा 'स्मृतिपत्र' कहते थे।

इनके अतिरिक्त बहुत-से प्रतिलिपि तैयार करने वाले भी होते थे जो याददास्त के पूर्ण होने पर उन्हें लेते थे, उन्हें अपने पास रखते थे और इनका एक संक्षिप्त विवरण तैयार करते थे। इन्हें 'तालिका' कहते थे और इन पर वाकियानवीस, रिसालेदार, मीरेअर्ज और दारोगा अपने-अपने हस्ताक्षर करते और मुहर लगाते थे। याददास्त के स्थान पर इसी तालिका को वे उस आदमी को वापस करते थे। तत्पश्चात् तालिका पर राज्य-मन्त्री हस्ताक्षर एवं मुहर लगाता था।

'तस्दीक'—समर्थन, प्रमाणीकरण—सरकारी कर्मचारियों के हाथों में से गुजरने वाले कागजों, विशेष रूप से लगान-समर्पण के प्रार्थनापत्रों से संलग्न विशेष चिह्न। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ५१३]

वाकिया के सारांशों पर, जिनके अनुसार फरमान लिखे जाते थे, वह लिखता था, "(विषय के सम्बन्ध में) एक शाही आदेश लिखो।" वह जागीरों के सियाहा, नकद तनखा के तख्मीनों (डौल)[४], मुहसिबत के बन्दोबस्तों, सभी कार्यालय के परवानों, राजभूमि कार्यालय के अयमाओं की प्रमाणित प्रतियों, सरकारी खजानों की अर्जियों, नकद तनखा के दस्तकों पर अपने हस्ताक्षर करता था और अन्त में समस्त पूर्व-विवणित कागजों पर अपनी मुहर लगाता था। जागीर वितरण (तकसीम) के कागजों पर भी वह अपने हस्ताक्षर करता था।

जन-कोष के कमरों और उनमें रखे हुए थैलों, घटनाओं (वाकियय) के सारांशों, अहदीसों, वर्कन्दाजों तथा निम्नकोटि के नौकरों के मासिक वेतन की रसीदों (कब्जों), प्रान्तों से प्राप्त विवरणों के उन कागजों पर जिन्हें शाही दरबार के समाचारपत्र-वाचक बादशाह को सुनाकर शाही अभिलेख कार्यालयों को भेज दिया करते थे, तथा प्रान्तीय दीवानों एवं दूसरे अधिकारियों द्वारा प्रेषित प्रान्तों के नुस्खों[५] पर उसकी मुहर लगायी जाती थी।

फरमानों पर वह लिखा करता था, "पुस्तक में दर्ज करो" (सिब्तनुमायद)। (आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० २६० पर सिब्ती फरमानों का वर्णन है)।

४. राज्य-भूमि के दीवान के कर्तव्य

राज्य-भूमि के दीवान के कर्तव्य निम्नलिखित थे—[दस्तूरुल अम्ल, पृ० ८७ब; जवाबिते आलमगीरी, पृ० ३०ब]

प्रान्तों के सूबेदारों, फौजदारों, अमीनों, दीवानी के कर्मचारियों, करोड़ियों[६] तथा दारागाओं, महलों के अमीनों, मुश्रिफों और तहवीलदारों, प्रान्तीय खजानों के फोतदारों, निःसरण लिपिकों (clerks of issue) (बरामद नवीसान), अमीरों के दरोगाओं एवं खजांचियों तथा मुश्रिफों, कागजों के सजावलों, शेष ऋण के

---

४ डौल—एक जिले अथवा राज्य से मिलने वाली लगान के कुल जोड़ का तखमीना, अनुमान द्वारा ठहरायी गयी कीमत। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० १२६]

५ नुस्खा—एक लेख की रूपरेखा अथवा एक प्रति आदि। [विल्सन ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ३८१]

६ करोड़ी—एक करोड़ दाम अथवा ढाई लाख रुपया लगान वाले क्षेत्र का कलक्टर। अकबर द्वारा इस कार्यालय की स्थापना की गयी थी, किन्तु करोड़ी का अधिकार-क्षेत्र शीघ्र ही लगान की उपर्युक्त रकम के सभी सम्बन्धों को खो चुका था।

क्रमशः]

अमीनों और करोड़ियों को सरकार द्वारा दिये गये अग्रदेनों (advances) (मुतालिबों) अथवा ऋणों तथा जमींदारों की देय राशियों की प्राप्ति के लिए कलक्टरों की नियुक्ति करना।

परवानों पर उच्च दीवान को 'सद' (शुद्ध) तथा दीवाने खालसा को 'देखा हुआ' (मुलाहिजा शुद) लिखना चाहिए।

निम्नकोटि के अधिकारियों (अमालों) की पूछताछ का उत्तर देना, नौकरियों के लिए सनदें (प्रमाणपत्र) देना; खजाने के नकद विभाग द्वारा तैयार किये गये 'डौल' के अनुसार बादशाह के पुत्रों और पौत्रों का नकद वेतन (तनखा) निर्धारित करते हुए परगनों को आदेश (परवाना) देना; राजकीय अग्रदेनों (advances) की प्राप्ति, नौकरों (अहले खिदमत) के निश्चित वेतनों के भुगतान, फोतदारों की साधारण छूट, तथा करोड़ियों के संग्रह-शुल्क के सम्बन्ध में भी परवाना जारी करना; शिकायतों, अदत्त ऋण के लिए फसल अथवा जायदाद की कुर्की, अधीनस्थ खजानों से रुपया निकालने, राज्य के हेतु तैयार करने के निमित्त अथवा प्रान्तों एवं सेना के लिए सभी आदेशित वस्तुओं (फर्माइशों) के भुगतान के हेतु नकद धन देने के निमित्त आदेश देना; समाचार-पत्रों में प्रकाशित किसी भी मामले की जाँच-पड़ताल करने के लिए आज्ञा देना; बादशाह द्वारा वांछित किसी भी विषय पर उसकी आज्ञा से (हस्बुलहुक्म) पत्र लिखना; निश्चित तनखा के सम्बन्ध में, जिस जन-कोष से भुगतान किये जाने के सम्बन्ध में आदेश दिया जा सकता हो, खजाने के क्लर्कों (मुतसद्दियों) को सम्बोधित आज्ञापत्र (दस्तक) जारी करना; अधीनस्थ खजानों और सैन्य-दलों को दिये जाने वाले तनखा के बारें में खजांचियों को आज्ञा-पत्र देना; सड़कों के

मुश्रिफ—हिसाब-किताब की जाँच करने वाला अथवा ऑडिटर, खजाने का एक अधिकारी जो हिसाब-किताब तथा लेखों को प्रमाणित करता था। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ३५८]

फोतदार—नकद रुपया रखने वाला, रुपये को बदलने वाला, रुपयों तथा सोना-चाँदी को तोलने वाला तथा सिक्कों की कीमत लगाने वाला तथा परीक्षा करने वाला जन-विभाग का एक अधिकारी। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० १६०]

सजावल—उपस्थिति अथवा भुगतान के निमित्त विवश करने के लिए नियुक्त एजेण्ट, एक ऐसी एस्टेट का लगान वसूल करने तथा उसका दायित्व लेने के लिए नियुक्त अधिकारी जिसके प्रबन्ध से स्वामी अथवा रचना करने वाला वंचित कर दिया गया हो। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ४७३]

लिए पारपत्र (passports) तथा कार्यकर्ताओं के लिए अनुमति-पत्र देना—ये सब दीवाने खालसा के कर्तव्य थे।

दीवाने खालसा को निम्नकोटि के दीवानी के अधिकारियों एवं क्लर्कों के सूचित करने योग्य सरकारी पत्रों का लिखित सार वादशाह को देना पड़ता था तथा उत्तर देने योग्य पत्रों का नियमानुसार उत्तर भी देना पड़ता था। अन्य प्रार्थनापत्रों को मौखिक रूप से सूचित करना पड़ता था तथा व्यर्थ पत्रों पर वादशाह को सूचित किये विना ही अपने संक्षिप्त हस्ताक्षर करने पड़ते थे।

उन कागजों की सूची भी है जिन्हें यह दीवान वादशाह को पढ़कर सुनाता तथा जिन पर अपने स्वामी के समक्ष प्रस्तुत किये विना ही केवल अपने संक्षिप्त हस्ताक्षर करता था। यदि वह उचित समझता था तो प्रथम श्रेणी के कागजों में से भी साधारण कागजों को रोक लेता था। उसे वादशाह को प्रायः खजानों की रोकड़ तथा जमींदारों के व्यवहारों के सम्वन्ध में सूचना देनी पड़ती थी।

खानसामा राज-परिवार-विभाग के लिए नकद भुगतान के सम्वन्ध में सभी परवानों को जारी करता था और दीवान उन पर केवल अन्त में अपने हस्ताक्षर करता था।

दीवाने खालसा को कार्यकर्ताओं के प्रतिभूति वन्धों (Security bonds) (तमस्सुके जामिनी), सरकारी ऋणों (मुतालिवों) के पुनर्भुगतानों तथा अर्थ-दण्ड पर किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए अपने को वाध्य करने वाले कुछ अधिकारियों द्वारा हस्ताक्षरित मुचलकों पर अन्त में अपने भी दस्तखत करने पड़ते थे।

दीवाने खालसा को ही परगनों और प्रान्तों के फोतदारों तथा खजांचियों के विवरण को पढ़ना पड़ता था जिनमें शासन द्वारा किये गये अग्रदेनों अथवा ऋणों से प्राप्त धन का उल्लेख होता था।

खालसा के कार्यालय में क्लर्कों (अमालों) की वदरनवीसी[७] पर उच्च दीवान को 'स्वीकृत' (मंजूर शुद) तथा दीवाने खालसा को 'देखा' लिखना चाहिए।

---

७ **वदरनवीसी**—हिसाव-किताव के आपत्तिजनक एवं वस्तुओं के अधिक आलेखन के हिसाव-किताव का अंकेक्षण (audit)। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ४३]

मुस्तौफी—परीक्षक अथवा लेखा-अंकेक्षक (auditor), उस विभाग का प्रमुख अधिकारी जिसमें भूतपूर्व कलक्टरों अथवा किसानों की माल-गुजारी के हिसाव-किताव की जाँच की जाती थी। [विल्सन ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ३५८]

मालगुजारी (माल), रासुलमाल (व्यापार राशि अथवा वस्तुओं का असली मूल्य), खजानों, वकाया धन, आमुआल (सरकार के ऋणी मृत अधिकारियों की कुर्क जायदाद) तथा जजिया मुस्तौफियों द्वारा हस्ताक्षरार्थ लाये हुए अंकेक्षण-प्रतिवेदनों (audit-reports) (मुहासिबात) पर उच्च दीवान को 'अमुक-अमुक खातों में जमा करो' (तह्वीले फलाँ नुमाइद) लिखना चाहिए। उसे कार्य-कर्ताओं के निश्चित वेतनों की प्रमाणित प्रतियों पर हस्ताक्षर करने चाहिए।

उच्च दीवान को शाही फरमानों तथा दीवाने खालसा को दीवानी, फौजदारी और अमीनी कृतियों (खिदमत) के सारांशों (जिम्न[८]) पर हस्ताक्षर करने चाहिए।

सियाहा अह्काम (लिखित राजकीय आज्ञाओं) को उच्च वख्शी एवं खानसामा के कार्यालयों तथा अन्य कार्यालयों में सीधे भेजना चाहिए।

दीवाने खालसा के कर्तव्यों में निम्नलिखित वातें भी सम्मिलित थीं: माल-विभाग के नुस्खों की जाँच करना, राजभूमि के तुमारेजमा (कर-निर्धारण के प्रमाणित लेख) को ठीक करना, सैन्य-दलों तथा वादशाह के निजी कर्मचारियों एवं गाड़ियों के व्यय का अनुमान लगाना।

उच्च दीवान को कार्यालय के पत्रों से संगृहीत पदच्युत अधिकारियों से सम्बन्धित तथ्यों पर हस्ताक्षर करने चाहिए। इसकी एक प्रमाणित प्रति सम्बन्धित अधिकारी के पास तथा उच्च वख्शी के कार्यालयों को सियाहा आदि भेजना चाहिए।

दीवाने खालसा शाही शिविर तथा समस्त सूबों के आय-व्यय का लेखा तैयार करता था और वेगमों के वेतन के कागज-पत्रों, राजभूमि के गाँवों (महालों) एवं कर्मचारियों की सूची तथा वार्षिक सूची (फेहरिस्त) एवं वार्षिक सांख्यिकीय सारांश (statistical abstracts) रखता था।

उच्च दीवान का कार्यालय वादशाह द्वारा हस्ताक्षरित समस्त कागजों की प्रतियों को रखता था।

इसके अतिरिक्त कागजों की एक लम्बी सूची है जिसे दीवाने खालसा को

---

८ जिम्न—अनुदान का पृष्ठांकन जिसमें उसके विषय का संक्षेप दिया हो। पहले शब्द 'जिम्न नवीसनद' (उन्हें सारांश लिखने दो) मालगुजारी के हस्तान्तरण-पत्र को स्वीकृत करने वाली सनद पर लिखा होता था, जो अनुदान की सूक्ष्म वातों को समझने के लिए अधीनस्थ अधिकारियों के लिए प्रमाण का कार्य करता था। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ५६७]

विभिन्न वर्गों के अधिकारियों; उदाहरणार्थ लगान अधिकारियों, अमीनों, करोड़ियों, गैर-महालों के कलक्टरों, खजानों के क्लर्कों आदि से प्राप्त करना पड़ता था।

५. दीवाने तनखा के कर्तव्य

दीवाने तनखा निम्नलिखित मामलों को निबटाता था—[जवाबिते आलमगीरी, पृ० ३४ब ३६अ; दस्तूर-उल-अम्ल, पृ० ८९ब-९०ब]

(क) जागीरों तथा नकद तनखा से सम्बन्धित सभी विषय, जमींदारों से सम्बन्धित तथ्य, सूबेदारों की जागीरों के डौल, अवशिष्ट धन का व्यौरा, परगनों के आवारिजा, जागीरदारों की तौजीह, मनसबदारों की श्रेणी आदि से सम्बन्धित कागज-पत्र बादशाह के समक्ष प्रस्तुत करना।

(ख) जागीर, नकद वेतन और कर्मचारियों तथा तहवील के लोगों के निश्चित वेतनों, तहवीलों के लोगों और कारीगरों के निश्चित वेतन की स्वीकृति से सम्बन्धित आदेश, शिकायतों तथा विभिन्न प्रान्तों से प्राप्त पत्रों में वर्णित मामलों की जाँच-पड़ताल से सम्बन्धित आदेश, परगनों से स्थानान्तरित अधिकारियों की जागीरों की कुर्की के लिए आदेश, मनसबदारों को दिये हुए अग्रदेनों की प्राप्ति के सम्बन्ध में आदेश।

(ग) हस्ताक्षर किये जाने वाले कागज; उदाहरणार्थ, जागीरों के सियाहा, सहायतार्थ अनुदानों (मुशाइदात), अग्रदेनों (advances) की पुनः परिपुष्टि के हेतु माँगपत्र, प्रार्थनाएँ।

(घ) नकद धन (तनखा) तथा सहायतार्थ अनुदानों के अनुमति-पत्र (permits) (दस्तक)।

(ङ) बादशाह द्वारा अवशिष्ट धनों (arrears) तथा देय वेतन वाले अधिकारियों के रजिस्टरों (तूमारों) पर हस्ताक्षर किये जाने के पश्चात् उच्च दीवान को इन कागजों पर बादशाह के लेख की प्रति को अपने हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणित करना चाहिए। शाही आज्ञाओं (अहकाम) को बख्शी तथा दूसरे अधिकारियों के कार्यालयों में तुरन्त प्रेषित कर देना चाहिए। मुस्तौफियों के जागीरदारों, एवजे जागीरों तथा अग्रिम खजानों के अंकेक्षण-प्रतिवेदनों (audit-reports) को दीवान के पास हस्ताक्षर के लिए ले आना चाहिए।

दीवाने-तनखा को नकद भुगतान के 'डौलों' पर हस्ताक्षर करने चाहिए।

अश्वारोहियों के दल को प्रमाणित करने तथा दागने वाले कागजों पर उसे 'स्वीकृत' लिखना चाहिए।

कर्मचारियों के वेतनों के साधारण स्मृतिपत्रों (abstract-memos) पर उसे "अमुक वर्ष की अमुक तिथि से नकद तनखा दे दो" लिख देना चाहिए।

मनसवदारों तथा दूसरे कर्मचारियों के स्मृतिपत्रों (memos) को बादशाह के समक्ष दूसरी बार परिपुष्टि के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। दीवान को उन पर "मूल से ठीक-ठीक मिला लो" लिख देना चाहिए।

(च) अयमा तथा दूसरे कागजातों जैसे आदेशों (फरमानों), स्मृतिपत्रों, निर्वाह-भत्तों की स्वीकृति के लिए परवाने आदि को प्रान्तों से प्राप्त पत्रों में रखना चाहिए।

(छ) 'आज्ञा से' (हस्बुल हुक्म) परवानों (बादशाहों के शब्दों में आदेशों) के लिखने का कार्यालय।

६. खानसामा (High Steward) के कार्य

जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किया है, खानसामा राज्य का दूसरा उच्च अधिकारी था और दीवान के ठीक नीचे उसी का पद था। उसे उचित ही व्यय का दीवान कहा गया है। [हिदायेतुल कवायद, पृ० १७]

उसके कार्य के सम्बन्ध में उसे निम्न प्रकार के निर्देश दिये गये हैं: [हिदायेतुल कवायद, पृ० १७-२१]

"नकद रोकड़ एवं राज-परिवार विभाग में एकत्र उन वस्तुओं का चार्ज लेना जो कार्यालय छोड़ते समय दिवंगत खानसामा तथा मुश्रिफ और तहवीलदार की मुहर लगाकर रखी गयी थीं; अपने को सन्तुष्ट करना कि स्टॉक लेखों (records) के अनुकूल है कि नहीं, अन्यथा क्षतिपूर्ति के लिए उन्हें आदेश देना।

"विभिन्न गोदामों एवं राज्य के कारखानों के शीर्षकों के अन्तर्गत लेखबद्ध वार्षिक व्यय के लेखों (records) की एक प्रति अपने पास रखना। इस बात का ज्ञान रखना कि खिलअतखानों तथा प्रत्येक कारखाने में कितनी खिलअते हैं। उपर्युक्त सामग्री की कमी होने पर उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक व्यय (सरअंजाम) का विवरण तैयार करना, उचित अधिकारी के पास प्रार्थनापत्र देना, उसके सरअंजाम के सम्बन्ध में दीवान के लिए भुगतान-आदेश प्राप्त करना तथा उन वस्तुओं को तैयार करना।

"खानसामा को आवश्यकतानुसार वांछित वस्तुओं को प्रदान करने की स्थिति

में होने के लिए व्यापारियों से उधार अथवा सरकारी धन से उन्हें ख़रीदना, तैयार रखना तथा आवश्यकता पड़ने पर सरकार को बाजार-मूल्य पर दे देना उसका कार्य था। यदि वह स्वयं एक धनी व्यक्ति है तो उसे वस्तुओं को ख़रीदकर उनका संग्रह कर लेना चाहिए जिससे आवश्यकता के समय उसे दूसरों से माँगना न पड़े अपितु बाजार-दर से ही इनका मूल्य निश्चित कर उन्हें दे दे। इस प्रकार देने में देर हो जाने के कारण उसके स्वामी को अप्रसन्न होने का अवसर ही न मिल सकेगा। यदि खानसामा अपनी निजी वस्तुओं को बाजार-दर पर देता है तो इस बात की बहुत सम्भावना है कि सरकार को इस लेन-देन से बचत हो किन्तु शासन के क्लर्कों को यह बात दृढ़तापूर्वक कहनी पड़ेगी कि वह राज्य को ये वस्तुएँ लाभ पर बेच रहा है। अतः उसे प्रत्येक वस्तु के क्रय करने के निमित्त पेशगी धन देने के लिए पहले ही बादशाह से निवेदन करना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें प्रदान करने के लिए उनका संग्रह करना चाहिए।

"पुरानी तथा दूसरों की प्रयुक्त वस्तुओं को बादशाह की अनुमति प्राप्त कर खरीदने तथा मुकीमों (दलालों अथवा मूल्य आँकने वालों) से उनका वर्तमान मूल्य जान लेने के पश्चात् सेना के हाथ बेच देना चाहिए। अपनी बचत के लिए उसे वस्तुओं के मूल्य की सूची पर मुकीमों के हस्ताक्षर कराकर अपने पास रख लेना चाहिए।

"बादशाह के मन को पसन्द आने वाली सुन्दर वस्तुओं को ख़रीदना तथा उन्हें उचित अवसरों पर भेंट करने के लिए सुरक्षित रखना। दोनों ईदों तथा अन्य उत्सवों के लिए प्रतिष्ठा-जामा (robes of honour) तथा अन्य व्यावहारिक सरकारी भेंटों को निश्चित तिथि से एक या दो माह पूर्व ही तैयार कर रखना जिससे आवश्यकता पड़ने पर उन्हें प्रदान करने में अपनी असमर्थता न दिखानी पड़े।

"स्वर्णकारों, मीनाकारों, मुद्रा के साँचों को खोदकर चित्र बनाने वालों, जाल बुनने वालों, धातुओं का कार्य करने वालों (सादाकारों, स्वर्णकारों की एक जाति), शिल्पकारों आदि से कृतज्ञता के बन्धनों द्वारा अपने साथ सम्बन्ध स्थापित करना तथा उनके साथ अच्छा व्यवहार करना। इत्यादि-इत्यादि।"

दस्तूर-उल-अम्ल में उल्लिखित खानसामा के कर्तव्य इस प्रकार हैं :

१. नव-नियुक्त लोगों के दैनिक, मासिक एवं वार्षिक उपस्थिति-रजिस्टरों के आधार पर श्रमिकों एवं निम्नकोटि के कर्मचारियों के वेतन-

पावना-पत्रों तथा पुराने कर्मचारियों की वेतन-वृद्धि को प्रमाणित करना।

२. विभिन्न कारखानों के तहवीलदारों, मुश्रिफों, अमीरों तथा दारोगाओं की नियुक्ति करना।

३. कारखानों एवं परिवार-विभाग के कोषों (खजानों) के कार्य के सम्बन्ध में नियम बनाना।

४. श्रमिकों की मजदूरी तथा किराये के सम्बन्ध में स्लिपें लिखना।

५. कारखानों के प्रबन्धकों के प्रार्थनापत्रों का उत्तर देना।

६. पारितोषिक के रूप में राज्य-गृहों की स्वीकृति एवं अमीरों को उनमें अस्थायी रूप से निवास करने के लिए अनुमति प्रदान करना।

७. नीमगोश्त तथा पावगोश्त का निरीक्षण करना।

८. कारखानों के प्रबन्धकों एवं निम्नकोटि के कर्मचारियों से सुरक्षा-द्रव्य के लिए बंध-पत्र (bonds) लेना।

९. गोदामों और कारखानों के प्रार्थनापत्रों पर विचार करना।

१०. नज़र, भेंट तथा दान-कोष की देखभाल करना।

११. पशुओं का दैनिक भोजन निश्चित करना।

१२. कारखानों से वस्तुओं के उधार के लिए अनुमति देना।

१३. राजकीय भोजनालय से भोजन-वितरण, उसकी कमी और वृद्धि तथा अन्तःपुर के पत्रों के अतिरिक्त अन्य आदेश पत्रों के सम्बन्ध में अनुमति देना। इन पर सर्वप्रथम खानसामा और उसके पश्चात् वुयुतात हस्ताक्षर करता था।

१४. राज्य के अग्रदेनों (advances) (मुतालिबात) की प्राप्ति के सम्बन्ध में हिसाब-किताब को अन्तिम रूप से प्रस्तुत करने के निमित्त उत्तर देना।

१५. जायदाद जब्त करना। यदि लेखेक्षण (audit) करने वाले अधिकारी को पूर्व-स्थिति में लाने का आदेश है तो उस आदेश की एक प्रति को दीवान के कार्यालय में भेजना जिससे इसके अनुसार उसकी तनख्वाह दी जा सके।

१६. प्रदेशों में बादशाह की फर्माइशों के अनुसार चीजें तैयार करवाना।

१७. राज्य के निवास-गृहों तथा दुकानों से किराया और बागों की आमदनी लेना।

१८. कारखानों से लम्बे-लम्बे पत्रों की शीटें प्राप्त करना।

१९. सूबों की दैनन्दिनी (diaries) तथा आवारिज़ों और शाही शिविर के आवारिज़ों में परिवर्तन किये बिना ही उन पर मुहर लगाना।
२०. अग्रदेन (advance) माँगने वाले अधिकारियों के प्रार्थनापत्रों पर हस्ताक्षर करना तथा ठहरने के निमित्त निवास-स्थानों को स्वीकृत करना।
२१. कारखानों के तहवीलदारों, मुश्रिफों, अमीनों तथा दारोगाओं की उपस्थिति को प्रमाणित करना।
२२. दिवंगत मनसबदारों की कुर्क की हुई निजी जायदाद (आमुआल) तथा उपहार (पेशकश) की विभिन्न वस्तुओं का मूल्यांकन करना।
२३. सैन्य-दल के नायकों (साहबे रिसाला) से सम्बन्धित नकद पारितोषिक को प्रमाणित करना।
२४. विभिन्न कारखानों में द्वारपालों का वितरण करना।
२५. राजकुमारों के विवाहों का प्रबन्ध करना।
२६. अंकेक्षकों (auditors) को अंकेक्षण (audit) करने के उपरान्त अवशिष्ट धनों की नकद वसूली के रजिस्टरों (तूमारों) को खानसामा के कार्यालय में तथा उनकी प्रतियों को बुयुतात के कार्यालय में भेज देना चाहिए।
२७. राज्य की इमारतों और निवास-स्थानों के सम्बन्ध में योजना[६] तैयार करना।

७. बुयुतात के कर्तव्य

बुयुतात शब्द 'गृह' अर्थ में प्रयुक्त अरबी 'बैत' शब्द का बहुवचन है। मुग़ल भारत में 'दीवाने बुयुतात' का संक्षिप्त रूप बुयुतात ही था। यह उस अधिकारी के पद का नाम था जो मृत मनुष्यों की सम्पत्ति को रजिस्टर में लिख लिया करता था जिससे राज्य के देय धन का भुगतान तथा मृतक के उत्तराधिकारियों के लिए वह सम्पत्ति सुरक्षित रह सके। इसके अतिरिक्त जैसा कि उसके कर्तव्यों की निम्नलिखित सूची से प्रकट होगा, वह कुछ अंशों में ख़ानसामा के अधीन था। [जवाबिते आलमगीरी, पृ० २१ब; दस्तूरुल अम्ल, पृ० ८४अ]

१. कारखानों तथा साधारण व्यय के कोषों से नकद हस्तस्थ रोकड़

---

६ पाठान्तर : इमारतों तथा निवास-स्थानों पर व्यय [दस्तूरुल अम्ल] [जवाबिते आलमगीरी, पृ० २०अ-२१ब; दस्तूरुल अम्ल, पृ० ८३अ-८४अ]

(balances) अथवा विभिन्न निधियों (फण्डों) के लिए धन वितरित करना ।

२. खानसामा के सहयोग से मरे हुए अमीरों की सम्पत्ति को कुर्क करना ।

३. कारखानों के लिए प्रवन्ध (सरअंजाम) करना ।

४. वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करना ।

५. कारखानों के (आवश्यक) कोषों का अनुमान लगाना । दीवान के कार्यालय में मासिक व्यय का प्राक्कलन (estimate) भेजना ।

६. वादशाह के प्रयाण (march) के समय उसके साथ-साथ चलने वाले कारखानों का दैनिक लेखा तैयार करना ।

७. रसीदों के पृष्ठ पर हस्ताक्षर करना ।

८. वुयुतात को निम्नकोटि के कर्मचारियों के वर्णनात्मक रजिस्टरों (descriptive rolls) पर तिथियों का उल्लेख करना चाहिए ।

६. पशुओं के दागने का विवरण प्राप्त होने पर उसे "दागने के लिए लाया गया" लिख देना चाहिए ।

१०. विभिन्न कारखानों से प्राप्त सुझावों के अनुसार कारखानों में पुरानी वस्तुओं का विक्रय करना अथवा अस्वीकृत करना ।

११. पशुओं के ठहरने का दिन निश्चित करना ।

१२. व्यय-कोष से तनखा का सियाहा तैयार करना, वुयुतात की उपस्थिति में ही निम्नकोटि के कर्मचारियों, वर्कन्दाजों तथा पशुओं को अग्रदेनों का भुगतान करना चाहिए ।

१३. वुयुतात के कार्यालय में स्वीकृत वस्तुओं (जिन्स या अजनास) से सम्वन्धित पत्रों (चिट्ठियों) को सुरक्षित रखना चाहिए ।

१४. कारखानों के कमरे वुयुतात की मुहर से मुहरवन्द होने चाहिए ।

१५. खाद्य-संग्रह (जखीरा) के लिए छोटे अधिकारियों को धन देना ।

१६. वुयुतात के आदेश से (मुहर से) क्रय एवं दूसरे विभागों में वस्तुओं के मूल्य तथा उसके रोकड़ की जाँच-पड़ताल करना ।

१७. कारखानों के लिए दिये जाने वाले आदेशपत्रों पर सर्वप्रथम वुयुतात को और तत्पश्चात् खानसामा को हस्ताक्षर करना चाहिए ।

१८. पशुओं के भोजन के लिए संक्षिप्त अनुदान (सरसरी तनखा) एवं व्यय का सियाहा वुयुतात के कार्यालय में जाना चाहिए और इसके पश्चात् खानसामा को उस पर अपने हस्ताक्षर करने चाहिए ।

अध्याय ४

प्रान्तीय शासन

१. ग्राम्य-जीवन एवं ग्राम्य-हित के प्रति अधिकारियों की अरुचि एवं उदासीनता

मुग़ल-साम्राज्य के प्रान्तों में उच्च शासकीय अभिकर्तृत्व (एजेन्सी) उसके केन्द्रीय शासन का यथार्थ लघुरूप था। वहाँ पर राज्यपाल (सरकारी तौर पर जिन्हें नाज़िम और लौकिक रूप से सूबेदार कहते थे), दीवान, बख्शी, काजी, सद्र, बुयुतात और दोषवेचक (censor) नियुक्त थे, किन्तु खानसामा की नियुक्ति नहीं होती थी। ये प्रान्तीय बख्शी सचमुच संभाव्यों (contingent) से सम्बन्धित अधिकारी थे जो भौगोलिक क्षेत्र के रूप में सूबों के अधिकारियों की अपेक्षा विभिन्न सूबेदारों के साथ रहा करते थे; यद्यपि इनका व्यावहारिक प्रभाव वही था।

प्रान्तीय राजधानी में ही शासन केन्द्रित था। यह शासन नगर-शासन था किन्तु यह यूनानी नगर-शासन के सदृश न था। यह वह शासन था जो नगरों में ही कार्यान्वित होता था और जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से उन नगरों तथा उनके सन्निकटस्थ निवासियों से ही था। शिकार खेलने के प्रेम, विहार, सुन्दर बगीचे लगवाने तथा निरन्तर अभियानों के अलावा मुग़ल भारत में वस्तुतः नगर में रहने वाले व्यक्ति थे। उनके दरबारी, अधिकारी तथा साधारण रूप से यहाँ की रहने वाली मुसलमान जनता के उच्च तथा मध्यम वर्ग के लोग भी ऐसे ही थे। ग्राम उपेक्षित एवं तिरस्कृत थे तथा ग्राम्य-जीवन उनके विचार से दण्ड था। निस्सन्देह ग्रामों से उन्हें भोजन तथा आय प्राप्त होती थी; किन्तु उनका उनसे इससे अधिक कोई सम्बन्ध न था। उनके लिए ग्राम्य-जीवन उतना ही असह्य था जितना कि शाही रोम के शिष्ट कवि के लिए "राजधानी एवं देव स्थानों" से दूर "गेटिक तथा सरमैटियन" (the Getic and Sarmatian) समुद्री तट पर निवास। एक फारसी शेर में यह भावना पूर्ण रूप से स्फुटित है, जो इस प्रकार है :

ज़ाग़ दुम सुए-शह्र व सर सुए-देह ।
दुमे आँ ज़ाग़ अज़्ज़ सरे ओ बेह ॥[1]

(एक कौवे की पूंछ शहर की ओर और उसका सिर ग्राम की ओर घुमाया गया; निश्चय ही पूंछ सिर से अधिक सुखी थी।)

१. जिलों के सदर मुकामों में रहने वाले, प्रायः भ्रमण करने वाले तथा सब-डिवीजनों में नियुक्त फौजदारों, २. जनता से वसूली करने वाले माल-विभाग के निम्नकोटि के कर्मचारियों, ३. सूबेदार के दरबार में जमींदारों के आने-जाने, तथा ४. सूबेदारों के भ्रमणों के द्वारा प्रान्तीय शासन ग्रामों से सम्पर्क स्थापित किये हुए था। यह सम्पर्क अत्यन्त घनिष्ठ न था और जैसा कि प्रथम अध्याय में मैंने उल्लेख किया है, यदि गाँवों में रहने वाले समय पर भूमि-कर चुका देते थे और शान्ति भंग नहीं करते थे तो प्रान्तीय शासन द्वारा उन्हें उपेक्षित, अप्रभावित तथा अपने ही साधनों पर आश्रित रहने दिया जाता था।

२. सूबेदार और उसके कर्तव्य

'सूबेदार' शब्द अरबी 'सब' शब्द से निकला हुआ है, जिसका अर्थ दिशा अथवा दिशा ज्ञात करने वाले यन्त्र (कम्पास) का बिन्दु है। प्राचीनकाल में प्रत्येक बड़ा साम्राज्य सूबों में विभक्त था। जहाँ पृथक् सूबा बनाने के लिए पर्याप्त क्षेत्र होता था वहीं वे बना दिये जाते थे। राजधानी से जिस दिशा की ओर वे स्थित थे उसी के नाम पर उनका नामकरण हुआ था। उदाहरणार्थ, उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी एवं पश्चिमी उपराजता (Viceroyalty)। इसी प्रकार दिशा अर्थ के द्योतक 'तरफ' शब्द के आधार पर बहमनी साम्राज्य के राज्यपाल 'तरफदार' कहलाते थे।

प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान को पलायन करते रहने वाली विभिन्न जातियों द्वारा बसी हुई अनेक छोटी-छोटी भौगोलिक इकाइयों से पूर्ण देश में किसी एक सूबे को कोई एक ऐतिहासिक एवं जातीय नाम देना सर्वप्रथम असम्भव था। ये सूबे इस प्रकार की अनेक जातीय बस्तियों तथा सामाजिक दृष्टि से असम्बद्ध जिलों के समूह थे। इन सूबों को उत्तरी, दक्षिणी आदि नाम देना अधिक सुविधाजनक था। इसी आधार पर 'सूबेदार' और 'तरफदार' शब्दों की उत्पत्ति हुई थी।

---

[1] **हमीदुद्दीन की अहकामे आलमगीरी** (लेखक द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित मूल का २८वाँ अनुच्छेद)

सरकारी तौर पर सूबेदार नाज़िम अथवा सूबे का नियामक (Regulator) कहलाता था। उसके आवश्यक कर्तव्य थे—सूबे में व्यवस्था स्थापित करना, मालगुजारी के सफल एवं सुविधाजनक संग्रह में सहायता करना तथा राजकीय नियमों एवं आदेशों का पालन कराना।

जब कोई नव-नियुक्त सूबेदार अपने सूबे को प्रस्थान करने के पूर्व उच्च दीवान से विदा होने के लिए जाता था तो दीवान को उसे निम्नलिखित भार सौंपना पड़ता था :

"सूबेदार के कार्यों के सम्बन्ध में अनुभवी लोगों ने लिखा है कि उसे अपने सद्व्यवहार से सभी वर्गों के लोगों को प्रसन्न रखना चाहिए और इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सबल निर्बल को सता न सकें; उसे सभी सताने वालों को दबा देना चाहिए, आदि।

"अपने अधीनस्थ मनसबदारों के विषय में एक सूबेदार की सिफारिश (recommendation) का उसके सम्राट् के लिए स्वाभाविक रूप से अधिक महत्त्व होता था और उसका उस पर प्रभाव भी पड़ता है। अतः सूबेदार को केवल योग्य अधिकारियों की पदोन्नति के लिए सावधानी से सिफारिश करनी चाहिए। उसे विद्रोही जमींदारों तथा नियम भंग करने वालों को दण्ड देना चाहिए और प्रति मास सूबे की घटनाओं के सम्बन्ध में दो विवरण-पत्र डाक-चौकी द्वारा दरबार में भेज देने चाहिए।

"उसे कभी भी डाकुओं से कुछ लेकर उन्हें नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि इस प्रकार से अत्याचार के बीज जमने लगते हैं और यह जानकर कि रिश्वत देकर दण्ड से मुक्ति मिल सकती है, दूसरे धनी लोग भी घोर अत्याचार करने लगेंगे और अन्त में उन्हें नियन्त्रित करने में तुम्हें कठिनाई होगी।"
[हेदायेतुल कवायद, पृ० १३-१४]

अकबर के फरमान में सूबेदार के कर्तव्याकर्तव्य के सम्बन्ध में ४० सद्-परामर्शों की एक सूची दी हुई है। **[मीराते आलमगीरी, पृ० १६३-१७०, बर्डस हिस्ट्री ऑव गुजरात में अनुवादित, पृ० ३८९-४००]**

एक नये वायसराय को उसके कार्यों के बारे में इस प्रकार निर्देश दिये जाते थे—**[हेदायेतुल कवायद, पृ० २७-३२; देखिए, आइने अकबरी, जिल्द २, पृ० ३७-४०]**

"जब तुम नियुक्त किये जाते हो तो तुम्हें एक अच्छे दीवान को नियुक्त कर लेना चाहिए जो कि विश्वासपात्र और अनुभवी हो तथा किसी उच्च व्यक्ति की सेवा में पहले रह चुका हो। इसी के समान योग्यता और अनुभव वाले

दिन तुम अपने सूबे की सीमा पर पहुँच जाओगे। इन भावी अधिकारियों में से आधे लोगों को अपने साथ रख लो और पहले ही सेना में भरती किये हुए तथा अपने साथ उपस्थित तवीनानों के शेष आधे लोगों को सूबे में भेज दो जिससे वे लोग तुम्हारे पहुँचने के पहले ही वहाँ पहुँच जायँ। उनसे कह दो कि वे लोग पूर्ण जानकारी रखने वाले स्थानीय लोगों को एकत्र करके उन लोगों से वहाँ के प्रत्येक जमींदार और जमादार के सम्बन्ध में जान लें एवं उनके पारस्परिक सम्बन्ध, मालगुजारी के भुगतान के विषय में पूर्व सूबेदारों के साथ उनके व्यवहार तथा मालगुजारी के अतिरिक्त कौनसा जमींदार कितना अधिक धन देता था, इनके बारे में भी तुम्हारे समक्ष विवरण प्रस्तुत करें। जब तुम अपने सूबे के एक-चौथाई मार्ग पर रह जाओ तो तुम्हारे पहुँचने के पश्चात् ही एक निश्चित स्थान पर तुम्हारी प्रतीक्षा करने के लिए जमींदारों को बुलाने के निमित्त अपने परवानों के साथ दक्ष सैनिकों को भेजो।[२]

"जब तुम अपने सूबे की सीमा पर पहुँच जाओ तो उसी दिन से अपने कार्यालय के लिए अभ्यार्थियों (candidates) को भरती कर लो और उनके साथ अच्छा व्यवहार करो क्योंकि एक स्वामी के रूप में तुम्हारे विषय में उनकी प्रथम धारणा भावी राय निश्चय करेगी।

"हठी जमींदारों एवं नियम भंग करने वाले लोगों के सरदारों को सुधारो जिससे उसी वर्ग के दूसरे लोग भी चेत जायँ और बिना किसी कठिनाई के भूमि-कर अदा कर दें।

"तदनन्तर दुर्ग में प्रवेश करो।[3] परिस्थिति का निरीक्षण करने के पश्चात् अनावश्यक सैन्य-दल को पदच्युत कर दो। इस बात को याद रखो कि अधीनस्थ कर्मचारियों के वेतन के अवशिष्ट धन का भुगतान करना कठिन होता है। सूबे की आय के अनुसार ही व्यय करने के लिए दीवान को आज्ञा दो।

---

२ उदाहरणार्थ लेखक की पुस्तक "स्टडीज़ इन औरंगज़ेब्स रेन", अध्याय १४, अनुच्छेद ९-१२ में उड़ीसा के सूबेदार की उसके पत्रों में वर्णित कार्य-प्रणाली।

3 सूबे के मुख्य नगर का किला ही सूबेदारों का सरकारी निवास-स्थान और दरबार था। अपने ज्योतिषियों द्वारा निर्धारित तिथि और शुभ मुहूर्त पर ही बड़े समारोह के साथ वह इसमें सर्वप्रथम प्रवेश करता था। प्रायः नव-नियुक्त सूबेदारों को नगर के बाहर ही उद्यान में हफ्तों इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।

"भलीभाँति खेती करने तथा उसकी वृद्धि करने के लिए प्रजा को प्रोत्साहित करो। उनसे प्रत्येक वस्तु न ऐंठ लो। याद रखो कि प्रजा ही राज्य की आय का एकमात्र स्थायी साधन है। उपहारों से जमींदारों को शान्त करो। सेना से दवाने की अपेक्षा इस प्रकार उन्हें अपने हाथ में रखना सुगम है।

"राज्यभूमि (खालसा महल) में सम्वन्धित गाँवों को जब्त न करो क्योंकि ऐसी परिस्थिति में तुम दीवाने खालसा को झगड़ा करने के लिए उत्तेजित करोगे जो वादशाह से तुम्हारी शिकायत करेगा और तुम्हें इसके लिए अपने आचरण के सम्वन्ध में स्पष्टीकरण देना पड़ेगा।

"शेख और काजी को प्रेम से रखो। जहाँ तक उन दर्वेशों (फकीरों) का सम्वन्ध है जो किसी के घर भिक्षा माँगने नहीं जाते हैं, उनके जीवनयापन के सम्वन्ध में पूछताछ करो और नकद धन और अन्न से उनकी सहायता करो। फकीरों और साधारण भिक्षुओं को भिक्षा दो। इस वात पर ध्यान दो कि सवल निर्वल को सता न सकें।"

अपने अधिकार-क्षेत्र के निकटस्थ अधीन राजाओं से कर वसूल करना तथा रक्षकों द्वारा इसे शाही दरवार तक सुरक्षित पहुँचाने का प्रवन्ध करना भी उसका कर्तव्य था। [स्टडीज इन औरंगजेव्स रेन, अध्याय १४, अनुच्छेद १३]

३. प्रान्तीय दीवान के कर्तव्य

प्रान्तीय दीवान[४] उस स्थान का दूसरा अधिकारी था और जैसा कि मैंने प्रथम अध्याय में संकेत किया है, वह सूवेदार का प्रतिद्वन्द्वी था। दोनों को एक-दूसरे की कड़ी निगरानी करनी पड़ती थी और इस प्रकार अरव के लोगों की उस प्राचीनतम शासकीय नीति एवं प्रथाओं को वनाये रखना पड़ता था जवकि वे पैगम्वर की मृत्यु के पश्चात् विश्व-विजय के लिए अधिकृत भूमि पर नवीन शासन स्थापित करते हुए निकल पड़े थे।

प्रान्तीय दीवान का चुनाव शाही दीवान करता था। वह सीधे उसी के आदेशों के आधार पर तथा उसी से निरन्तर पत्रव्यवहार कर कार्य करता था। नये दीवान को विदा करते समय उच्च दीवान खेती को वढ़ाने और अमीन के पद के निमित्त केवल ईमानदार व्यक्ति को चुनने के लिए उसे प्रेरित करता था। उसे अपने पास अवशिष्ट रोकड़ के लेखों के साथ-साथ सूवे की घटनाओं के

---

४ वजीर की मुहर लगी हुई एक सनद तथा उसके द्वारा लिखित वादशाह के हस्वुल हुक्म से प्रान्तीय दीवान की नियुक्ति होती थी। [मीराते अहमदी, सप्लीमेन्ट, पृ० १७३]

सम्बन्ध में प्रति मास दो बार उच्च दीवान के यहाँ विवरण भी प्रस्तुत करना पड़ता था। बिना दण्ड दिये और कठोरता का व्यवहार किये ही प्रजा को स्वतः सरकारी देयों का भुगतान करने के लिए उद्यत करने वाले व्यवहारकुशल व्यक्तियों को कलक्टर (करोड़ी और तहसीलदार) नियुक्त करने के हेतु दीवान को विशेष रूप से प्रेरित किया जाता था। [हेदायेतुल कवायद, पृ० १३-१४]

प्रान्तीय दीवान की सनद (नियुक्ति-पत्र : letter of appointment) में उसके कर्तव्यों का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में इस प्रकार है :

"ग्रामों में निवास करने तथा कृषि-कार्य करने का प्रसार करो। राजकीय कोष के प्रति सजग रहो जिससे कोई भी व्यक्ति बिना उचित प्रमाण के उससे रुपया न निकाल सके। फोतदारों की तिजोरियों तथा दूसरे साधनों से जब कोष में धन जमा हो जाय तो उनके अभिकर्ताओं (agents) को प्राप्ति की रसीद (कब्जुल वसूल) दे दो। यह ध्यान रखो कि कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी भी प्रकार की निषिद्ध चुंगी वसूल न करे।

"प्रत्येक कृषि-सत्र के अन्त में मौलिक कच्चे कागजों (प्रथम लेखों) के आधार पर आमिलों के धन-अपहरण तथा बलपूर्वक वसूली का ठीक-ठीक पता लगा लो और इस मद में उन्हें जो कुछ भी देय हो, उसे राजकीय कोष के लिए वसूल करो। शासन अर्थात् उच्च दीवान से बेईमान अथवा बुरे आमिलों की निन्दा करो जिससे उनके स्थान पर उनसे अच्छे व्यक्ति नियुक्त किये जा सकें।

"यदि किसी आमिल ने कई वर्षों की मालगुजारी बकाया छोड़ रखी है तो देय धन को सम्बन्धित गाँवों से पाँच प्रतिशत प्रति सत्र की दर से सुविधाजनक किश्तों में वसूल करो।

"शासन द्वारा गत वर्ष दिये हुए तकावी ऋण को वर्तमान वर्ष के प्रथम सत्र में वसूल करना चाहिए। यदि वे उसका भुगतान न करेंगे अथवा उसका भुगतान करने में देर करेंगे तो शासन दीवान और अमीन को उसकी क्षति-पूर्ति करने के लिए विवश करेगा।

"नियमानुकूल अपने विभाग के कागजों को राजकीय-अभिलेख कार्यालय (imperial record office) में भेज दो।"[५]

४. फौजदार और उसके कर्तव्य

शान्ति स्थापित करने तथा साधारण रूप से अधिशासी कार्यों के पालन

---

५ देखिए अध्याय ११.. औरंगजेब द्वारा रसिकदास को दिये गये फरमान में इनमें से कुछ नियमों का उल्लेख है।

करने में फौजदार सूबेदार के सहायक होते थे। प्रान्त के उन सब-डिवीजनों के अध्यक्ष के रूप में इन अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी जो पर्याप्त सभ्य हों, अथवा जमींदारों की उपस्थिति के कारण जिनका अधिक महत्त्व हो, अथवा जहाँ राज्य की आय के बड़े साधन उपलब्ध हों और जिनमें नगर हों।

जब एक नये फौजदार की नियुक्ति की जाती थी तो उसे उसकी नीति एवं उसके व्यवहार के सम्बन्ध में निम्नलिखित सलाह दी जाती थी :

"फौजदार को बहादुर और अपने सैनिकों के साथ व्यवहार करने में नम्र होना चाहिए। उसे अपने सशस्त्र सैनिकों के दल में केवल विख्यात शूरवीर तथा कुलीन व्यक्तियों को ही भरती करना चाहिए।

"अपने सेवा-स्थान पर पहुँचते ही उन लोगों (कानूनगोओं तथा दूसरों) का पता लगा लो जो उस स्थान के पूर्व-शासन से परिचित हों, उनके हृदयों को जीत लो और उनसे जान लो कि तुम्हारे सब-डिवीजन में तैनात कौनसे सैन्य-दल अपने सेनापति की निर्बलता तथा शासन की कठिनाइयों से लाभ उठाने के लिए प्रवृत्त हैं और उनमें से कौनसे नियम भंग करने वाले जमींदारों के साथ मिलकर गुप्त संधि किये हुए हैं।

"यह जान लो कि तुम्हारे पूर्वाधिकारियों के समय में स्थानीय जमींदार नियमतः मालगुजारी का भुगतान किया करते थे अथवा अवज्ञापूर्ण प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करते थे। उन जमींदारों के साथ सर्वप्रथम सद्व्यवहार करो जो स्वाभाविक रूप से आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत न हों। यदि वे आज्ञा-पालन को तैयार न हों तो उन्हें दण्ड दो। जब तुम्हारा निजी सैन्य-दल किसी बुद्धिभ्रष्ट जमींदार को कुचलने के लिए पर्याप्त न हो तो उसके विरुद्ध उसके शत्रुओं को लगा दो, उस जमींदार की भूमि को उसके शत्रु को दे दो और अपनी सेना को उसके शत्रु के सैन्य-दल के साथ सहयोग प्रदान करने के लिए भेज दो जिससे यह विद्रोही अधिक सुविधापूर्वक कुचला जा सके।

"तुम से सूचना प्राप्त करने और इस प्रकार दी हुई सूचना के आधार पर तुम्हारे कार्यों के सम्बन्ध में राजदरबार में (प्रत्यक्ष रूप से उच्च दीवान के समक्ष) विवरण प्रस्तुत करने के लिए राजदरबार के किसी विश्वासपात्र क्लर्क (लिपिक) के साथ मेल कर लो।

"स्थानीय वाकयानवीसों, सवाहिन निगारों तथा हरकारों (अर्थात् राजकीय संवाददाताओं और चरों) को अपने पक्ष में कर लो जिससे वे सदैव तुम्हारी सफलता दर्शाते हुए घटनाओं के सम्बन्ध में अपना विवरण लिख सकें।

"शिकार करने तथा घोड़ों पर चढ़ने में युद्ध के सभी अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास किया करो जिससे तुम अपने को उचित स्थिति में रख सको और जब कभी भी तुम्हें किसी उपद्रव-स्थल की ओर अभियान करना पड़े तो तुम दृढ़ता से युद्ध करने के योग्य हो सको। सताये हुए लोगों के साथ न्याय करो।" [हेदायतुल कवायद, पृ० ३४-३६]

उसके कार्यालय में उसे नियुक्त करने वाली निम्नलिखित सनद में फौजदार के कर्तव्य पूर्णरूप से गिनाये गये हैं :

"दण्ड देने के सर्वोत्तम साधनों के रूप में विद्रोही सरदारों और नियम भंग करने वाले व्यक्तियों के दुर्गों को नष्ट कर दो। सड़कों को सुरक्षित रखो। लगान देने वालों की रक्षा करो। मालगुजारी वसूल करते समय (सैनिक सेवाओं के रूप में प्राप्त जागीरों के) जागीरदारों और (राजभूमि के) करोड़ियों के गुमाश्तों (अभिकर्ताओं) को सैनिक सहायता प्रदान करो।

"लुहारों को आज्ञा दे दो कि बन्दूक चलाने वाले पलीतों का निर्माण न करें। थानेदारों (फौजदारी के अन्तर्गत छोटे-छोटे क्षेत्रों अथवा चौकियों के अधिकारियों) को जिन्हें तुम अपने अन्तर्गत नियुक्त करते हो, अपने कामों पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त करने तथा लोगों से उनकी अधिकृत वस्तुओं को छीनने और निषिद्ध चुंगी (आबवाब) लगाने से बचे रहने के लिए प्रेरित करो।

"जब तक जागीरदारों के अभिकर्ता (agent) अथवा राजभूमि के आमिल तुम्हें सैनिक सहायता के लिए कोई लिखित आदेश न दें, तब तक अपने अधिकार-क्षेत्र के किसी भी ग्राम पर आक्रमण न करो। इस प्रकार का आदेश अथवा दोषी एवं उद्दण्ड गाँव के विरुद्ध शिकायत प्राप्त हो जाने के पश्चात् उस गाँव के उन कुछ प्रमुख लोगों को प्रभावित करने का यत्न करो, जो उत्पात के कारण हैं और उन्हें सुधारने का यत्न करो जिससे वे अपने अपराधों तथा नियम-विरुद्ध आचरणों पर पश्चात्ताप कर सकें और शान्तिपूर्वक कृषि-कार्य करने तथा मालगुजारी देने की ओर प्रवृत्त हों। यदि वे स्वयं अपने को सुधार लें तो आमिल से इसके लिए एक संविदा-पत्र (deed of agreement) ले लो। यदि वे सुधरना चाहते हों तो ग्राम के बुरे लोगों को ताड़ना दो, किन्तु साधारण जनता को न सताओ। सड़कों को सुरक्षित रखो, जंगलों को काट डालो, अवैध दुर्गों को गिरवा दो, आदि।"

संक्षेप में, फौजदार जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, छोटे विद्रोहों को दबाने के लिए, डाकुओं के गिरोहों को भगाने अथवा पकड़ने के लिए, समस्त हिंसात्मक अपराधों की जानकारी के लिए और भूमि-कर अधिकारियों, न्याया-

धीशों (criminal judges) अथवा दोष-वेचकों (censors) के विरोधियों को भयभीत करने के लिए शक्ति का प्रदर्शन करने हेतु देश में स्थित सैनिक-शक्ति का नायक मात्र था। [आईने अकवरी, जिल्द २, पृ० ४०-४१ और स्टोरिया, जिल्द २, पृ० ४५०-४५१ में फौजदार के कार्यों का संक्षेप में वर्णन है।]

५. कोतवाल और उसके कर्तव्य

जन-शान्ति के सम्बन्ध में हम यहाँ पर कोतवाल और उसके कर्तव्यों का भी सुविधापूर्वक उल्लेख कर सकते हैं। वस्तुतः वह नगर-पुलिस के प्रधान के रूप में एक नगर अधिकारी था।

एक आदर्श कोतवाल वह व्यक्ति है जो अपने वाह्य जगत के कार्यों में नियमों का पालन करता है और हृदय में ईश्वर से डरता है। वादशाह अथवा सूवेदार द्वारा न्याय-दरवार या जन-दरवार करने पर उसे उनमें सम्मिलित होना चाहिए। कार्यभार ग्रहण करने पर उसे व्यक्तिगत जाँच द्वारा अपने को सन्तुष्ट कर लेना चाहिए कि उसके पद से सम्वन्धित घोड़े और पैदल वस्तुतः निश्चित संख्या में हैं, उनके पास उनकी उचित साज और सज्जा, हथियार तथा गोदाम हैं, और उसके कार्यालय से सम्वन्धित वस्तुएँ जैसे लम्वे छड़, जंजीरें और कौड़े[६] आदि सरकारी सूची में दर्ज संख्या के अनुसार हैं। उसे जेल के लोगों की संख्या और उनके विरुद्ध लगाये गये दोषों के सम्वन्ध में उनके उत्तरों का ठीक-ठीक पता लगा लेना चाहिए। इसके अनन्तर उसे उन कैदियों के वारे में अपने से उच्च अधिकारी के समक्ष विवरण प्रस्तुत करना चाहिए। जिन्हें वह निर्दोष समझता है, उनको जेल से मुक्त करा देना चाहिए। भुगतान करने में समर्थ दोपी व्यक्तियों के सम्वन्ध में उनसे उचित जुर्माना वसूल करने के लिए आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए और तव उन्हें छोड़ना चाहिए। निर्धन कैदियों के वारे में कोतवाल को विवरण प्रस्तुत करना चाहिए और निर्देशानुसार उनके विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए। जेल में रखे जाने वाले कैदियों के सम्वन्ध में एक आलेख्य (statement) धार्मिक विधि (Canon Law) से सम्वन्धित अधिकारी के यहाँ भेज देना चाहिए और उसके हस्ताक्षर से दिये गये आदेशों का ही कोतवाल को पालन करना चाहिए। मृत्यु-दण्ड पाने वाले व्यक्तियों के अभि-योगों के विषय में कोतवाल को अपने अधिकारियों द्वारा न्यायाधीश के समक्ष निर्णय के दिन स्वतन्त्रतापूर्वक अपना लिखित वयान देना चाहिए, उसे काजी

---

[६] जुलाहा के स्थान पर 'जौलानह' पाठ है

के हस्ताक्षर से युक्त मृत्यु-दण्ड का आदेश प्राप्त कर लेना चाहिए और तब फाँसी देनी चाहिए।

रक्षकों और झाड़ू लगाने वालों को बुलाकर उसे उनसे प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिए कि वे प्रत्येक मुहल्लों की घटनाओं को बिना दबाये अथवा बढ़ाये हुए नित्य प्रति बतलायें। उसे प्रत्येक मुहल्ले से एक प्यादा भरती कर लेना चाहिए और उसे सभी समाचारों के बारे में विवरण प्रस्तुत करने के लिए वहीं एक जासूस की भाँति नियुक्त कर देना चाहिए जिससे वह दोनों साधनों से प्राप्त विवरण की तुलना कर सके और इस प्रकार सच्चाई की जानकारी प्राप्त कर उस मामले में आवश्यक कार्यवाही कर सके।

"न्याय करो जिनसे किसी मामले की सच्चाई तक पहुँचने की शक्ति में काजी की अपेक्षा तुम्हें लोग अधिक पसन्द करें। नगरों के जन-मार्गों पर चोरी तथा बुरे कृत्य करने वाले व्यक्तियों को गिरफ्तार करने तथा तुम्हारे समक्ष लाने के लिए, सूर्यास्त से ६ बजे तक और ६ बजे से प्रातःकाल तक रक्षकों का कार्य करने के लिए सावधान व्यक्तियों की नियुक्ति करो।

"क्रय-विक्रय के स्थानों तथा विवाह-उत्सवों पर जहाँ दर्शक एकत्र होते हैं, जेब काटने वालों तथा वस्तुओं को छीनने वालों को पकड़ने तथा उन्हें सजा देने के निमित्त, तुम्हारे पास लाने के लिए, रक्षकों को रखो।

"पेशेवर औरतों, नर्तकियों, शराब-विक्रेताओं तथा मादक वस्तुओं के दुकान-दारों को बुलाकर उनसे यह प्रतिज्ञा करा लो कि यदि वे किसी भी प्रकार का निषिद्ध कार्य करेंगे तो उन्हें एक निश्चित जुर्माना देना होगा। यदि वे प्रतिज्ञा भंग करते हैं तो उन पर जुर्माना करो। अर्द्ध-रात्रि के समय अपने अनुयायियों के साथ घोड़ा लेकर शहर के चारों ओर तथा मुहल्लों में पहरा दो। जिन गलियों में तुम अपने अनुचरों को भेजकर चोरों के अड्डों का पता लगा चुके हो, वहाँ तुम्हें समय पर पहुँच जाना चाहिए और उनकी (चोरों की) हानिकर योजनाओं को आरम्भ में ही नष्ट कर देना चाहिए।

"अत्यन्त सावधानी के साथ बन्दियों की चौकसी करो जिससे उनमें से कोई भाग न जाय।" [हेदायेतुल कवायद, पृ० ६७-७१]

आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० ४१-४३ में भी कोतवाल के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है, किन्तु अकबर के बहुत-से नियम जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए इस अधिकारी को निर्देश दिये गये थे, बादशाह की मृत्यु के पश्चात् हटा लिये गये थे। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि आईने अकबरी का सम्पूर्ण अनुच्छेद वास्तविक स्थिति प्रकट करने के लिए नहीं अपितु कोतवाल के विषय में केवल

आदर्श दर्शाने के निमित्त है। इसमें वर्णित कर्तव्यों को एक पूर्ण व्यक्ति ही सन्तोषजनक रीति से पूरा कर सकता था इसलिए मैं इस स्रोत को कोई महत्त्व नहीं देता हूँ।

मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० १६८-१७० में उल्लिखित अकवर के फरमानों में कोतवाल के सम्वन्ध में निम्नलिखित निर्देश सम्मिलित हैं: "कोतवाल क्लर्कों की सहायता से उस स्थान के मकानों और भवनों की एक सूची तैयार करे, उसमें प्रत्येक मकान के अन्तर्गत उसके निवासियों का नाम लिखे और इस वात का भी उल्लेख करे कि वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं, उनमें से कितने वाजारिस (Bajaris) हैं, कितने कारीगर हैं, कितने सैनिक हैं और कितने दर्विश हैं। प्रत्येक मकान से जमानत लेकर वह उनका पारस्परिक सहयोग निश्चित कर दे और मुहल्लों की सीमा स्थिर कर प्रत्येक के लिए एक मुखिया नियुक्त करे जिसकी सलाह से वहाँ का प्रत्येक कार्य हो। प्रति दिन तथा प्रति रात्रि जासूस आयें और कोतवाल के कार्यालय में प्रत्येक मुहल्ले की घटनाओं के कारणों को दर्ज करायें। एक मेहमान के आने पर चाहे वह सम्वन्धी हो अथवा अपरिचित, उसकी सूचना उस मुहल्ले के मुखिया को हो जानी चाहिए। कोतवाल को प्रत्येक व्यक्ति के आय-व्यय के सम्वन्ध में सदैव जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि जव एक व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय करता है तो यह निश्चित है कि वह भ्रष्टाचार कर रहा है। उसे वाजारों में वस्तुओं का मूल्य निश्चित कर देना चाहिए और अधिक क्रय अथवा थोड़ा विक्रय कर एकाधिकार उत्पन्न करने से धनिकों को वंचित कर देना चाहिए। कोतवाल को अपने क्षेत्र में शराव वेचना और पीना वन्द करवा देना चाहिए।"

वास्तविक निरीक्षण के आधार पर मनुची (जिल्द २, पृ० ४२०-४२१) कोतवाल के कार्यों के सम्वन्ध में और महत्त्वपूर्ण विवरण देता है। "शराव वनाने पर रोक लगाना उसका कार्य है। उसे यह भी देखना पड़ता है कि नगर में वेश्याएँ तो नहीं हैं और कोई ऐसी वात तो नहीं हो रही है जो वादशाह (औरंगजेव) द्वारा निषिद्ध हो। जो कुछ होता है, उन सव के वारे में वह पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है जिससे वह वादशाह के पास अपनी रिपोर्ट भेज सके। इसी निमित्त मुगल-साम्राज्य भर में कुछ निश्चित व्यक्ति नियुक्त हैं जिन्हें 'हलालखोर' कहते हैं। इन्हें वाध्य होकर प्रत्येक घर की सफाई करने के लिए दिन में दो वार जाना पड़ता है और ये कोतवाल से वहाँ जो कुछ होता है, कह देते हैं। चोरों और अपराधियों को पकड़ने का कार्य भी उसी का है। वह काजी के अधीनस्थ

है और उसी से आदेश प्राप्त करता है। उसके अधीन अश्वारोहियों का एक बड़ा दल तथा एक बड़ी संख्या में पैदल सिपाही हैं क्योंकि प्रत्येक मुहल्ले में एक अश्वारोही और बीस से लेकर तीस पैदल सिपाही हैं जो एक प्रकार से गश्त करते हैं।"

नियुक्ति सम्बन्धी सनद में कोतवाल को यह प्रेरित किया जाता है कि वह इस बात का ध्यान रखे कि उसके नगर में किसी प्रकार की चोरी न हो और वहां के लोग सुरक्षा का आनन्द लूटें और अपना-अपना व्यवसाय शान्तिपूर्वक करें। उसे काजी के लिखित आदेशों का पालन करना है। धन का अपहरण करने वाले अपराधियों को जेल में रखने अथवा उन्हें छोड़ने में उसे अपनी स्वेच्छा से कार्य नहीं करना है। नगर में स्थित किसी घाट पर किसी प्रकार का कर न लगाने में उसे सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि बादशाह ने उसे उठा लिया है। नाविकों को भी यात्रियों से उचित कर से अधिक वसूल करने से मना कर देना चाहिए और नियमोल्लंघन करने वाले व्यक्तियों तथा आततायियों को इन घाटों से पार उतारना बन्द कर देना चाहिए।

कोतवाल के कार्यालय के समक्ष तथा जन-मार्गों के किनारे पर एक चबूतरा होता था जहां अपराधियों अथवा उनके कटे हुए सिरों का प्रायः प्रदर्शन होता था।

६. संवाददाता

केन्द्रीय शासन जिनके द्वारा देश के समाचारों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता था, उनमें (१) वाकियानवीस, (२) सवानिह-निगार, (३) खुफिया नवीस (ये तीनों लिखित विवरण भेजते थे), तथा (४) हरकारा, सम्मिलित थे। 'हरकारा' का अर्थ है समाचारों को ले जाने वाला किन्तु वस्तुतः वह एक जासूस था जो मौखिक समाचार लाया करता था और कभी-कभी लिखित समाचार भी भेज देता था।

वाकियानवीस (जिसे कभी-कभी वाकिया-निगार भी लिखा जाता था) और सवानिह-निगार शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं अर्थात् घटनाओं का लेखक अथवा निरीक्षक। इनमें मूल अन्तर यह था कि वाकियानवीस अधिक व्यवस्थित तथा जन-संवाददाता था जबकि सवानिह-निगार केवल महत्त्वपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध में एक गुप्त संवाददाता की भांति कार्य करता था। प्रत्येक सैन्य-क्षेत्र, प्रान्त तथा बड़े नगरों से सम्बद्धित एक वाकियानवीस तथा विशेष स्थानों पर कभी-कभी एक सवानिह-निगार होता था। इसका उद्देश्य यह था कि सवानिह-निगार एक जासूस का कार्य करे और वाकियानवीस पर नियंत्रण

रखे। मीराते अहमदी (सप्लीमेण्ट, पृ० १७५) से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है :—"पूर्वकालीन राज्यों में प्रान्तीय घटनाओं के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत करने के लिए वाकियानवीसों की नियुक्ति की जाती थी किन्तु स्थानीय अधिकारियों की दलबन्दी में उनके सम्मिलित हो जाने की आशंका से सवानिह-निगार (जिन्हें खुफिया नवीस भी कहते थे) सूबों में गुप्त रीति से रहने तथा समाचारों के सम्बन्ध में विवरण देने के लिए नियुक्त किये जाते थे। आखिर-कार सूबे के अन्तर्गत डाक-व्यवस्था के निरीक्षण का भार भी जब सवानिह-निगार का सौंपा गया तो सारे रहस्य का उद्‌घाटन हुआ।" मेरा विश्वास है कि सूबों में तभी एक तीसरे अथवा अत्यन्त गोपनीय वर्ग के संवाददाताओं अर्थात् हरकारों या सच्चे खुफिया नवीसों की नियुक्ति की गयी। मनुची (जिल्द २, पृ० ३३१) का भी यही आशय है।

जहाँगीर के समकालीन इतिहास, बहारिस्ताने घैबी (पेरिस पाण्डुलिपि, पृ० १०१अ), के अनुसार प्रत्येक सूबे में जन-समाचार-लेखकों की नियुक्ति तथा बादशाह के दरबार में खुलेआम उनके विवरणों के पढ़ने की प्रथा बादशाह द्वारा प्रत्याशित (expected) फारसी राजदूतों के समक्ष उसके बड़प्पन का प्रदर्शन करने के लिए प्रचलित की गयी थी। सूबों के गुप्त संवाददाता अब्बासी शासन के एक महत्त्वपूर्ण अंग थे। [**केम्ब्रिज मेडिवल हिस्ट्री, जिल्द ४, पृ० २८३**]

सूबे का गुप्तचर अर्थात् वाकियानवीस छोटे परगनों में वहाँ की घटनाओं के सम्बन्ध में उसके पास विवरण भेजने के लिए बहुत-से अभिकर्ताओं (एजेण्टों) की नियुक्ति करता था। वह इन विवरणों में से बादशाह के कानों तक पहुँचाने योग्य वृत्तान्तों को चुन लेता था और इन्हें प्रान्तीय समाचार-पत्रों में सम्मिलित कर लेता था। सूबेदारों, दीवानों, प्रान्तीय राजधानी के उपान्तों के फौजदारों, न्यायालयों, कोतवाल के चबूतरों के कार्यालयों में वह अपना एक क्लर्क नियुक्त करता था जो सन्ध्या समय वहाँ के दिन भर के वृत्तान्तों का एक लेखा उसके पास ले जाया करता था। बहुत-से महत्त्वपूर्ण परगनों में मृत, फरार अथवा कार्य पर अनुपस्थित मनसबदारों की कुर्क जागीरों के सियाहा को प्रान्तीय दीवान के पास भेजने के लिए शाही दरबार द्वारा सीधे पृथक् संवाददाताओं की नियुक्ति होती थी। [**मीराते अहमदी, सप्लीमेंट, पृ० १७४-१७५**]

जब प्रान्तीय वायसराय जन-दरबार करते थे तो वाकियानवीस उनमें सम्मिलित होता था और तत्काल वहाँ के वृत्तान्तों को लिख लेता था। इस संवाददाता द्वारा लिखित समाचारपत्रों का विषय बादशाह के पास भेजने

के पूर्व सूबेदार के पास अथवा सैन्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में होने पर सेनापति के पास भेज दिया जाता था। सवानिह-निगार ऐसा नहीं करता था।

हेदायेतुल कवायद के अनुसार वाकियानवीस पर सप्ताह में एक वार और सवानिह-निगार पर महीने में आठ वार घटनाओं के सम्बन्ध में अपना विवरण भेजने का दायित्व डाला गया था। इसकी भाषा से ऐसा विदित होता है कि सवानिह-निगार समस्त सूबे का विवरण देता था जबकि वाकियानवीस केवल स्थान विशेष के ही विषय में विवरण प्रस्तुत करता था।

वहुत-से सूबों और समस्त छोटी-छोटी सेनाओं में वख्शी और वाकिया-नवीस के पद एक ही व्यक्ति में निहित होते थे।

खुफिया नवीस अथवा 'गुप्त लेखक' एक अत्यन्त विश्वासपात्र अभिकर्ता (agent) था। वह स्थानीय अधिकारियों के पास जो प्रायः उसका नाम भी नहीं जानते थे, विना किसी प्रकार का पत्रव्यवहार किये ही, गुप्त रीति से विवरण प्रस्तुत किया करता था। इन गुप्तचरों से सभी लोग अत्यन्त भयभीत थे और उनका कार्यालय, जैसा कि मैं समझता हूँ, अव भी हमारी कुछ सामन्त-शाही रियासतों में कायम है।[७] [आलमगीरनामा, पृ० १०८१]

सूबे में नियुक्त हरकारों को सूबेदार के समक्ष चारों ओर के समाचारों और वृत्तान्तों का विवरण प्रस्तुत करना पड़ता था और प्रान्तीय डाक द्वारा शाही दरवार के लिए भेजे जाने वाले पत्रों को वन्द लिफाफे में भेजना पड़ता था। हरकारा वाकिया-निगार एवं सवानिह-नवीस की भाँति नाज़िम के कार्यालयों तथा अन्य स्थानों में अपना अभिकर्ता (एजेण्ट) भी रखता था। ये तीनों 'अखवार-नवीस' कहे जाते थे। [**मीराते अहमदी, ओ० पी० एल० पाण्डु-लिपि, पृ० ६९१व; सप्लीमेण्ट, पृ० १७५** भिन्न-भिन्न वर्णन करते हैं]

समाचारपत्र दरवार के एक अधिकारी के पास भेजे जाते थे जिसे डाक-चौकी का दारोगा अथवा 'डाक और खुफिया विभाग का अध्यक्ष' कहते थे। यह उन्हें विना खोले ही वादशाह के सम्मुख रखने के निमित्त वज़ीर को दे दिया करता था। इन चारों श्रेणियों के गुप्तचर इसी दारोगा के आदेशों के अनुसार कार्य करते थे जो उनका उच्चाधिकारी एवं रक्षक था। कभी-कभी जव कोई सूबेदार अपने खिलाफ समाचार भेजने पर स्थानीय संवाद-लेखक का खुलेआम अनादर करता अथवा उसे दण्ड देता था, तो दारोगा अपने अधीनस्थ

---

७ गुप्तचर को अव 'पर्चे वाला' कहते हैं। यह उपाधि हेदायेतुल कवायद, पृ० ५५ में वर्णित 'पर्चे नवीस' नहीं समझनी चाहिए।

कर्मचारी का पक्ष लेता था और उस सूवेदार को दण्ड दिलाता था। औरंगजेब के राज्यकाल में, जो जासूसों को अपनी आँख और नाक समझता था, गुप्तचर-विभाग के प्रधान वड़े ही प्रभावशाली और विश्वासपात्र थे। इस सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक उदाहरण हमीदुद्दीन की अहकामे आलमगीरी (अनुच्छेद ६१, ६२, ६४ और ६५) में दिये गये हैं, जिसका मैंने 'औरंगजेब की कहानियों' के रूप में अनुवाद किया है।

हेदायेतुल कवायद, पृ० ५१-५५ के अनुसार नव-नियुक्त वाकियानवीस को निम्नलिखित धूर्ततापूर्ण परामर्श (shrewd advice) दिये गये हैं :

"सच्चाई का ही विवरण दो, ऐसा न हो कि वादशाह दूसरे साधनों द्वारा तथ्यों को जान ले और तुम्हें दण्ड दे। तुम्हारा कार्य नाजुक है। तुम्हें दोनों पक्षों की सेवा करनी है। अत्यन्त वुद्धिमानी और विचार के साथ कार्य किया जाय जिससे वादशाह द्वारा निर्धारित नियम और उनकी रक्षा के हितार्थ नियुक्त अधिकारी दोनों का ही विरोध न हो। वहुत-से उच्चाधिकारियों के मुहल्लों में निपिद्ध वातें होती हैं। यदि तुम उनका सही-सही विवरण दोगे तो अधिकारी कलंकित होंगे और यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो अपने को ही क्षति पहुँचाओगे। ऐसी परिस्थिति में मुहल्लों के स्वामियों से कह दो कि 'उनके मुहल्लों में जो निपिद्ध वातें हो रही हैं, वे उन्हें बन्द करा दें'। यदि वे कोई सन्तोपजनक उत्तर न दें तो मुहल्ले के कोतवाल को उसके कुप्रवन्ध की ओर संकेत करते हुए धमकी दो। मुहल्लों का स्वामी तव इसे जानेगा। अवसर आने पर यदि मुहल्ले की वुराइयों को दूर न करने के कारण कोई इसकी सूचना वादशाह को देता है तो तुम अपने द्वारा मुहल्ले के स्वामी और कोतकाल को दी गयी आज्ञाओं का व्यौरा देकर सुविधापूर्वक अपनी रक्षा कर सकते हो।

"प्रत्येक वात में तथ्य ही लिखो किन्तु अमीरों को अप्रसन्न करने से वचो। सावधानी के साथ छानवीन करके ही अपने वयानों को लिखो।"

"सप्ताह में एक वार वाकियानवीसों, दो वार सवानिह-निगारों और मास में एक वार हरकारों के अखवार को भेजना चाहिए। तुरन्त वताये जाने वाले आवश्यक विपयों के अतिरिक्त हर मास में दो वार नाज़िम और दीवान के यहाँ से पत्र भेजना चाहिए। किन्तु अठारहवीं शताव्दी के आरम्भ में, गुजरात में, सप्ताह में एक वार वादशाह के पास सूवेदारों और दीवानों के पत्रों तथा कोपों के नकद रोकड़ के विवरण के साथ इन कागजों को भेजने की प्रथा थी। [मीराते अहमदी, सप्लीमेण्ट, पृ० १७५]

अध्याय ५

करारोपण (Taxation)

१. कर संग्रह करने वालों के प्रति भारतीय कृषकों की स्वाभाविक शत्रुता

भारतीय इतिहास का एक चेतन्य छात्र अत्यन्त प्राचीनकाल से ही कर देने वालों तथा कर-प्रापकों के बीच की स्वाभाविक शत्रुता से अत्यन्त उत्तेजित हो उठता है। भारत में आये हुए यूरोपीय यात्रियों ने देखा है कि प्रजा अपना न्यायसंगत कर देने में भी कितनी अनिच्छुक थी और उससे राज्य-कर वसूल करने के लिए सेना का प्रयोग करना पड़ता था [**स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ४५०**] दूसरी ओर संस्कृत साहित्य तथा फारसी न्यायालय-अभिलेखों (Persian Court-annals) के अध्ययन से हमें ज्ञात है कि राज्य-कर्मचारी अर्थात् मालगुजारी अधिकारी तथा अनुजीवी किसानों को किस प्रकार लूटते थे और दोनों युगों में इस प्रकार के रक्तशोधकों से प्रजा की रक्षा करने के लिए सम्राट् की दुहाई दी जाती थी।

भारतीय किसान का कर देने से स्वभावतः परांगमुख होने का आंशिक कारण यह था कि वह दिये गये कर के वदले में शासन से बहुत कम लाभ भी नहीं उठा पाता था, किन्तु इसका प्रधान कारण उस शासन का अनिश्चित होना था। मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार मुग़ल-भारत में राज्य सामाजिक कर्तव्यों का पालन नहीं करता था किन्तु आक्रमणकारियों और विद्रोहियों से केवल देश की रक्षा करने का भार लेता था। कभी-कभी राष्ट्रीय सुरक्षा का यह कार्य भी बुरी तरह से किया जाता था जबकि चोरों और डाकुओं से ग्राम की रखवाली करने का कार्य ग्राम एजेन्सी ही करती थी। इसे राज्य की आय से नहीं अपितु गाँव वालों के चन्दे से वेतन दिया जाता था। इस प्रकार जनता प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी नहीं पाती थी जिसके वदले में शासन उसके परिश्रम के फल के एक अंश को उससे न्यायानुकूल माँग सके।

दूसरे, राजवंशों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते थे; एक ही राजवंश के अन्तर्गत उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध अपवाद न होकर एक प्रकार से नियम वन

गये थे और हिन्दू राजाओं तथा मुसलमान सुल्तानों द्वारा पड़ोसी देशों पर आक्रमण करना (संस्कृत में दिग्विजय, फारसी में मुल्कगीरी) इतना व्यापक कर्तव्य समझा गया था कि भारतीय किसान मालगुजारी देने का इच्छुक होने पर भी कदाचित् ही निश्चित रूप से यह जान पाता था कि उसे किसे मालगुजारी देनी है। दूसरी वार उसे वही धन न देना पड़े इससे वह स्वभावतः टालना चाहता था। द्रव्य-हानि उठाने की अपेक्षा वह कुछ महीने अथवा साल प्रतीक्षा करके कि कौनसा पक्ष राजसिंहासन पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हो गया है, मालगुजारी देना अधिक बुद्धिमानी समझता था। किन्तु इस प्रकार एकत्र होने वाले मालगुजारी के अवशिष्ट धन का इतनी देर वाद कभी भी पूर्णरूप से भुगतान न हो पाता था क्योंकि किसान अपने संग्रह का वहुत-सा अंश स्वयं भोजन के रूप में समाप्त कर देता था और शेप वहुत-सा अंश देश की अव्यवस्थित दशा में लूट लिया जाता था।

कई शताब्दियों की राजनीतिक अरक्षा एवं क्रान्ति ने बीसवीं शताब्दी के भारतीय किसानों के मस्तिष्क में भी एक अनुबद्ध (sub-conscious) किन्तु अतिरंजित विश्वास छोड़ रखा है कि उत्तराधिकारी के लिए युद्ध होना स्वाभाविक ही है और जव कभी भी शासन कहीं भी युद्ध में रत हो तो बुद्धिमान कृषकों को देय मालगुजारी का भुगतान करने के पूर्व दो वार अवश्य सोचना चाहिए।

जर्मनी के साथ प्रथम विश्व-युद्ध के समय चिटगाँव में खासमहल के कई किसान भूमि-कर देने में हिचके और उन्होंने डिप्टी-कलक्टर से निवेदन किया कि "यदि कैसर आता है तो क्या वह हमसे दुवारा मालगुजारी न माँगेगा। महाशय हम लोगों को दूना भुगतान करने से वचायें।"

एडवर्ड सप्तम की मृत्यु के समय मैं उत्तरी वंगाल के एक गाँव में था। उसके पुत्र के गद्दी पर वैठने की वात सुनकर वहाँ की जनता ने पहला प्रश्न जो मुझसे पूछा था, वह इस प्रकार था, "क्या उसके सम्वन्धी उसके राज्याभिपेक के लिए झगड़ नहीं रहे हैं ?" इससे हम सुविधापूर्वक उन दीर्घकालीन युगों की अव्यवस्था एवं अत्याचार का अनुमान लगा सकते हैं जो हमारे ग्रामीणों के वीच इस परम्परागत विश्वास के रूप में अव भी विद्यमान है।

२. भुगतान का वकाया रखने वाले कृषक

अतः मालगुजारी-संग्रह प्रजा और सरकार के वीच सदैव झगड़े का कारण था और अवशिष्ट धन का कदाचित् ही पूर्णरूप से भुगतान हो पाता था। इस दूषित वातावरण में राजकीय कलक्टरों के लिए दूसरा न्यायसंगत मार्ग यह

था कि वे कभी भी समाप्त न होने वाले अवशिष्ट धन के नाम पर प्रजा से उसके जीवन-निर्वाह के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु बलपूर्वक वसूल कर लें। इसलिए मुगलकालीन भारत में अधिकांश भागों में प्रजा की वही दशा थी जो पन्द्रहवें लुई के समय में सदैव अनुचित करों को देने से बचने का यत्न करने वाले फ्रांसीसी किसानों की थी अथवा निरन्तर अपने भूस्वामियों का ऋणी रहने वाले आयरलैण्ड के असामियों की थी।

केवल इतना ही अन्तर था कि ब्रिटिशकाल के पूर्व ऐसे अपराधी के लिए न तो कोई दण्ड था और न (देश में अधिक उपजाऊ भागों से होने वाले यातायात के अभाव के कारण स्थानीय अकाल के अतिरिक्त) किसानों में भुखमरी ही थी। प्राचीन एवं मध्य-युगों में किसानों की अधिसम्पत्ति छोड़ दी जाती थी और (सम्पूर्ण खेती नष्ट हो जाने के अतिरिक्त) उसके भोजन के लिए पर्याप्त अवशेष रह जाता था। फसल के विभाजन द्वारा (बटाई पद्धति) ही भुगतान की प्राचीन प्रथा थी।[१] यह किसानों के लिए लाभप्रद थी क्योंकि भुगतान वर्ष की वास्तविक फसल पर ही निर्भर करता था और वह आजकल की भाँति रुपयों की लगान के सदृश न था जो विभिन्न वर्षों की अनपेक्षित उपज का एक निश्चित अंश है। निरन्तर युद्ध एवं अव्यवस्था के उन दिनों में भी किसान प्रिय एवं मूल्यवान थे क्योंकि उनके स्वामियों को सशस्त्र सिपाहियों के रूप में उनकी आवश्यकता थी। जमींदारों के बीच असामियों के लिए प्रतियोगिता नियम थी और निर्धन किसान एक जमींदार के यहाँ से दूसरे जमींदार के पास इस आशय से भाग जाया करते थे कि उसे पहले जमींदार से उसका अवशिष्ट धन देने से छुटकारा मिल जायगा और नये भूस्वामी के अधीन उन्हें अधिक सुख मिलेगा। केवल साठ ही वर्ष पूर्व उत्तरी बंगाल में इस प्रकार पलायन करने वाले किसानों के उदाहरण बराबर मिलते थे।

---

[१] देखिए, अबू युसूफ, पृ० ७६ :—"वस्तुओं के रूप में उचित और हलके भुगतान (मुकासम अर्थात् फसलों की बटाई) की अपेक्षा कोष के लिए अधिक लाभप्रद तथा भूमि-कर देने वाले लोगों के लिए कम असुविधाजनक, उन दोषों से जिनको वे स्वयं आपस में एक-दूसरे पर भार डालकर उत्तरदायी बनते हैं, अपने को बचाने में अधिक प्रभावशाली तथा शासकों और कलक्टरों के बुरे व्यवहार से अपनी रक्षा करने के लिए अधिक उचित कोई वस्तु मुझे नहीं मिली है। इससे राजकुमार को संतोष तथा करदाता को लाभ और एक से दूसरे पर करभार डालने से सम्बन्धित पारस्परिक अन्याय के विरुद्ध एक प्रत्याभूति (guarantee) की प्राप्ति होती है।"

३. किसानों पर राज्याध्यक्षों द्वारा निन्दित नियम-विरुद्ध कर

मालगुजारी का भुगतान करने से इन्कार करने तथा उसे रोक रखने की प्रजा की स्वाभाविक प्रकृति तथा उसके अवशिष्ट धन का प्रत्येक तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष अवलेखन कर (writing off) उसे नये सिरे से कर देने का अवसर प्रदान करने में राज्य की असफलता ही मुग़ल माल-विभाग में अशान्ति का प्रधान कारण थी। माल-विभाग के अनुजीवियों तथा कुछ बादशाहों के लोभ से भी इस दोष को उत्तेजना प्राप्त थी। मुग़लकाल में जनता से लिये गये अनधिकृत करों (आबवाब) की सूची का जब मैं वर्णन करता हूँ तो पाठक जनता से—जन्म, जीवनपर्यन्त और मृत्यु के पश्चात् भी—रुपया ऐंठने के साधनों की कल्पना करने में मानव-मस्तिष्क की आश्चर्यपूर्ण प्रखरता का अनुभव करेंगे। इन आबवाबों में से बहुतों का जनता सीधे भुगतान करती थी। बहुतों का छोटे-छोटे दुकानदारों तथा नागरिकों पर भी प्रभाव पड़ा हुआ था। किन्तु आबादी विशेष रूप से कृषकों की ही थी और विक्रयार्थ बहुत-सी वस्तुएँ भूमि से ही उत्पन्न होती थीं, अतः आबवाबों का अत्यधिक भार किसानों को ही वहन करना पड़ता था।

आबवाबों के सम्बन्ध में यह कहना उचित ही है कि बादशाहों और मालगुजारी वसूल करने वालों के बीच नीति सम्बन्धी संघर्ष स्पष्ट था। बादशाह अपने अधिकारियों को मालगुजारी वसूल करने में जनता का ध्यान रखने, उनके प्रति दयालुता का प्रदर्शन करने, समस्त आबवाबों को छोड़ देने तथा स्थानीय कष्टों को दूर करने के सदैव आदेश देते थे और मालगुजारी वसूल करने वाले अधिकारी निर्वाह करने के लिए आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त जनता से प्रायः प्रत्येक वस्तु ऐंठ लिया करते थे। एक बादशाह सभी आबवाबों को हटाने तथा अपने सभी अधिकारियों को "वर्तमान तथा भविष्य" में इन निर्देशों का पालन करने की घोषणा करता था किन्तु ये ही आबवाब पुनः उत्पन्न हो जाते थे और उसके उत्तराधिकारी को पहली के समान ही दूसरी घोषणा द्वारा उन्हें पुनः हटाना पड़ता था। दूसरे मुसलिम देशों का, उदाहरणार्थ मिस्र का, भी यही अनुभव था। [देखिए, एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ३, पृ० १७६-१७७ माक्स के अन्तर्गत]

किसानों पर किसी तरह का कर न लगाने की मुग़ल-शासन के सर्वप्रधान की नीति समकालीन इतिहासों एवं पत्रों से स्पष्ट हो जाती है और इसकी वास्तविकता को सिद्ध किया जा सकता है। यह केवल एक पवित्र इच्छा ही

नहीं थी। शाहजहाँ और औरंगजेब के राज्यों में बहुत-से उदाहरणों का उल्लेख है, जिनमें बादशाह के कानों तक प्रजा की शिकायत पहुँचने पर कठोरतापूर्वक अनुचित मालगुजारी वसूल करने वालों तथा प्रान्तीय वाइसरायों को पदच्युत कर दिया गया था। इण्डिया आफिस लाइब्रेरी की ३७० नम्बर की फारसी पाण्डुलिपि के ६८वें फोलियो पर खुलने वाले पृष्ठ पर इसी आशय की एक विशेष कहानी का वर्णन है। इसमें किसानों के प्रति समान उदारता एवं न्याय करने की शाहजहाँ की लालसा का स्पष्ट वर्णन है।

कहानी इस प्रकार है—"एक दिन शाहजहाँ अपने साम्राज्य की मालगुजारी की प्राप्ति की जाँच कर रहा था। उसे ज्ञात हुआ कि किसी गाँव की वर्तमान वर्ष की मालगुजारी गत वर्षों की मालगुजारी की अपेक्षा कुछ हजार (दाम ?) अधिक दर्ज की गयी है। तुरन्त ही उसने उच्च दीवान सादुल्लाखाँ को इस अन्तर को समझाने के लिए अपने सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया। सादुल्लाखाँ उस समय अपने खजाने में अपने समक्ष माल-विभाग के कागजों के एक खुले हुए बंडल को रखे हुए बैठा था और अपने विभाग के कार्य में दिन-रात अपना ध्यान लगाने के कारण झपकी ले रहा था। राजकीय संदेशवाहक ने उसको ठीक उसी दशा में और उसी पोशाक में बादशाह के सम्मुख लाकर पेश कर दिया। शाहजहाँ ने उसके करारोपण में वृद्धि होने का कारण पूछा। स्थानीय जाँच-पड़ताल के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि नदी के अपने मार्ग से थोड़ा-सा हट जाने के कारण वहाँ पर एक नवीन भू-भाग आ गया था जिसके कारण ग्राम के क्षेत्रफल में तथा राज्य की आय में वृद्धि हुई थी। बादशाह के पूछने पर कि वह भूमि 'खालसा' थी अथवा 'अयमा', पुनः जाँच की गयी तो मालूम हुआ कि यह भूमि माफी में दी हुई भूमि (rent-free grant of land) के भाग (अयमा) से सम्बन्धित थी। तदनन्तर शाहजहाँ ने आवेश में आकर कहा कि 'उस भू-भाग का जल उस क्षेत्र के अनाथ बच्चों, विधवाओं एवं निर्धनों की करुण पुकार के कारण सूख गया है। यह उनके लिए एक ईश्वरीय देन है और तुमने इसे राज्य के लिए अलग करने का दुस्साहस किया है। यदि ईश्वरीय सृष्टि की रक्षा करने की अभिलाषा मुझे न रोके होती तो उस दूसरे शैतान, अत्याचारी फौजदार को जिसने इस नवीन भूमि से मालगुजारी वसूल की थी, फाँसी का हुक्म दे चुका होता। अन्याय के इस प्रकार के बुरे कामों से बचने के लिए दूसरों को चेतावनी के रूप में उसे पदच्युत करने का दण्ड पर्याप्त होगा। इस अतिरिक्त संग्रह को इसके अधिकारी कृषकों को लौटाने के लिए तुरन्त हुक्म दो'।"

यह कहानी सच न हो किन्तु यह वातावरण तथा अपनी प्रजा के लिए शाहजहाँ की दयालुता में जन-विश्वास को प्रकट करती है।

४. माल-विभाग के निम्नकोटि के निष्ठुर एवं निर्दय कर्मचारी

मुग़लकालीन भारत के निम्नकोटि के कर्मचारी इतने भ्रष्ट थे कि उन्हें सुधारा नहीं जा सकता था, किन्तु किसी दीवान विशिष्ट के अतिरिक्त उच्चकोटि के अधिकारी प्राय: पूर्णत: न्यायपरायण और राजनीतिज्ञ सदृश थे। ये दीवान कागज पर मालगुजारी की माँग को पूरा कर देते थे और वसूली को उच्चतम दाँव पर लगा देते थे जिसका परिणाम बड़ा अनिष्टकारी होता था। सत्रहवीं शताब्दी के उड़ीसा के मालगुजारी सम्बन्धी इतिहास में इसके उदाहरण मिलते हैं।

सन् १६६२ में उड़ीसा के सूबेदार ने लिखा था कि "नये दीवान मुहम्मद हाशिम ने राज्य-भूमि के महालों को उजाड़ दिया था और उनके मामले मालगुजारी के असंगत धन के प्राक्कलन (assessment) एवं विवरणों की असावधानी के फलस्वरूप अस्तव्यस्त हो गये थे। वह इस प्रकार कार्य करता था : जब करोड़ी के पद को एक अभ्यर्थी स्वीकार करता था तो हाशिम उस पर परगना के कागजी प्राक्कलन को लाद देता था और उसे उस स्थान की वास्तविक उपज का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पूर्व ही वहाँ भेज देता था। कुछ समय के पश्चात् उस पद पर दूसरा व्यक्ति नियुक्त कर दिया जाता था। हाशिमखाँ इस मनुष्य से अपने लिये रुपया लेकर पहले करोड़ी को पदच्युत कर देता था तथा दूसरे की नियुक्ति कर देता था और पहले के नियुक्त कलक्टर की अपेक्षा अधिक मालगुजारी देने के लिए उससे प्रतिज्ञा करवा लेता था। थोड़े समय बाद एक तीसरा व्यक्ति उत्पन्न हो जाता था जो राज्य के लिए उससे भी अधिक धन देने के लिए तैयार होता था और वह परगने का कलक्टर बनाकर भेज दिया जाता था। इस प्रकार खाँ ने कागज पर कुछ स्थानों की मालगुजारी दूनी और कुछ की तिगुनी कर दी थी जबकि किसान इसका भुगतान करने में असमर्थ हो भाग गये थे और गाँव वीरान हो गये थे।" [**स्टडीज इन औरंगजेब्स रेन, अध्याय १४, अनुच्छेद १५**]

थोड़े समय बाद ही यह व्यक्ति (हाशिमखाँ) अपने पद से हटा दिया गया था।

बादशाह, उच्च दीवान और सूबेदार भी किसानों के साथ व्यवहार करने में नम्र एवं न्यायपरायण हो सकते थे; किन्तु निम्नकोटि के अधिकारी अथवा मालगुजारी सम्बन्धी कर्मचारी स्थान विशेष पर रहने वाले थे अतएव इनका

किसानों के साथ सीधा सम्पर्क था और इसलिए उनकी निष्ठुरता और लोभ से, दूरस्थ बादशाह अथवा प्रधान की दयापूर्ण भावनाओं एवं दानपूर्ण घोषणाओं की अपेक्षा, किसान अत्यधिक प्रभावित थे। सत्रहवीं शताब्दी में इस तथ्य को भलीभाँति जाना जाता था।

महान् एवं नेक उच्च दीवान सादुल्लाखाँ कहा करता था कि जो दीवान किसान के साथ न्याय नहीं करता वह अपने समक्ष कलम और दवात रखे हुए एक राक्षस के समान है। इस कहावत का औचित्य स्पष्ट हो जायगा यदि यह स्मरण किया जाय कि फारसी का 'अ' अक्षर भारतीय नरकुल की कलम की भाँति एक लम्बी लम्बाकार पंक्ति है जिसका निचला भाग नुकीला है और अक्षर 'न' देशी दवात की भाँति सिरे पर एक खुले हुए वृत्त के आकार का है तथा 'दिव' शब्द का अर्थ है "एक बुरी आत्मा"। अतः 'दीवान' शब्द का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—दिव+अ अथवा एक कलम+न अथवा एक दवात। [रुक्काते आलमगीरी, पत्र सं० १५४]

वस्तुतः स्थानीय अधिकारियों तथा माल-विभाग के कर्मचारियों की धूर्तता 'मयूर सिंहासन' के स्वामी (शाहजहाँ) के लिए भी अत्यधिक थी और उसकी मृत्यु के पश्चात् पचास से अधिक आबवाब पनप उठे।

५. मालगुजारी से सम्बन्धित अधिकारी दस्तूरी क्यों लेते थे ?

सूबेदार से लेकर निम्नकोटि के कर्मचारियों द्वारा दस्तूरी और भेंट लिया जाना, पूर्व तथा पश्चिम में समान दृष्टि से, मध्यकालीन शासन के बहुत बड़े दोषों में एक था। मुग़ल-साम्राज्य में अन्य तीन कारणों द्वारा इस दोष को और अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था अर्थात् (१) उच्चाधिकारियों द्वारा बादशाह और राजकुमारों को तथा छोटे अधिकारियों द्वारा उच्चाधिकारियों को भेंट देने की प्रथा, (२) छोटे अधिकारियों को नाममात्र वेतन दिया जाना, तथा (३) जनता की विनयशील एवं उदासीन प्रवृत्ति।

अति प्राचीन प्रथा एवं सामाजिक सदाचार की प्रचलित विचारधारा तथा अपने से बड़ों को प्रसन्न रखने की सांसारिक भावना ने सूबेदारों को, बादशाह की जन्म-तिथि और दरबार में जाने पर, अलभ्य अथवा अमूल्य भेंट देने के लिए, बाध्य कर दिया था। इन्हीं साधनों से उच्च महामात्य को भी सन्तुष्ट करना पड़ता था।

यह भार ऊपर से लेकर नीचे तक था, यद्यपि यह जानबूझकर नहीं किया जाता था और इसके वास्तविक प्रभाव को राज्य के प्रधान पूर्ण रूप से नहीं

समझ पाये थे। विना किसी अभिप्राय के वादशाह सूबेदारों को और उसी प्रकार सूबेदार जमींदारों को निचोड़ते थे। प्रान्तीय दीवान को उच्च दीवान को प्रसन्न करना पड़ता था इसलिए उसे माल-विभाग के अधीनस्थ कलक्टरों को निचोड़ना पड़ता था और ये लोग अधिकारियों की श्रेणी में सबसे छोटे कर्मचारी होने के कारण किसानों को निचोड़ते थे।

न्याय को विफल करने अथवा मनुष्य द्वारा अनुपयुक्त या राज्य के वास्तविक हितों के लिए हानिकारक अनुग्रह प्राप्त करने के लिए रिश्वत देने से यह बिलकुल भिन्न था। मुग़लकाल में भी रिश्वत लेना अनुचित और अपमानजनक समझा जाता था किन्तु यह प्रथा गोपनीयता के आवरण में काफी प्रचलित थी।

शासन द्वारा दिये गये थोड़े-से वेतन को, क्लर्को तथा दूसरे कर्मचारियों को उन लोगों से जिनका उनसे काम पड़ता था, अनधिकार फीस लेकर अवश्य ही पूरा करना पड़ता था। इसे लेखक की फीस अथवा 'हक्कुल-तहरीर' कहते थे, (आज भी यहाँ कचहरियों और दूसरे कार्यालयों में इसे 'तहरीरी' कहते हैं।) हिदायेतुल कवायद, पृ० ७४ पर मुश्रिफ को यह हिदायत दी गयी है कि "लेखक की फीस लो जिसे लोग स्वेच्छा से देते हों, क्योंकि बीस रुपये मासिक पाने वाला एक व्यक्ति जो पचास रुपये पाने के योग्य है, किस प्रकार जीवन व्यतीत कर सकता है?"

६. करोड़ी अथवा जिले की मालगुजारी वसूल करने वाला

मालगुजारी वसूल करने वाला वास्तविक अधिकारी करोड़ी ही था। इसे करोड़ी इसलिए कहा जाता था कि उसकी देखरेख में एक ऐसा भू-भाग था जहाँ से सैद्धान्तिक रूप से एक करोड़ दाम अर्थात् अढाई लाख रुपया मालगुजारी मिलने की आशा की जाती थी। यह प्रबन्ध अकबर ने किया था। [**आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १३**] इस अधिकारी द्वारा वसूल की गयी मालगुजारी का विचार किये विना ही बाद में भी करोड़ी का पद प्रचलित था। हमें "गंज के करोड़ियों" अर्थात् बाजार के कलक्टरों का भी एक वर्ग मिलता है।

"करोड़ी को अपने अधिकार-क्षेत्र के अनुपात के अनुसार फौजी शिक्षा प्राप्त तथा देश की सीमा के अन्तर्गत काम पर लगाये जाने वाले व्यक्तियों के एक दल को आश्रय देना चाहिए और विना असावधानी के ठीक समय पर मालगुजारी वसूल करनी चाहिए। ऐसा न हो कि उसकी प्रजा भाग जाय इसलिए उन स्थानों से, जहाँ के लोग भुगतान करने में असमर्थ हों, (नकद या वस्तुओं के रूप में राज्य-कर) महसूल नहीं वसूल करना चाहिए। ऐसा न हो कि उसे

धन-अपहरण का पता लगाने की दृष्टि से अपने हिसाब की अन्त में जाँच (वसीलात) करानी पड़े, उसे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को नियम-विरुद्ध कोई भी वस्तु वसूल न करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। उसे ईमानदार होना चाहिए।" [हेदायेतुल कवायद, पृ० ६६]

आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० ४६-५० में अकबर के अधीनस्थ एक आदर्श मालगुजारी के कलक्टर के कर्तव्य और आवश्यक गुणों का उल्लेख है, किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के एक करोड़ी की अपेक्षा वह एक बड़ा अधिकारी था।

एक नये करोड़ी को नियुक्त करने वाली सनद इस प्रकार है :—"अमीन द्वारा निर्धारित मालगुजारी समयानुसार वसूल करो और इसे फोतदार को दे दो। फौजदार और अमीन की सलाह से सावधानी के साथ एकत्रित धन राजकीय कोष में जमा कर दो और इसकी रसीद फोतदार को दे दो। अपने हिसाब के सारांश को तथा आय और व्यय के विवरण तथा दूसरे कागजों को, जैसा कि नियम में दिया हुआ है, राजकीय लेखा कार्यालय में भेज दो। कोई आववाव जैसे नहिब (कार्य को शीघ्र पूरा करने की फीस), कलक्टरों की दस्तूरी (तहसीलदारी) आदि न वसूल करो, अन्यथा वह रुपया वापस ले लिया जायगा और उसे पदच्युत कर दिया जायगा।"

७. अमीन और कानूनगो

अमीन का शाब्दिक अर्थ है एक पंच अथवा एक मध्यस्थ, दूसरों के लिए एक ऐसा व्यक्ति जिसके पास कोई धरोहर रखी हो। मालगुजारी माँगने वाले राज्य तथा इसका भुगतान करने वाले किसानों के बीच व्यक्तिगत रूप से एक निष्पक्ष मध्यस्थ होना ही उसके कार्यालय का सार था।

हेदायेतुल कवायद के ६३वें पृष्ठ से लेकर ६५वें पृष्ठ तक अमीन और उसके कार्य के बारे में निम्नलिखित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं :

"अमीन को नियम (जाब्ता) भलीभाँति जानना चाहिए। उसे ईमानदार और एक कुशल व्यक्ति होना चाहिए जो प्रत्येक घटना की अच्छाई और बुराई से पूर्ण परिचित हो। उसे नियमों के अनुसार व्यक्तिगत अनुमान (मुशख्खस) लगाना चाहिए और किसी को भी सरकारी धन नहीं चुराने देना चाहिए।

"राज्य में खेती कराना ही अमीन का कार्य है। काश्त करने के समय का आरम्भ होने के पूर्व ही उसे कानूनगो से विगत दस वर्षों की मालगुजारी के तख़मीनों (प्राक्कलन) तथा गाँवों के रकबों के कागजों को ले लेना चाहिए, करोड़ियों, चौधरियों, कानूनगोओं और जमींदारों के साथ गाँवों में जाना

चाहिए, गाँवों की दशा के बारे में अर्थात् उनके जुताई करने योग्य रकबों (क्षेत्रफल) तथा हलों की ठीक-ठीक संख्या के बारे में पूछताछ करनी चाहिए, वास्तविक क्षेत्रफल से कानूनगोओं के कागजों में दिये हुए क्षेत्रफल की तुलना करनी चाहिए और यदि दोनों मिलते न हों तो कानूनगो को (बढ़ती होने पर) बढ़ती का कारण बतलाने के लिए बुलाना चाहिए और कमी होने पर मुखिया से "कानूनगो ने झूठा आँकड़ा क्यों दिया और मुखिया झूठ क्यों बोला" आदि पूछकर उसकी आलोचना करनी चाहिए।

"तदनन्तर इस बात की जाँच करनी चाहिए कि वर्तमान हल गाँव के किसानों के लिए पर्याप्त हैं या नहीं। यदि वे पर्याप्त नहीं हैं तो मुखियाओं से अगले वर्ष की मालगुजारी की पहली किश्त के साथ ऋण के भुगतान के सम्बन्ध में निबन्धन[२] कराकर और करोड़ियों से मुचलका (क्षतिपूरक प्रतिज्ञापत्र) लेकर कि वे अगले वर्ष की पहली किश्त के साथ ऋण वसूल कर लेंगे, बैल और बीज खरीदने के लिए, गाँवों की जुताई करने योग्य भूमि के क्षेत्रफल के अनुपात से तकावी (कृषि-ऋण) स्वीकृत करनी चाहिए।"

अमीन को नियुक्त करने वाली सनद में इस प्रकार का उल्लेख है :
"अपना कार्य ईमानदारी तथा सच्चाई से करो। काश्त को बनाये रखने के लिए स्वयं प्रयास करो और रहने के योग्य स्थान की वृद्धि करो। फोतदार के पास जमा की हुई मालगुजारी के उस अंश के प्रति तुम्हीं उत्तरदायी होंगे, जिसे वह (कोष में जमा किये बिना ही) अपने पास रखता है। अपने ही तखमीने (प्राक्कलन) के अनुसार मालगुजारी वसूल करने तथा फोतदार के पास इसे जमा करने के लिए करोड़ी को प्रेरित करो। अपनी मुहर लगाकर तथा फोतदार के हस्ताक्षर कराकर उस धन के लिए अस्थायी रसीदें (चिट्ठा) दो, जिसे किसान फोतदार को देते हों और पूरी मालगुजारी के भुगतान (बेबाकी) के समय इस चिट्ठा के अनुसार अपना हिसाब ठीक कर लो। बालादस्ती और तहसीलदारी के रूप में कोई आबवाब न वसूल करो क्योंकि ये सब बादशाह द्वारा निषिद्ध हैं। ऐसे किसी भी कर को वसूल न करने के लिए चौधरियों और कानूनगोओं को चेतावनी दे दो।"

अमीन और करोड़ी को जिन कागजों को दीवान के कार्यालय में दाखिल

---

२ ये निबन्धन (तमस्सुक) जमानत के रूप में चौधरी द्वारा पृष्ठांकित, काजी द्वारा मुहरबन्द, तथा कानूनगो और जमींदार द्वारा प्रमाणित होने चाहिए।

करना पड़ता था, वे जवाबिते आलमगीरी, पृ० ३४अ तथा दस्तूरुल अम्ल, पृ० ८६अ में उल्लिखित हैं तथा जिन कागजों को उन्हें अपने पास रखना पड़ता है, वे जवाबिते आलमगीरी में पृष्ठ ६अ-ब में गिनाये गये हैं।

कानूनगो, जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है, साधारण रूप से व्यवहृत होने वाले नियमों और प्रथाओं (कानूनों) का एक चलता-फिरता कोश तथा कार्यवाहियों से सम्बन्धित सूचनाओं, पूर्व-दृष्टान्तों, अतीत के भू-इतिहासों आदि का भण्डार था। आईने अकबरी (जिल्द २, पृ० ७२) उसे "किसानों का शरण लेने के स्थान" की पदवी देती है। [आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० ५०न, भी देखें]

गाँवों में मालगुजारी अधिकारी वे थे जो भू-सम्पत्ति तथा मालगुजारी की वसूली से सम्बन्धित अपने क्षेत्र के भीतर की सभी परिस्थितियों को दर्ज करते थे, भूमि की कीमत, भू-स्वामित्व, भू-विस्तार एवं भू-स्थानान्तरण का रजिस्टर रखते थे, भूमि की नाप और पैमाइश में सहायता देते थे, मालगुजारी देने वालों की मृत्यु एवं उत्तराधिकार का विवरण देते थे, और आवश्यकता पड़ने पर स्थानीय प्रथाओं और नियमों की व्याख्या करते थे। उन्हें लगान से मुक्त भूमि तथा विभिन्न प्रकार के भत्ते और दस्तूरियाँ दी जाती थीं। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० २६०]

हेदायेतुल कवायद (पृ० १४८-१४९) एक नये कानूनगो को निम्नलिखित आदेश देती है: "तुम्हारे कागजों के विश्वास पर बादशाह का कारोबार चलता है। तुम्हारे ही कार्यालय में विभाजन (तकसीम), तुलना (मुआजना) आदि से सम्बन्धित कागज हैं। सरकारी कागजों की दो प्रतियाँ रखो—एक प्रति अपने घर में और दूसरी अपने कार्यालय में जिसका प्रधान तुम्हारा गुमाश्ता हो जिससे इनमें से कम से कम एक, आग लगने अथवा बाढ़ आने पर, बचायी जा सके।

८. आबवाब अथवा अवैधानिक कर

अब मैं नियमानुसार भूमि-कर अथवा सीमा-कर के अतिरिक्त तरह-तरह के बहानों के आधार पर लिये गये आबवाबों (करों) का विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा। मुसलमान बादशाहों द्वारा बार-बार ये कर अवैध घोषित किये गये थे और उनके साम्राज्य के भीतर ये निषिद्ध थे किन्तु अपने मदों में कुछ परिवर्तनों के साथ वे शीघ्र ही पुनः दिखायी पड़ने लगते थे। "रेवेन्यू रिसोर्सेज ऑव द मुग़ल एम्पायर" नामक अपनी पुस्तक में टॉमस ने फारसी स्रोतों के आधार पर १३७५ कानूनगोअ फिरोजशाह तुगलक तथा १५९० ई० के

लगभग अकवर द्वारा हटाये गये आववावों की सूची दी है। २६ अप्रैल, १६७३ ई० के फरमान में औरंगजेव द्वारा हटाये गये आववाव मीराते अहमदी, जिल्द १, पृष्ठ २८६-२८८ (जिसकी पृष्ठ २६०-२६४ पर व्याख्या दी हुई है), जवाविते आलमगीरी, फ १३५ तथा दस्तूरुल अम्ल, फ १०२ पर गिनाये गये हैं। किन्तु ये तीनों स्रोत आपस में एक-दूसरे से सभी वातों में मिलते-जुलते नहीं हैं। इस समय हटाये गये आववावों की संख्या मीराते अहमदी के अनुसार ४१, जवाविते आलमगीरी के अनुसार ७४ तथा दस्तूरुल अम्ल के अनुसार ७८ है। वंगाल में इस प्रकार के १६ कर केवल किसानों के अतिरिक्त सव पर उन्नीसवीं शताव्दी तक लगाये गये थे जवकि व्रिटिश कानूनी अदालतों ने अन्तिम रूप से उन्हें अवैधानिक घोषित कर उनका अन्त किया। [**रामपिनि का वंगाल टेनेन्सी एक्ट, चतुर्थ संस्करण, पृ० २५५-२५६**] इस प्रकार हम अपने इतिहास के कई शताव्दियों के आववावों के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने की स्थिति में हैं।

आववावों को छह मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(क) आधुनिक भारत के कुछ कस्वों की म्यूनिसिपल चुंगी-कर के सदृश राज्य द्वारा पैदावार की स्थानीय विक्री पर लिया जाने वाला कर।

(ख) अचल सम्पत्ति की विक्री पर लगायी गयी फीस।

(ग) अपने लाभ के लिए अधिकारियों द्वारा ली गयी दस्तूरी तथा प्रायः प्रत्येक विचारणीय अवसर पर राज्य की ओर से लगायी गयी कटौती अथवा फीस।

(घ) किसी व्यापार को करने के लिए लाइसेन्स टैक्स।

(ङ) वलपूर्वक प्राप्त चन्दा।

(च) हिन्दुओं पर लगाये गये विशेष कर।

अकवर द्वारा हटाये गये करों का नाम आईने अकवरी, जिल्द २, पृ० ७२-७३ पर दिया हुआ है जिनमें से कुछ टॉमस द्वारा अपनी रेवेन्यू रिसोर्सेज, पृ० १७-१६ में दिये हुए नामों से भिन्न हैं। इस अध्याय में दी हुई वहुत-सी वातों से सम्वन्धित व्याख्या की दृष्टि से इन दोनों सूचियों में संशोधन आवश्यक है।

सभी प्रकार के करों के साथ ही साथ, जिन्हें प्रत्येक सूवा और प्रत्येक सरकार के जागीरदार स्वेच्छा से लगाने के आदी हो गये थे, जहाँगीर ने 'तमघा' और 'मीरवहरी' नामक करों को भी हटा दिया था। [**इलियट, जिल्द ६, पृ० ४६३**]

वस्तुओं के क्रेताओं एवं विक्रेताओं तथा प्रत्येक व्यापार एवं व्यवसाय के करने वालों पर लगाये गये आववावों अथवा प्रत्यक्ष अवैधानिक करों के अतिरिक्त वलपूर्वक वसूल करने के दूसरे भी स्रोत थे, अर्थात् वादशाहों के बार-बार निषेध करने के विपरीत स्थानीय अधिकारियों का व्यक्तिगत व्यापार[3] जिसने उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं पर अप्रत्यक्ष कर का एक भारी भार लाद दिया था।

सन् १६६५ तक भी, उसी साल के २० नवम्बर के औरंगजेब के फरमान के आधार पर हमें ज्ञात होता है कि गुजरात के मजिस्ट्रेट तथा दूसरे अधिकारी, खोंमचे वाले को वाजार-मूल्य से कम देकर तथा उन व्यापारियों से, जिन पर जवरदस्ती अपना सामान थोपते थे, वलपूर्वक अनुचित ढंग से अधिक मूल्य लेकर, अपनी ओर से जवरदस्ती क्रय करते और वेचते थे। वहुत-से परगनों में जव कभी भी नयी फसल वेची या खरीदी जाती थी तो मुतसद्दी (कलक्टर), सेठ (प्रमुख व्यापारी) तथा देसाई (मुखिया) इसे जनता को नहीं खरीदने देते थे वल्कि स्वयं सव खरीद लेते थे। इसमें से वे अच्छे अनाज का मूल्य लेकर शेष सड़े हुए अथवा नष्टप्राय को व्यापारियों पर जवरदस्ती लाद देते थे।...राज्यपाल (गवर्नर) और धनाढ्य व्यक्ति भोजनालयों में काम आने वाली हर जिस्म की तरकारी और फल की अपने वाग में अथवा राज्य के वाग में खेती करते थे और उन्हें उचित मूल्य से दूने पर शाक वेचने वालों के मत्थे मढ़ देते थे...। अहमदावाद तथा उस सूवे के परगनों में कुछ लोगों ने खलिहान में ही चावल खरीदने और वेचने का एकाधिकार प्राप्त कर लिया था जिसके कारण गुजरात में चावल महँगा होगया था। **[मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०]**

जहाँगीर के राज्य में स्थानीय गवर्नरों और फौजदारों द्वारा सड़क पर व्यापारियों की गठरी को खोलने और उसमें से अपनी इच्छानुसार निश्चित किये गये मूल्य पर वांछित वस्तुओं को निकाल लेने की वुरी प्रथा ज्ञात थी, और उसने अपने वारह नियमों में से एक के द्वारा इसे निश्चयपूर्वक वन्द कर दिया था। **[इलियट, जिल्द ६, पृ० ४९६]** किन्तु जैसा कि भारत में आये हुए यूरोप के यात्रियों के वर्णन से विदित है, यह प्रथा प्रचलित रही। अठारहवीं शताव्दी के आरम्भ में औरंगजेव ने इस प्रकार के अनुचित व्यक्तिगत व्यापार (सौदायेखास) करने पर वंगाल के गवर्नर अपने पौत्र अजीमुश्शान के पास निन्दा

---

[3] फारसी में इसे 'तरह' कहते हैं **(घियासुल-लुगत)**

का एक कठोर पत्र लिखा था। [रियाज-उस-सलातीन, अंग्रेजी अनुवाद, पृ० २४६ तथा आई० ओ० एल० पाण्डुलिपि ३०२१, ५३अ]

मध्यकालीन भारत में वस्तुतः कम वेतन पाने वाले अधिकारियों के भ्रष्ट लोभ को जन-कर-पद्धति की ओर से अनियन्त्रित अनुग्रह प्राप्त था जो बड़ा ही अशिष्ट था और जो न तो स्पष्ट रूप से व्यक्त ही था और न जनता को इससे अवगत ही कराया गया था। यह प्रायः एक शासनकाल में दूसरे से भिन्न था। जनसाधारण की कायरता, केन्द्रीय शासन की निर्बलता और उसमें पर्याप्त संख्या में विश्वासपात्र अभिकर्ताओं के अभाव ने अधिकारिक लूट (official extortion) के अधीन जनता को असहाय कर दिया था। बादशाहों द्वारा निषिद्ध कर दिये जाने पर भी एक ही वस्तु पर दो बार अथवा तीन बार कर लिया जाता था।

२० नवम्बर, १६६५ ई० के औरंगजेब के एक फरमान में गुजरात की जनता से बलपूर्वक वसूली का प्रमाण मिलता है। यही प्रथा साम्राज्य के दूसरे सूबों में भी रही होगी। बलपूर्वक वसूली के इन ढंगों का विवरण नीचे दिया जाता है।

९. औरंगजेब द्वारा हटाये गये आबवाब

(अ) **पैदावार की बिक्री पर लगायी गयी चुंगी—**

हिन्दू व्यापारियों से विक्रय-मूल्य पर ५ प्रतिशत तथा मुसलमान व्यापारियों से ढाई प्रतिशत वैधानिक कर लिया जाता था, जो केवल कुछ ही वस्तुओं पर लगाया गया था। ये कर उस दशा में नहीं लगाये जाते थे जबकि वस्तुओं का मूल्य निसब अथवा कुरान द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल्य [५२॥) रुपये] से कम होता था। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २५८]

(१) मछुओं द्वारा विक्रयार्थ पकड़ी तथा लायी गयी मछलियाँ।

(२) अपने खेतों से किसानों द्वारा विक्रयार्थ लायी हुई रसोईघर की तरकारियाँ।

(३) ईंधन के लिए गोबर के उपले।

(४) दूध और दही।

(५) जंगलों से विक्रयार्थ लायी हुई ढाक (बंगाली पलाश) तथा पाला वृक्ष (झरबेरी अथवा एक विशेष प्रकार की झाड़ी) की पत्तियाँ और बबूल आदि की छाल।

(६) जंगलों से लायी हुई घास, गोखरू तथा ईंधन की लकड़ी।

(७) तेल। (हमें ज्ञात है कि गुजरात में सरसपुर के अधिकारी तेल के प्रत्येक कुप्पे पर ३० रुपये वार्षिक वसूल करते थे।) **[मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६१]**

(८) गाँवों और कस्बों में विक्रयार्थ बने हुए मिट्टी के बरतन तथा रकाबियाँ।

(९) तम्बाकू। (एक सिपाही द्वारा अपनी पत्नी की हत्या कर देने के फलस्वरूप १६६६ ई० में यह मादक-कर हटा दिया गया था, जिस समय तम्बाकू के निमित्त कर वसूल करने वालों ने उसकी गाड़ी की तलाशी ली थी।) **[स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० १७५ तथा औरंगजेब का इतिहास, जिल्द ३, अध्याय २८, अनुच्छेद १]** १६७३ ई० में जारी किया गया औरंगजेब का यह फरमान अपने अधिकारियों को निश्चित रूप से निर्देश देता है कि "लोगों को उनकी डोलियों, बैलगाड़ियों और दूसरी वस्तुओं की तलाशी लेकर कष्ट न दो।" मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७ इसे और स्पष्ट कर देती है कि "तम्बाकू तथा दूसरी वस्तुओं पर कर लेने के लिए औरतों और बच्चों की डोलियों, बैलगाड़ियों तथा ऊँटगाड़ियों की तलाशी ली जाती थी और थैले, सन्दूकें और गठरियाँ खोल ली जाती थीं।"

(१०) क्रय करने के राज्य के एकाधिकार को समाप्त करने के लिए आदेश दिया गया था। "पहले अधिकारी सुगन्धि के राजकीय कारखानों के निमित्त सभी प्राप्य गुलाब के फूलों को खरीद लिया करते थे। जनता के लिए उनकी बिक्री निषिद्ध थी, किन्तु कुतुबुद्दीनखाँ के आग्रह पर एक फरमान जारी कर मालियों को अपने फूलों को इच्छानुसार कहीं भी बेचने की अनुमति दी गयी थी। **[मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६२]**

(ब) जायदाद के बेचने पर ली गयी फीस—

(११) भूमि बेचने अथवा बन्धक रखने पर।

(१२) मकान (हवेली) बेचने पर विक्रेता से कानूनगो और प्यादे ढाई प्रतिशत फीस लिया करते थे। **[मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०]**

(१३) ढोलका नामक ग्राम में यदि कोई निर्धन व्यक्ति अपना मकान गिराना और उसका सामान बेचना चाहता तो कोतवाल प्रति रुपया हजार पर बेची जाने वाली ईंटों पर तीन टंका लेता है। **[मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६२]**

(१४) उपर्युक्त क्रम-संख्या १२ के अतिरिक्त, जब कभी एक मकान बेचा जाता था तो सरकार विक्रेता से अनुमानित मूल्य पर फीस (मुकीमी) वसूल करती थी। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७; जवाबिते आलमगीरी और दस्तूरुल अम्ल]

(१५) गुलामों के वेचने पर।

(स) राज्य की फीस अथवा दलाली और अधिकारियों की दस्तूरी—

जैसा कि शिहाबुद्दीन तालिश ने १६६६ ई० में शिकायत की थी, मुसलमानों द्वारा भारत और उसके बन्दरगाहों पर प्रभुत्व स्थापित करने के समय से लेकर शाहजहाँ के शासनकाल के अन्त तक, गुलाव बेचने वालों से लेकर मिट्टी बेचने वालों तक से, बारीक लिनेन बुनने वालों से लेकर मोटा कपड़ा बुनने वालों तक से अर्थात् प्रत्येक व्यापारी से 'हासिल' (चुंगी) वसूल करने की प्रथा और नियम था।

(१६) राहदारी अथवा सड़क की गश्त का वेतन। (१६५८ ई० में औरंगजेब ने इसे हटा दिया था। इस कर से सम्बन्धित दोषों एवं कठिनाइयों का मेरे द्वारा लिखे गये हिस्ट्री ऑव औरंगज़ेब, जिल्द ३, अध्याय २८, अनुच्छेद १; तथा स्टडीज़ इन औरंगज़ेब्स रेन, अध्याय ११ में विशद वर्णन किया गया है। इस कर के हटाने के समय इससे प्रति वर्ष पच्चीस लाख रुपये केवल 'राज्य-भूमि' से ही मिला करता था।)

(१७) वाजार में दुकानें वनाने के लिए कर (ground rent) (तहबाजारी)। सब्जी बेचने वाले तथा दूसरी वस्तुओं के व्यापारी वाजार में पल्थी मारकर बैठते थे और उन्हें भी उनके द्वारा प्रयुक्त बाजार-भूमि के तह (bottom) के स्थानों के लिए किराया देना पड़ता था। यह एक प्राचीन कर था। फिरोजशाह ने १३७५ ई० में इसे निषिद्ध घोषित किया था।

(१८, १९) ऋणों के पुनर्भुगतान के डिग्री-प्राप्त मुकदमों तथा चोरी गयी हुई सम्पत्ति के मिलने पर उसे उसके स्वामी को लौटाने में मजिस्ट्रेट ऋण अथवा सम्पत्ति के मूल्य का एक-चौथाई भाग राज्य के लिए ले लिया करते थे। औरंगजेब ने इस फीस को और मुकदमे वालों द्वारा दिये गये जुरमानों तथा शुकरानों (शराये जुरमाना व शुकराना) के भुगतान को बन्द कर दिया था जो प्राचीन तथा मुस्लिम न्याय-प्रथा द्वारा स्वीकृत थे।

(२०) प्रत्येक सौ रुपये पर सिक्कों के परखने के लिए फीस, जिसे 'शशदामी' (एक रुपये का साठवाँ भाग) कहते थे।

(२१) जूसी तैयार किये जाने वाले प्रत्येक लोहे के कड़ाहे पर कर (अर्थात् जिन कड़ाहों में जूसी तैयार की जाती हो, उन पर कर।) मीरात का कथन है कि चीनी तैयार करने में नियमानुकूल चुंगी लगायी जाती है।

(२२) सूखी हुई (तथा पैदल पार की जाने वाली) नदियों पर घाट का कर।

(२३) घाटों को पार करने पर व्यापारियों तथा यात्रियों से शासन की ओर से लिया जाने वाला कर जिसे नाविकों की मजदूरी (मल्लाही) कहते थे। नाविकों की वास्तविक मजदूरी शासन के अनुमान से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(२४) पत्थर तथा लोहे के बाटों पर अधिकृत रूप से ठप्पा लगाते समय लगाया गया कर।

(२५) शस्त्र-गृहों तथा उनमें रहने वालों की गणना के निमित्त फीस। यह कर हिन्दुओं से लिया जाता था किन्तु मुसलमान इससे वरी थे। हमें ज्ञात है कि शहरों के लिए इस प्रकार की सूची तैयार करना कोतवाल का कर्तव्य था किन्तु इसके लिए लोगों पर कर लगाना स्पष्ट रूप से अवैधानिक था। (मूल पाठ 'दस्तार शुमारी' अथवा 'प्रति पगड़ी पर कर' प्रतीत होता है जिससे अकवर द्वारा हटाये गये प्रति पगड़ी पर कर का आभास होता है।) [आईने अकवरी, जिल्द २, पृ० ७३]

(२६) लगान-मुक्त-भूमि (मददेमाश) प्राप्त लोगों से अनुदान की परिपुष्टि (मुकर्ररी) के अवसर पर प्रथानुसार ली जाने वाली दस्तूरी।

(२७) चक्रबन्दी के अवसर पर लोगों से उपहारस्वरूप वस्तुएँ लेना।

(२८) वंजारों (घूमकर अनाज वेचने वालों) तथा दूसरे लोगों से बैलों को चराने के निमित्त लिया जाने वाला कर। मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६० में इसका इस प्रकार उल्लेख है—जब कभी भी गाड़ी के बैल तथा लद्दू बैल शहर में लाये जाते थे और उन्हें खरीदी हुई घास एवं कर्वी खिलायी जाती थी, तो कलक्टर हर बार गौ-चराई के नाम पर एक टंका ले लिया करता था। इसी पुस्तक के पृष्ठ २६३ पर दूसरी प्रथा का उल्लेख है—पाटन शहर में अधिकारी प्रति वर्ष प्रति भेड़ चार मुरादी टंका, प्रति गाय आठ आना तथा प्रति भैंस एक रुपया जवरदस्ती वसूल करते थे जबकि वे जानवर स्वच्छन्द (साईमा) होकर नहीं चरते

थे और उनका मूल्य भी 'निसाब' (नियमानुसार कर लगाने के हेतु निम्नतम मूल्य) से कम होता था।

(२९) गाड़ियों, ऊँटों तथा सन्देशवाहकों को किराये पर देने का कर।

(३०) जबकि घवैंया वर्ग के लोग जो अपनी गाड़ियों को भाड़े पर देकर अपना जीवन व्यतीत करते थे, बुरहानपुर अथवा किसी दूसरे स्थान पर क्रय-कर देकर बैल खरीदते थे और उन्हें अहमदाबाद लाते थे, तो यहाँ पर भी उन्हें फिर वही कर देना पड़ता था और यदि वे स्वतः इसे अदा नहीं करते थे (कर न देने के निमित्त टालमटोल करने का यत्न करने के कारण) तो दोषी ठहराये जाते थे और उन पर जुरमाना किया जाता था।

(३१) चुंगियों अथवा दूसरे स्थानों पर तोलने वाली तराजुओं (डण्डी) पर लगायी गयी दस्तूरी। मीराते अहमदी में इसे तराजूकशी के लिए दारोगा की फीस और कुछ स्थानों पर 'धारन' तथा दण्डीधारी कहा गया है। किन्तु जवाविते आलमगीरी और दस्तूरुल अम्ल में इसे "दारोगाना व रसूमे कोतवाली" कहते हैं।

(३२) विशेष अवसरों पर ली जाने वाली दस्तूरी; उदाहरणार्थ प्रति वर्ष (सालाना), प्रति फसल (फसलाना), मासिक (माहाना), प्रति शुक्रवार (जुमागी), प्रतिदिन (रोजाना), शरद (जमस्तानी), दोनों ईदों पर (ईदी)। (पाठ स्पष्ट नहीं है; ऐसा ज्ञात होता है कि मुसलमान आरम्भ से ही इनसे मुक्त थे।)

(३३) किसानों को दी जाने वाली रसीद तथा सरकारी हिसावों में प्रयुक्त कागज का मूल्य।

(३४) अनाज के व्यापारियों तथा दूसरे व्यापारियों से, कुछ स्थानों पर वंजारों से नव-नियुक्त अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली भेंट (पेशकश)। मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६१ में इसका इस प्रकार उल्लेख है— "फौजदार और करोड़ी सावरमती तथा वत्रक नदियों के तटवर्ती परगनों के निवासियों से बलपूर्वक १० रुपये से लेकर १५ रुपये तक वसूल करते थे जिसे वे 'कछारी' कहते थे।" और फिर "यदि अहमदाबाद का कोई निवासी अपने पूर्वजों के मकान में स्थित किसी वृक्ष को काटना चाहता था, जो उसके मकान को क्षति पहुँचा रहा था, तो स्थानीय अधिकारी उसको या उसकी एक टहनी को काटने की अनुमति नहीं देते थे, जब

तक कि वे उन्हें कुछ दे न देते थे। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०]

(३५) छुट्टी पर जाने वाले सरकारी कर्मचारियों से ली जाने वाली फीस (रुखसताना)। यह फीस शाही शिविर के वे सन्देशवाहक ले लेते थे जो छुट्टी पर जाने वाले कर्मचारियों को छुट्टी की मंजूरी की सूचना पहुँचाते थे।

(३६) किलों के फाटकों के संतरियों द्वारा वहाँ से गुजरने वाले लोगों से ली गयी फीस। मीराते अहमदी, पृ० २६२ में इसका इस प्रकार वर्णन है—"अहमदाबाद और इसके उप-नगरों के फाटकों के रक्षक गाड़ियों, लद्दू बैलों तथा अपने सिरों पर बोझा ले जाने वाले लोगों को अन्दर जाने और बाहर निकलने से रोकते थे जब तक कि वे उन्हें कुछ देकर सन्तुष्ट न कर देते थे।"

(३७) "जब कभी भी एक निर्धन व्यक्ति अथवा किसान किसी पशु को अहमदाबाद अथवा इसके उप-नगरों को विक्रयार्थ ले जाता था, तो उनसे दो बार कर लिया जाता था। एक तो आयात-कर (आमदनी) और दूसरा विक्रय-मूल्य पर सरकारी कमीशन। यदि वे इसे बेच न सकने के कारण इसके साथ वापस आना चाहते थे तो भी अधिकारी उससे निर्यात-कर (रफ्तानी) वसूल करते थे। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६२]

(३८) जब कभी भी अनाज अथवा दूसरी वस्तुओं से भरी गाड़ी शहर से बाहर जाती थी तो अधिकारी पुलिस के कार्यालयों (चबूतरों) पर छठी के नाम से दो रुपया प्रति गाड़ी की दर से ले लेते थे। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६३]

(३९) पाटन में केले अथवा गन्ने की प्रति गाड़ी पर चार अथवा पाँच रुपये के साथ-साथ आम, केले अथवा गन्ने का चार प्रतिशत भी वसूल किया जाता था। मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६३ में 'चहार सद' लिखा है जिसे मैंने 'सद चहार' कर लिया है।

(४०) कई स्थानों पर घास अथवा बाजरे के डण्ठल के प्रत्येक वैगन से एक गट्ठर और ईंधन होने पर पाँच सेर लिया जाता था। यदि आदमी अपने सिरों पर उनके बोझ ले जाते थे तो प्रत्येक से चार 'बादाम' लिये जाते थे। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०] कर्बी······बाजरे का डण्ठल आदि जो मवेशियों के खिलाने के काम आता था। उत्तरी

भारत में कौड़ियों की तरह गुजरात में बादाम एक प्रकार के सिक्के के रूप में प्रयुक्त होता था (१०० बादाम = १ आना)। [के० एम० झावेरी]

(४१) चुंगी-गोश्त अथवा चौकी-गोश्त। पुलिस द्वारा लिया गया गोश्त का एक भाग। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७ में कोतवाल के चबूतरा का उल्लेख है।]

(४२) गवर्नरों को व्यक्तिगत गृहों, मसजिदों अथवा दूकानों में उनके मालिकों की अनुमति के बिना नहीं रहना चाहिए। (यह अनधिकृत निवास अकबर और जहाँगीर द्वारा भी निषिद्ध था।) [इलियट, जिल्द ६, पृ० ५०३]

(४३,४४) नीच जाति के एक हिन्दू द्वारा एक हिन्दू विधवा से विवाह (धरीचा) करने और उससे एक पुत्र पैदा करने की फीस। (मेरी यह धारणा है कि साधारणतया बच्चों के जन्म पर कोई कर नहीं था, यद्यपि बिहार के कुछ निर्दयी जमींदार १९२४ ई० तक इसे वसूल करते थे।)

(४५) बादशाह द्वारा मँगाये गये फलों और दूसरी वस्तुओं की मार्ग में हुई क्षति की पूर्ति सूबों से की जाती थी। इसके लिए जनता पर कर लगाया जाता था। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७]

(द) **व्यापारों एवं व्यवसायों पर लाइसेन्स टैक्स**—

प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक वर्ग के कारीगर पर अधिकारियों द्वारा 'मुहतरफा' (**विलसन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ३५०**) नाम का 'व्यक्ति कर' (poll-tax) लगाया गया था। औरंगजेब ने इसकी बार-बार निन्दा की थी। [**मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०**]

(४६) गायों और बकरियों आदि का वध करते समय वध करने की फीस। मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६१ में इसका उल्लेख इस प्रकार है—
"सर्वप्रथम अधिकारी बैलों, भैंसों आदि के क्रय करने पर कर वसूल करते थे। उनकी हत्या के समय वे प्रति गाय अथवा भैंस पर डेढ़ रुपया और लेते थे। यही कारण था कि गुजरात प्रान्त में माँस बहुत महँगा था।" औरंगजेब ने १६६५ ई० में बड़ी कड़ाई के साथ आदेश दिया था कि "जब कभी भी 'मौलूद' अथवा दावत आदि के लिए गाय या भैंस बेची जाती है, तो पूर्वादेश के अनुसार ५ प्रतिशत हिन्दू दुकानदारों से और ढाई प्रतिशत मुसलमान दुकानदारों से कोतवाल के चबूतरे पर क्रय-कर वसूल कर लो, किन्तु उन्हें कोई दूसरा कष्ट न दो।" [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६२]

(४७) चोवदारों (प्यादों) से उस 'डण्डे' के लिए (जिसे वे वैज-स्वरूप अथवा धन्धा-व्यवसाय के लिए हाथ में रखते थे) कर वसूल किया जाता था।

(४८,४६) रुई धुनने वालों तथा गन्ना पेरने वालों से किसी नये स्थान पर व्यापार आरम्भ करने के लिए अधिकारी उन्हें अपना व्यापार आरम्भ करने की अनुमति प्रदान करने के पूर्व डेढ़ रुपया वसूल कर लिया करते थे। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०]

(५०) कोई कला सीखने की फीस। "यदि एक व्यक्ति वुनने अथवा कसीदा काढ़ने की कला की किसी भी शाखा को सीखना चाहता था तो उसे "कला सीखने की फीस" के नाम पर शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् स्थानीय अधिकारियों को कुछ देना पड़ता था।" [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६०]

(५१) (छत) छाने वालों और चौकीदारों से।

(५२) कपड़ा छापने के समय लगाया गया कर। (मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७ पर उल्लेख है कि यह कर कलाल अथवा शराव वनाने वालों के हाथों पर अथवा व्यक्तियों पर लगाया गया था।)

(५३) ऊँटों को किराये पर लेने के लिए मुखिया की फीस (मुकद्दमी)।

(५४) सब्जी-मंडी आदि में मुखिया का कमीशन (दस्तुरे मेहतराय)। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ३३८]

(५५) वनावटी चेहरा लगाकर तमाशा करने वालों से अथवा वेप वदलकर शादी-विवाहोत्सवों पर लोगों का मनोरंजन करने वाले व्यक्तियों से उनके द्वारा प्राप्त प्रत्येक वस्तु ले लो। (औरंगजेव ने अपने अन्तिम वर्षों में काश्मीर में इस प्रकार के मनोरंजन को वन्द कर दिया था।)

(५६) दलालों से राज्य के लिए सरकारी दलालों की दलाली जव्त कर लो। (पाठ अस्पष्ट है, अतः अनुवाद ठीक नहीं है।)

(५७) वन्दूक चलाने के पलीते पर टैक्स अथवा तोप की मरम्मत करने वाले व्यक्तियों पर टैक्स (दस्तूरुल अम्ल एकमात्र स्रोत है)।

(य) **बलपूर्वक प्राप्त चन्दा, उपहार और सेवा—**

(५८) वेगार। "गुजरात प्रान्त के गाँवों और शहरों में (अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली) वेगार के कारण किसानों को वहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी।" [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६० पर उल्लिखित १६६५ ई० का फरमान]।

(५९) ईद के अवसर पर चिरागों के लिए अनिवार्य चन्दा तथा बेगार।

(६०) शब्बेरात, दीवाली तथा अशुरा (शव्वाल महीने के प्रथम दस दिन) आदि की रात को चिराग जलाने के लिए बलपूर्वक वसूल किया गया चन्दा।

(६१) भेंट-बकरा। किसी स्थान के निरीक्षण के अवसर पर गवर्नर अथवा जमींदार को लोगों द्वारा दी गयी बकरे आदि की भेंट जिसकी कीमत जमींदारों के एजेण्टों अथवा स्थानीय अधिकारियों द्वारा किसानों से वसूल किये गये अनिवार्य चन्दे के कारण अधिक हो जाती है। यह आबवाब बंगाल में उन्नीसवीं शताब्दी तक कायम था। [दस्तूरुल अम्ल, जवाबिते आलमगीरी, तथा मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७ में "भेंट-बंजारा" ऐसा पाठ है।]

१६८२ ई० में औरंगजेब को निम्नलिखित आबवाबों को बन्द करने के लिए दूसरा फरमान [मीराते अहमदी, पृ० ३०४] जारी करना पड़ा था। इन आबवाबों की नीचे व्याख्या की गयी है और ये इस प्रकार हैं: मल्वा, भेंट, बालादस्ती, तहसीलदारी, सादिर तथा वारिद।

मल्वा—जन-कर द्वारा ग्राम खर्च चलता था। उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों में इसके निम्नलिखित प्रधान मद थे:—पब्लिक ड्यूटी पर घर से अनुपस्थित होने पर जाति के लोगों अथवा निरीक्षण पर आये हुए दूसरे गाँवों के लोगों को भोजन कराना, धार्मिक फकीरों को खिलाना, पुलिस तथा माल विभाग के निम्नकोटि के अधिकारियों को किया गया भुगतान, जन-सेवा के निमित्त मवेशी तथा गाड़ी प्रदान करने में हुई हानि के लिए व्यक्ति विशेष का वेतन, एक गाँव की सीमा के भीतर लूटी हुई सम्पत्ति का पता लगने पर किया गया जुरमाना, निवासियों के मनोविनोदार्थ नर्तकों, गायकों, बाजीगरों आदि का उपहार, धार्मिक पूजा तथा समयानुसार उत्सवों सम्बन्धी व्यय, ग्राम-कार्यों के निमित्त संगठित पंचायतों का व्यय, मुखिया अथवा किसी प्रतिष्ठित सदस्य के दाह-संस्कार सम्बन्धी व्यय आदि। इनका योग प्रायः भूमि-कर का १२ प्रतिशत पहुँच जाता था। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ३२३]

बालादस्ती—साधारण रूप से अनधिकृत अथवा क्रूरतापूर्ण वसूली। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ५१]

तहसीलदारी—लगान वसूल करने वालों को भत्ता देने के लिए मुग़ल-शासन में लगाया गया टैक्स। [विल्सन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ५००; देखिए, आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० ७२]

सादिर व वारिद—सड़कों के किनारे वाले गाँवों तथा बटोहियों से राजकीय सन्देशवाहकों द्वारा बलपूर्वक वसूल की गयी धनराशि। [देखिए, मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २८७]

(ह) हिन्दुओं पर लगाये गये कर—

(६२) गंगा तथा दूसरी पवित्र नदियों के जल में स्नान करने पर टैक्स। मुग़ल-शासन इलाहाबाद में प्रत्येक यात्री से सवा छह रुपया लिया करता था। [स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ८२]

(६३) मृत हिन्दुओं की अस्थियों को गंगा में फेंकने पर टैक्स। (जज़िया अथवा माल-टैक्स (poll-tax) बाद में १६७६ ई० में लगाया गया था।)

मिस्र में बहुत-से छोटे-छोटे टैक्स तथा सभी प्रकार के एकाधिकार, जिन्हें 'मुकुस' कहते थे, धार्मिक नियमों के अनुसार नियम-विरुद्ध आय के साधन थे। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० १५; जिल्द ३, पृ० १७६]

अध्याय ६

विधि एवं न्याय

१. न्याय-व्यवस्था एवं उसकी शाखाएँ

मुग़ल-साम्राज्य की न्याय-व्यवस्था का ढाँचा बड़ा ही विचित्र था। उसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें अपने मस्तिष्क से निम्नलिखित सभी आधुनिक विचारों को दूर कर देना चाहिए :

(१) केन्द्र द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित राज्य-व्यवहार का एक क्रमिक विभाग,

(२) सभी लोगों के लिए एक विधि-संहिता (Law code),

(३) राज्य में सभी न्याय-सम्बन्धी एजेन्सियों के ऊपर एक उच्च न्यायालय,

(४) एक प्रधान न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों का एक दल जिसके द्वारा की गयी विधि-व्याख्या महाधिवक्ता (Advocate General) की व्याख्या को दवा देती है, और अन्त में,

(५) न्याय-स्रोत का द्योतक कोई सम्पूर्ण सत्ताधारी व्यक्ति।

मुसलिम-राज्य में इनमें से एक भी प्रचलित न था।

यह सत्य है कि पैगम्बर और पूर्वकालीन खलीफा प्रायः व्यक्तिगत रूप से झगड़ों का निवटारा किया करते थे, किन्तु इस्लामी साम्राज्य के विकास तथा इसके प्रधान के स्वरूप में परिवर्तन के साथ ही इस पुरातन व्यवस्था का शीघ्र ही अन्त हो गया था। पैगम्बर और 'पाक खलीफा' (उसके प्रथम चार उत्तराधिकारी) विधि-निर्माता (धर्माधिकारी) एवं अधिशासी प्रशासक (शासक) दोनों ही थे। वाद में यह अधिकार दूसरों को दे दिया गया और इसके प्रयोग का भी बँटवारा हो गया। भारत में मुग़ल वादशाहों के अन्तर्गत एक ही समय में कार्य करने वाली तथा एक-दूसरे से स्वतन्त्र तीन पृथक्-पृथक् न्याय एजेन्सियाँ थीं। इनके नाम धार्मिक विधि के न्यायालय, सामान्य विधि के न्यायालय तथा राजनीतिक अभियोगों के न्यायालय थे और क्रमशः प्रथम के काजी; दूसरे के गवर्नर, विभिन्न श्रेणियों के अधीनस्थ स्थानीय अधिकारी, वन-जाति के प्रधान

एवं जाति-पंचायत; तीसरे के बादशाह अथवा उसके एजेण्ट अधिकारी होते थे।

(क) **धार्मिक विधि के न्यायालय**—इन न्यायालयों में काजी शरियत के अनुसार निर्णय देता था। इस्लामी राज्य की शैशवावस्था के इस सिद्धान्त का कि काजी को ही सभी माल एवं अपराध सम्बन्धी अभियोगों को तय करता है, प्रचलन बहुत पहले ही बन्द हो गया था। "केवल ऐसे ही प्रश्न जिन्हें लोग अत्यन्त धार्मिक समझते थे, अर्थात् कुल विधि (family law) से अथवा आनुवंशिक (inheritance) बातों से सम्बन्धित झगड़े धार्मिक संस्था की पूंजी से सम्बन्धित वैधानिक प्रश्न आदि शरियत के अनुसार निर्णय के निमित्त काजी के समक्ष प्रस्तुत किये जाते थे। इनके अतिरिक्त दूसरे प्रश्न अन्य अधिकारियों के क्षेत्र में आते थे। विधि के सम्बन्ध में अपनी निजी व्याख्या देने के लिए काजी योग्य नहीं समझा जाता था। मुफ्ती द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किये गये पहले के अधिकारी विद्वानों के निर्णयों से वह आबद्ध था।" [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ६०६**] प्रारम्भ में मुफ्ती को 'मुज्तहिद' और इससे पहले उसे 'वकीले-शरों' अथवा कुरान की विधियों का सबसे बड़ा ज्ञाता कहते थे। हम उसे सामान्यतया महाधिवक्ता कह सकते हैं। काजी को केवल अभियोगों का ही निर्णय नहीं करना पड़ता था, अपितु उसे पाक संस्थाओं की सम्पत्ति (वक्फ), अनाथ बच्चों, अल्पमति वालों तथा दूसरे व्यक्तियों की भू-सम्पत्तियों का भी प्रबन्ध करना पड़ता था। उसे ऐसी स्त्रियों के वैवाहिक सम्बन्ध भी कराने पड़ते थे जिनका कोई पुरुष सम्बन्धी नहीं होता था। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ६०६**] काजी के न्यायालय में जिम्मी अथवा दूसरे गैर-मुसलमानों के प्रमाण कानूनी नहीं समझे जाते थे। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, सप्लीमेण्ट, पृ० २०७**]

(ख) **साधारण अभियोगों के न्यायाधीश**—ये या तो बादशाह के एजेण्ट जैसे स्थानीय गवर्नर तथा फौजदार और कोतवाल तक के अधीनस्थ अधिकारी थे अथवा हिन्दुओं और ग्रामीणों के लिए ब्राह्मण पण्डित और जाति-पंचायतों के प्रधान होते थे। इनमें से कोई भी न तो काजी के अधीन ही था और न उसके न्यायालय से सम्बन्ध ही रखता था। वे बिना लिखी हुई प्रथाओं (साधारण विधियों) अथवा जातीय परम्पराओं की विधि-संहिता (law code) के अनुसार निर्णय करते थे। शरा अथवा कुरान की निश्चित विधियों से उनका कोई सम्बन्ध न था किन्तु उन्हें अपने कुल अथवा जाति के रूढ़ नियमों का ज्ञान रखना पड़ता था। तुर्की में रूढ़-विधि को 'अदा' और जनपद विधि को

कानून कहते थे। मध्यकालीन इस्लाम में प्रचलित रूढ़-विधि को उर्फ कहते थे किन्तु इसका क्षेत्र राजनीतिक अभियोगों तक ही सीमित हो गया था। इन न्यायालयों में जिम्मी साक्षी दे सकता था।

(ग) उर्फ—"राज्य की आवश्यकता अथवा पक्षपात की दृष्टि से काजी द्वारा नहीं, अपितु बादशाह अथवा उसके एजेण्ट यथा प्रान्तीय गवर्नर, द्वारा विभिन्न अभियोगों के सम्बन्ध में किये गये निर्णयों को बहुधा उर्फ कहते थे। विशेष रूप से राज्य तथा विधि एवं व्यवस्था के विरुद्ध किये गये अपराध, जैसे विद्रोह और राजद्रोहात्मक आचरण, जाली सिक्के ढालना और चलाना, साम्प्रदायिक झगड़े, चोरी, राहजनी और कत्ल आदि इसके अन्तर्गत थे।" [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० १०३१] इसकी विस्तृत व्याख्या 'तिमूर इन्स्टीट्यूट' में कर दी गयी है, जो इस अध्याय में आगे उद्धृत है।

२. मुग़ल बादशाहों की न्याय-प्रणाली

पैगम्बर और खलीफाओं के अनुरूप ही विभिन्न सूबों में गवर्नर एवं शासक न्यायाधीशों की हैसियत से झगड़ों का निबटारा किया करते थे। मुसलिम देशों में बहुधा स्थानीय अधिकारी ही न्याय करते थे। इसे कभी-कभी 'नजरफिल मजालिम' अथवा, जैसा कि औरंगजेब अपने यहाँ बुधवार को होने वाले न्याय-सत्र को कहा करता था, 'दीवाने मजालिम'[1] भी कहते थे।

प्राचीन राजनीतिक आदर्शों के अनुसार जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वीकार करते थे, बादशाह ही न्याय का स्रोत था और खुले दरबार में स्वयं मुकदमों का फैसला करना उसका कर्तव्य था। मुग़ल बादशाह इसी आदर्श का पालन करते थे और उनके द्वारा अपनायी गयी न्याय-प्रणाली का दरबार में रहने वाले इतिहासज्ञों तथा समकालीन यूरोपीय यात्रियों का विवरण हमारे पास विद्यमान है।

शाहजहाँ और औरंगजेब दोनों बुधवार को आम दरबार नहीं करते थे; उस दिन को वे केवल न्याय के लिए ही सुरक्षित रखते थे। "बादशाह झरोखे (दर्शन की खिड़की) से सीधा दीवाने-खास में लगभग सवेरे आठ बजे ही आ जाता था और न्याय-सिंहासन पर मध्याह्न तक बैठता था। यह कमरा राज्य

---

[1] एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ६०६-६०७। जे० आर० ए० एस० (१९११), पृ० ६३५ पर मवार्दी कृत अहकाम सुल्तानिया में मजालिम के अधिकार-क्षेत्र के विषय में एमेद्रोज (Amedroz) का पत्र देखिए।

के न्यायाधीशों, धार्मिक विधि के न्यायाधीशों (काजियों), साधारण विधि के न्यायाधीशों (आदिलों), मुफ्तियों, धर्मवेत्ताओं (उलेमा), पूर्वदृष्टान्तों (फतवों) के मर्मज्ञों, न्यायालय के अध्यक्षों (दारोगा-ए-अदालत) तथा कोतवाल अथवा नगर पुलिस के अधिकारियों से भरा हुआ होता था। दरबारियों में से और कोई दूसरा वहाँ नहीं जाने पाता था जब तक कि उसकी उपस्थिति विशेष रूप से आवश्यक न हो। न्यायाधिकारी बारी-बारी से वादियों को पेश करते थे और उनकी शिकायतों के कारणों पर प्रकाश डालते थे। बादशाह बड़ी ही नम्रता के साथ वादी से पूछताछ कर तथ्य का पता लगाता था, उलेमा से कानून पूछता था और उसी के अनुसार फैसला देता था। देश के अति दूरस्थ प्रान्तों से भी बहुत-से लोग सर्वोच्च सत्ता (highest power) से न्याय प्राप्त करने के निमित्त यहाँ आते थे। उनकी शिकायतों का स्थानीय जाँच के अतिरिक्त और किसी दूसरे ढंग से पता नहीं लगाया जा सकता था अतएव बादशाह सत्य की खोज करने के निमित्त उन स्थानों के गवर्नरों को प्रेरित करते हुए उनको वहीं पर उनके साथ न्याय करने अथवा दोनों दलों को अपनी रिपोर्ट (प्रतिवेदन) के साथ राजधानी को वापस भेज देने के लिए आदेश देता था। [**स्टडीज इन औरंगजेब्स रेन, अध्याय २**]

बादशाह ही अपील का सर्वोच्च न्यायालय था और कभी-कभी वह प्रथम न्यायालय के रूप में कार्य भी करता था। जैसा कि स्वतः स्पष्ट है, केवल कुछ ही वादी उसकी गद्दी तक पहुँच पाते थे और उसके समक्ष प्रस्तुत की गयी अपीलों में से कुछ का ही निर्णय करने के लिए वह समय निकाल सकता था। किन्तु कुछ मुग़ल बादशाहों ने अपनी कर्तव्यपरायणता का स्पष्ट प्रदर्शन किया था। इनमें जहाँगीर विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसने महल से लेकर आगरा किले के बाहर भूमि तक एक स्वर्ण जंजीर लटकवा दी थी जिसमें साधारण जनता राजप्रासाद के कुलियों, अनुजीवियों, दरबारियों तथा दूसरे मध्यस्थ लोगों की मुट्ठी गरम किये बिना ही, बादशाह द्वारा खींचे जाने के निमित्त न्यायार्थ अपनी अर्जी बाँध सकती थी।

विधि एवं न्याय (Law and Justice) विभाग का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसमें न कोई पद्धति थी, न सर्वोच्च से लेकर निम्नतम न्यायालयों के संगठन का कोई क्रम ही था और न उनके कार्यक्षेत्र का कोई समुचित विभाजन ही था।

आरम्भ-काल के यूरोपीय यात्रियों का ध्यान न्याय सम्बन्धी कार्यों के इस

वितरण की ओर आकर्षित हुआ था। सन् १६११ में विलियम फिञ्च ने लिखा था :

"आगरा के किले में चार फाटक हैं। एक फाटक पश्चिम की ओर है जिसे कचहरी गेट कहते हैं जिसके भीतर बड़े फाटक के समीप ही प्रधान न्यायाधीश (काजी) के बैठने की व्यवस्था है। इस स्थान के सम्मुख ऊपर एक कचहरी होती थी जहाँ लगभग तीन घंटे तक प्रतिदिन प्रातःकाल बादशाह का वजीर बैठा करता था और जिसके सम्मुख लगान, अनुदान, भूमि, फरमान, ऋण आदि से सम्बन्धित सभी मुकदमे प्रस्तुत होते थे। मंगलवार लड़ाकू जानवरों तथा न्याय-प्राप्त व्यक्तियों, दोनों के रक्तपात का दिन था। बादशाह निरीक्षण करता और झरोखे (दर्शन-मंच) के नीचे नदी के किनारे मैदान में उन्हें कार्यान्वित होते देखता था।" [पर्चे, जिल्द ४, पृ० ७२-७३]

पाँच वर्ष पश्चात् टेरी ने कहा था—

"बादशाह स्वयं अपने न्यायालय के समीप होने वाले सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में पंच के रूप में अध्यक्षता करता था। मुकदमों का निर्णय और उनका कार्यान्वियन (execution) शीघ्र होता था। नगरों और प्रान्तों में गवर्नर भी इसी प्रकार न्याय करते थे। मैं उनके बीच की गयी लिखित विधि की चर्चा कभी भी नहीं सुन सका था। बादशाह और उसके स्थानापन्नों (substitutes) की इच्छा ही कानून थी।" [पर्चे, जिल्द ६, पृ० ४७]

बर्नियर ने एक प्रत्यक्षदर्शी के रूप में औरंगजेब के न्याय करने के ढंग का वर्णन इस प्रकार किया है :

"दरबार-आम के बड़े कमरे में एकत्र भीड़ में रखे हुए सभी प्रार्थनापत्र बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किये जाते और पढ़कर सुनाये जाते थे। पेश किये गये प्रार्थनापत्रों से सम्बन्धित व्यक्तियों से बादशाह स्वयं पूछताछ करता था और प्रायः वहीं पर पीड़ित पक्ष की क्षतिपूर्ति कर देता था। सप्ताह के दूसरे दिन एक सम्मानित एवं धनवान वृद्ध व्यक्ति द्वारा पेश किये गये दस निम्न श्रेणी के व्यक्तियों से प्रार्थनापत्रों को एकान्त में सुनने के लिए वह दो घंटे व्यतीत करता था। सप्ताह के दूसरे दिन दो प्रधान काजियों के साथ वह अदालत-खाना (न्याय-भवन) में भी निश्चित रूप से जाया करता था।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २६३]

मनुची ने सम्राट् द्वारा किये जाने वाले न्याय के दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है :

"बादशाह आमखास (Amkhas) (दीवाने-आम) में दरबार करता है और वहाँ पर पीड़ित व्यक्तियों द्वारा अपनी शिकायत करना साधारण बात है। कुछ लोग हत्यारों को दण्ड देने की माँग करते हैं, दूसरे अन्याय तथा हिंसा अथवा इसी तरह के दूसरे दोषपूर्ण कार्यों की शिकायत करते हैं...। बादशाह शान के साथ और थोड़े ही शब्दों में फैसला करता है कि चोरों का सिर काट लिया जाय, गवर्नर और फौजदार लूटे हुए यात्रियों का मुआवजा दें...। कुछ मामलों में वह घोषित करता है कि अपराधी के लिए किसी प्रकार की क्षमा नहीं है और कुछ अन्य में वह आदेश देता है कि मामले की जाँच हो और उसके समक्ष प्रतिवेदन (रिपोर्ट) प्रस्तुत किये जायँ। [स्टोरिया ड् मोगोर, जिल्द २, पृ० ४६२]

३. काजी और उनका कार्य

प्रत्येक सूबे की राजधानी में एक काजी होता था जिसे केन्द्र का प्रधान काजी (काजी-उल-कुजात) नियुक्त करता था। प्रत्येक नगर में तथा उन गाँवों में जहाँ मुसलमानों की अधिकतर आबादी होती थी और जो इतने बड़े होते थे कि उन्हें कस्बों की संज्ञा दी जाती थी, एक काजी की नियुक्ति की जाती थी, दूसरे गाँवों में कोई काजी नहीं होता था। उन्हें अपने मुकदमों को पड़ोसी कस्बों के काजी के पास ले जाना पड़ता था जिसके कार्यक्षेत्र में वे सम्मिलित थे।

प्रान्तीय काजी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था और उसकी सहायता के लिए वैधानिक रूप से दक्ष कोई सहायक न होता था। अतः वह अपने प्रान्त के बहुत थोड़े-से ही झगड़ों का निर्णय कर पाता था।

इस प्रकार लोगों को अपने मुकदमों को स्थानीय न्यायालयों और न्याय-सभाओं में (जिन्हें उत्तरी भारत में पंचायत तथा दकन (दक्षिण भारत) में मजहर कहते थे) अथवा शाही सालिसों (मध्यस्थों) के यहाँ अपील करके अथवा बलपूर्वक तय कराना पड़ता था।

४. काजी, उसकी स्थिति एवं अधिकार

सैद्धान्तिक रूप से काजी को एक जूरी का कार्य करना पड़ता था। उसे दूसरों से कानून जानना तथा उपस्थित प्रमाणों के आधार पर किसी विशेष मुकदमे के सम्बन्ध में अपना निर्णय घोषित करना पड़ता था। कानून की व्याख्या करने वाला यह व्यक्ति मुफ्ती था जिसे हम महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) की संज्ञा दे सकते हैं। "मुफ्ती वह अधिकारी है जो मुकदमों के

सम्बन्ध में कानून की व्याख्या एवं इसका प्रयोग करता है और काजी वह अधिकारी है जो इसे कार्यान्वित करता है।"[२] शाफई सम्प्रदाय के अतिरिक्त मुसलिम कानून के अन्य सभी सम्प्रदायों के अनुसार एक अपढ़ व्यक्ति भी वैधानिक काजी का कार्य कर सकता था क्योंकि "उसका कार्य केवल दूसरों के मतानुसार न्याय करना होता था। जनसाधारण को उनके उचित अधिकारों को दिलाना ही इसकी नियुक्ति का उद्देश्य था जिसकी पूर्ति दूसरों के मत के अनुसार डिग्री देने से ही होती थी।" [हैमिल्टन द्वारा अनूदित 'हेदाया', द्वितीय संस्करण, पृ० ३३४-३३५]

यद्यपि वहुत-से काजी वड़े ही विद्वान वकील थे, फिर भी, कम से कम सिद्धान्त रूप में, एक काजी की मुख्य और अनिवार्य योग्यताएँ निम्नलिखित थीं : ईमानदारी, निष्पक्षता, धर्मपरायणता, तथा स्थानीय लोगों से पृथकता (detachment)। [हेदाया तथा हेदायेतुल कवायद]

इस्लामिक देशों के इतिहास में नियुक्ति सम्बन्धी उपर्युक्त उच्चादर्श के यद्यपि कुछ ही उदाहरण विद्यमान हैं फिर भी कार्यरूप में कदाचित् ही इसे परिणत किया जा सका था। उदाहरणार्थ, औरंगजेव द्वारा नियुक्त प्रथम प्रधान काजी अव्दुल वहाव वोरा ही इतना भ्रष्टाचारी था कि अपने सोलह वर्ष के कार्य-काल में ही उसने वहुत-से जवाहरात तथा अन्य वहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त तैंतीस लाख रुपये नकद की सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। किन्तु उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी शेखुल इस्लाम का आचरण इसके ठीक विपरीत था। उसने अपने पिता की पाप की कमाई की एक कौड़ी भी न छूई अपितु उसमें से अपने भाग को भी दान में दे दिया। वह न केवल रिश्वत अथवा भ्रष्टाचार द्वारा लेशमात्र भी प्रभावित हुए विना ही अभियोगों का निर्णय करता था अपितु अपने निकट-तम मित्रों एवं सम्वन्धियों द्वारा दिये गये रीत्यानुकूल उपहारों को भी अस्वीकार कर देता था। [हिस्ट्री ऑव औरंगजेब, जिल्द ३, अध्याय २७, अनुच्छेद १०]

किन्तु मुग़ल-साम्राज्य में काजी को कार्यकारिणी का पर्याप्त आश्रय प्राप्त नहीं था। जैसा कि वर्नियर ने लिखा है—

---

२ सिद्धान्ततः "काजी को धार्मिक विषयों के प्रयोग में पूर्णतया दक्ष एक निर्दोष मुसलमान होना चाहिए...। ये न्यायाधीश पूर्ववर्ती प्रभुत्व-सूचक विद्वानों के निर्णय से आवद्ध थे...और उन्हें फिख (fiqh) पुस्तकों में उल्लिखित नियमों का अक्षरशः पालन करना पड़ता था...। काजी का निर्णय दोनों पक्षों के लिए निर्णयात्मक होता था। इसके लिए अपील नहीं होती थी।" [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ६०६]

"काजी अथवा न्यायाधीश को इन दुखी जनों (जागीरदारों, गवर्नरों तथा भूमि-अधिकारियों द्वारा सताये गये खेतिहरों, कारीगरों अथवा व्यापारियों) के कष्टों को दूर करने के लिए पर्याप्त अधिकार नहीं प्राप्त थे। प्रधान नगरों के निकट अथवा बड़े नगरों तथा बन्दरगाहों के समीप सत्ता के इस खेदजनक दुर्व्यवहार का अनुभव न होता था क्योंकि उन स्थानों में घोर अन्यायपूर्ण कार्यों को न्यायालय से सुविधापूर्वक नहीं छिपाया जा सकता था।" [वर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २२५] उसके अनुसार, "अच्छे नियमों से उस समय तक कोई लाभ नहीं तब तक कि उनका पालन न किया जाय और उनके प्रचलन को कार्यान्वित करने की सम्भावना न हो। सही अर्थों में गवर्नर एक निरंकुश शासक था। वह स्वयं ही न्याय-निरीक्षक, संसद, प्रान्तीय न्यायालय तथा राज्य-कर का निर्धारक एवं प्रापक था। पूर्वीय देशों में निर्बल और पीड़ित आश्रय-विहीन थे। गवर्नर की चित्त-चंचलता तथा दंड ही एकमात्र नियम थे और वही सभी विवादों का निर्णय करते थे।" [वर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २३५-२३६]

किन्तु वर्नियर ने यहाँ पर कर-संग्रह तथा शासकीय क्रूरता की ही चर्चा की है; उसने उन अभियोगों की चर्चा नहीं की जो कि स्पष्ट रूप से धार्मिक विधि (canon law) के अन्तर्गत लाये जा सकते हैं क्योंकि उन पर काजी का अधिकार-क्षेत्र असंदिग्ध था और व्यापक रूप से क्रियान्वित होता था। यद्यपि प्रान्तीय शासक काजी के अधिकार से ईर्ष्या रखते थे किन्तु वे स्पष्ट रूप से उसकी अवज्ञा नहीं करते थे क्योंकि वह धार्मिक विधि के नाम पर प्रत्येक विषय में बादशाह से पुनर्विचार की प्रार्थना कर सकता था।

मुसलिम-धर्म-शास्त्रानुसार काजी को मसजिद में अथवा किसी अन्य जन-स्थान पर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। इसके लिए विशेष रूप से कस्बे की जामा मसजिद ही संस्तुत (recommend) की गयी थी। कभी-कभी उसे अपने घर पर भी कचहरी करने की अनुमति दे दी जाती थी किन्तु उस दशा में जनता वहाँ स्वतन्त्र रूप से जा सकती थी और जहाँ तक बैठने के स्थान, सुविधाओं तथा साधारण बर्ताव का सम्बन्ध है, दोनों पक्षों को उसे बिलकुल समान स्तर पर रखना पड़ता था। [हेदाया, पृ० ३३७]

काजी के कार्यालय सम्बन्धी कार्यों के विषय में लिखित शाही नियम भी थे। सन् १६७१ में जब औरंगजेब को यह ज्ञात हुआ कि गुजरात प्रान्त के न्यायाधीश अपने कार्यालयों (मुहकमा-ए-अदालत) में सप्ताह में केवल दो दिन बैठते हैं और दूसरे दो दिन, अर्थात् मंगल और बुध के दिन, वे सूबेदार के

दरवार में सम्मिलित होते हैं तथा सप्ताह के शेष तीन दिन छुट्टी मनाते हैं, तो उसने प्रान्त के दीवान को लिखा कि कार्य करने का यह ढंग न तो शाही दरवार में ही प्रचलित है और न दूसरे सूबों में ही। अतः कोई कारण नहीं है कि गुजरात में ऐसा हो। उसने दीवान को यह आदेश दिया कि वह न्यायाधीशों को प्रेरित करे कि वे सप्ताह में पाँच दिन—शनिवार, रविवार, सोमवार, मंगलवार तथा गुरुवार—अपने कार्यालयों में वैठें, बुधवार को सूबेदार के पास जायँ तथा शुक्रवार को छुट्टी मनायें। दिन निकलने के दो घड़ी वाद से मध्याह्न के कुछ देर वाद तक जवकि सूर्य ढलने लगता है, न्यायाधीशों को अपने कमरों में वैठना तथा न्याय करना चाहिए और जुहार के नमाज के समय अपने घरों को जाना चाहिए। [**मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २७५**]

५. मुसलिम कानून, उसका स्वरूप एवं स्रोत

न्याय-पद्धति की क्रूरता एवं अकुशलता इस कारण और भी वढ़ गयी थी कि वादशाहों और न्यायाधीशों ने केवल कुरान के नियमों को ही मान्यता दी, जो कि भारत के वाहर ही उत्पन्न और पूर्णता को प्राप्त हुए थे। यह स्वीकार कर लिया गया था कि जिस रूप में यह पैगम्वर को अलौकिक शक्ति द्वारा व्यक्त करता है, वैसा ही केवल कुरान और उसके परम्परागत कथनों (हदीसों) में अन्तिम रूप से इसकी परिभाषा दी हुई है। किन्तु कुरान के शब्दों की व्याख्या के लिए अत्यधिक स्वतन्त्रता थी। इसी आशय से हमारे भारतीय न्यायाधीश, भारत के वाहर वाले मुसलमानी विचारधाराओं एवं सभ्यता के प्रमुख केन्द्रों में, अतीत के विख्यात मुसलमान न्यायज्ञों तथा पाक मुसलमान वादशाहों के निर्णयों की ओर ढल जाते थे। इस प्रकार भारत में मुसलिम कानूनों की उत्पत्ति विधानतः नहीं, अपितु दैवी रूप से हुई थी। इसके अतिरिक्त इसके दो और भी स्रोत थे—(१) पूर्व-दृष्टान्त (case-law), तथा (२) न्यायज्ञों की सम्मतियाँ—यद्यपि ये दोनों वाद में केवल कुरान के अर्थों की व्याख्या भर करने निमित्त स्वीकृत थे, न कि ईश्वरीय पुस्तक में उल्लिखित नियमों के अतिरिक्त कोई नया सिद्धान्त अथवा नियम वनाने के निमित्त।

भारतीय मुसलिम कानून के ये तीनों स्रोत भारत के वाहर के थे। किसी भी भारतीय वादशाह अथवा काजी का निर्णय वैधानिक सिद्धान्त का निरूपण करने, कुरान की गुत्थियों को सुलझाने, अथवा उन अभियोगों के सम्वन्ध में जिनके वारे में इसमें कोई व्यवस्था नहीं है, इसके प्रत्यक्ष उद्देश्यों के अनुसरण

द्वारा इसकी पूर्ति करने के निमित्त पर्याप्त प्रभुत्वसूचक नहीं समझा जाता था।

यही कारण था कि भारतीय काजियों को इस्लामी कानूनों का एक संक्षिप्त संग्रह तथा मान्य अरबी लेखकों के संगृहीत पूर्व-दृष्टान्तों को अपने पास रखना पड़ता था। समय-समय पर ऐसे संक्षिप्त संग्रह (digests) तैयार किये जाते थे और बादशाह की इच्छा के अनुसार उनकी शैली भी इस्लामी कानून की चार—हनफी, मलकी, शफी और हनबली—विचारधाराओं के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती थी। भारतीय बादशाहों तथा अधिकांश सुन्नियों द्वारा हनफी विचारधारा कट्टर धार्मिक समझी जाती थी। हमारे देश में अन्तिम संक्षिप्त विधि-संग्रह (law-digest) फतवा-ए-आलमगीरी था जिसे दो लाख रुपये की लागत से औरंगजेब की आज्ञा से धर्मवेत्ताओं की एक समिति ने तैयार किया था। अतः भारत में मुसलिम-विधि अरब अथवा मिस्र के न्यायज्ञों के विचारों से प्रभावित होने के अतिरिक्त अविकसनीय एवं अपरिवर्तनीय थी।

जैसा कि मध्यकालीन इतिहास के विद्यार्थियों को विदित है, एक मुसलिम राज्य की व्यवहार-विधि (civil-law) उसकी धर्म-विधि (canon-law) में विलीन एवं उसके अधीन होती थी। धर्मवेत्ता ही एकमात्र न्यायज्ञ थे।

प्राचीन मराठी लेखों में साधारण-विधि (common-law) के अनुसार न्याय करने वाले हिन्दू जातिगत न्यायालयों तथा मध्यस्थ परिषदों के विषय में हमें अधिक सूचना मिलती है। किन्तु उनका सम्बन्ध केवल दकन (दक्षिण भारत) से ही है जहाँ का सामाजिक ढाँचा उत्तरी भारत के सामाजिक ढाँचे से बिलकुल भिन्न था। कुछ निर्णय संस्कृत-ग्रन्थों में भी मिले हैं जो हमारे सम्मुख ब्राह्मण न्यायालयों की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। इन न्यायालयों को अकबर ने स्वीकृति प्रदान की थी और ये मनु तथा दूसरे स्मृतिकारों का अनुसरण करते थे। इन स्मृतियों को नैथानियल बी० हालहैड संस्कृत वैधानिक नियमों तथा धार्मिक आदेशों का अव्यवस्थित संग्रह कहा करता था जिसके अनुसार मुग़ल-काल के अन्तिम दिनों में हिन्दू वादी-प्रतिवादी प्रार्थना किया करते थे।

६. अपराधों का वर्गीकरण

मुसलिम धर्मशास्त्र के अनुसार अपराध तीन प्रकार के होते हैं :

(क) ईश्वर के विरुद्ध अपराध,

(ख) राज्य के विरुद्ध अपराध,

(ग) साधारण व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध ।

इन तीनों में से प्रथम के लिए दण्ड देने का अधिकार ईश्वर (हक अल्ला) को है । शेष दोनों प्रकार के अपराधों के लिए आहत पक्ष अपराधी को क्षमा कर सकता अथवा उससे सुलह कर सकता है । यहाँ सबसे विचित्र बात यह है कि नर-हत्या (man-slaughter) न तो ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है और न राजा की शान्ति के विरुद्ध ही । यह तो केवल हत्या किये गये व्यक्ति के परिवार की क्षति है । राज्य के प्रधान प्रबन्धक अथवा धार्मिक विधि के न्यायाधीश द्वारा किसी प्रकार का ध्यान दिये बिना ही उसके उत्तराधिकारी को रुपया (रक्त का मूल्य) देकर इसकी पूर्ति की जा सकती थी । उस स्थिति में जबकि हत्या किये गये व्यक्ति के सम्बन्धी रुपया लेने से इंकार करते थे और बदला लेने पर तुल जाते थे, काजी को मृत्यु-दण्ड घोषित करना पड़ता था तथा कार्यकारिणी इसे कार्यान्वित करने के लिए बाध्य होती थी ।

तिमूर इन्स्टीट्यूट ने इसकी स्पष्ट एवं विस्तृत व्याख्या की है । तिमूर लिखता है कि—

"कहीं भी पाये गये तथा किसी के द्वारा भी पता लगाये गये चोरों और डाकुओं को मैंने मृत्यु-दण्ड का आदेश दिया था ।" (यह स्मरणीय है कि यह कुरान के नियमों के बिलकुल अनुकूल न था ।)

"और मैं आदेश देता हूँ कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की जायदाद बलपूर्वक हड़प कर ली है तो ऐसे घातक से उस जायदाद का मूल्य वसूल करके आहत को दे देना चाहिए ।

"जहाँ तक दाँत तोड़ने, आँख निकालने, नाक-कान काटने, मद्यपान करने, पर-स्त्री-गमन करने आदि दूसरे अपराधों का सम्बन्ध है, मैंने आदेश दिया था कि जो भी इनका तथा अन्य अपराधों का दोषी हो, वह धार्मिक तथा साधारण न्यायाधीशों के न्यायालय में ले जाया जाय (इसके लिए उपयुक्त शब्द "काजी इस्लाम" तथा "काजी अहदास" है; —'अहदास' शब्द का अर्थ है संस्कार सम्बन्धी पवित्रता) ; धार्मिक न्यायाधीश शरा के अनुसार निर्णय किये जाने वाले अपराधों का निर्णय कर दें और जो उनकी जानकारी में नहीं आते हैं (उर्फी बाशद अर्थात् जिनका सम्बन्ध रूढ़-विधि अथवा लौकिक-विधि से है) उन्हें साधारण न्यायाधीशों द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत किया जाय और उनकी जाँच की जाय

[डेवी कृत इन्स्टीट्यूट ऑव तिमूर, पृ० २५१ तथा २५३, मूल फारसी ग्रन्थ के अनुसार संशोधित][3]

७. मुसलिम कानून द्वारा समर्थित दण्ड-विधान

अपराधों के लिए निर्धारित दण्ड[4] चार प्रकार के थे :—(क) हद्द, (ख) ताजीर, (ग) किसास, तथा (घ) ताशीर। इनमें विना मुकदमा चलाये ही जेल में नजरवन्द (हवालात) रखने को भी सम्मिलित किया जा सकता है किन्तु उस समय की हाजत (हवालात) आजकल की अपेक्षा अधिक कठोर थी।

हद्द का वहुवचन हदूद है। इसका अर्थ धार्मिक नियमों द्वारा निर्धारित दण्ड है जिसे ईश्वरीय अधिकार (खुदा का हक) समझा जाता था और इसे कोई मानवी न्यायाधीश वदल नहीं सकता था। हद्द के प्रयोगों का मूल उद्देश्य लोगों को कुछ अपराधों के करने के विरुद्ध चेतावनी देना था। दण्डित व्यक्ति की मुक्ति ही इसका मूल उद्देश्य नहीं था क्योंकि हद्द नास्तिकों (गैर-मुसलमान) और मुसलमानों दोनों को ही दिया जाता था।

हद्द को दण्ड का कोई निर्धारित स्वरूप ग्रहण करना चाहिए अर्थात्—

---

[3] कानूनी दृष्टि से दिन-दहाड़े डकैती के लिए मृत्यु-दण्ड केवल काजी द्वारा ही दिया जा सकता था; स्वतन्त्र रूप से वादशाह अथवा उसके किसी सिविल अधिकारी को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। सिंहासनारूढ़ होते ही नियमविरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्तियों के लिए चेतावनी-स्वरूप औरंगजेब ने पाँच सौ डाकुओं का सिर कटवा लिया था। [स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृष्ठ ४] किन्तु अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों में उसने अपनी शक्ति के वारे में अपनी राय वदल दी थी और अपने आचरण को धार्मिक नियमों के अनुकूल वनाते हुए सवसे ऊँचे पद पर नियुक्त अपने सेनापतियों में से एक की दिन-दहाड़े डाका डालने के जुर्म में एक डाकू का वध करा देने के कारण कड़ी आलोचना की थी। उसने उसे भविष्य में इस प्रकार के सभी अभियोगों को काजी के समक्ष प्रस्तुत करने की चेतावनी भी दी थी। [अहकामे आलमगीरी, अनुच्छेद ३४] विस्तृत विवरण के लिए आठवाँ अनुच्छेद भी देखिए।

[4] एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द १, पृ० १२३ (अदहाव); जिल्द २, पृ० १८७ (हद्द), पृ० ८२२ (कत्ल); जिल्द ४, पृ० १२२७ (जिनाह); फैगनन द्वारा अनुवादित अवू युसुफ कृत किताबुल खराज, पृ० २३०-२९० (विभिन्न पृष्ठ), हैमिल्टन कृत हेदाया, द्वितीय संस्करण, पृ० १७५-१९६; ह्यू द्वारा सम्पादित डिक्शनरी ऑव इस्लाम, पृ० १५३।

(१) पर-स्त्री-गमन के लिए पत्थरों से मार डालना; अविवाहित स्त्रियों से व्यभिचार के लिए १०० कोड़े लगाना।

(२) एक विवाहित स्त्री को पर-पुरुष-गमन के लिए लांछन लगाने पर ८० कोड़े लगाना।

(३) मद्यपान करने और दूसरे मादक द्रव्यों का सेवन करने के लिए कोड़े लगाना। मद्यपान करने पर एक स्वतन्त्र व्यक्ति को ८० कोड़े का दण्ड देना।

(४) चोरी के लिए दाहिना हाथ काट लेना।

(५) दिन-दहाड़े साधारण डकैती के लिए हाथ-पैर काट देना; कत्ल के साथ डकैती के लिए तलवार द्वारा वध अथवा फाँसी।[५]

(६) धर्म, नियम और समाज का बहिष्कार करने वाले को मृत्यु-दण्ड।

ताजीर नामक दण्ड का उद्देश्य अपराधी को सुधारना है। 'फिख-पुस्तकों' (fiqh-books) के अनुसार यह दण्ड ऐसे अपराधों के लिए दिया जाता था जिनके लिए हद्द नामक दण्ड नहीं दिया जा सकता था अथवा जिनके लिए किसी प्रकार का प्रायश्चित्त निर्धारित नहीं था। इसका प्रकार और इसकी मात्रा पूर्णतया न्यायाधीशों की स्वेच्छा पर निर्भर रहती थी। वे अपराधी को बिलकुल क्षमा भी कर सकते थे। मुकदमे की कार्यवाही भी हद्द की अपेक्षा साधारण थी। इसीलिए लोग रिश्वत द्वारा इससे बचने का यत्न करते थे। **[एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० ७१०]**

यह ईश्वरीय अधिकार नहीं था। यह चार तरह का होता था, यथा—

(१) जन-भर्त्सना (तदीब)।

(२) जिर्र अथवा अपराधी को (न्यायालय के) दरवाजे तक घसीटना और जन-अपहरण के लिए उसे नंगा करना। दूसरे शब्दों में, यह कुछ अंश तक एक व्यक्ति को कटघरे में जकड़ने की भाँति था।

---

५ यदि एक पुरुष या स्त्री चोरी करती है तो उसका हाथ काट लो; ······ ईश्वर द्वारा निर्धारित यह एक अनुकरणीय दण्ड है। [कुरान, जिल्द ५, पृ० ३७-३८] इसके सम्बन्ध में जलालुद्दीन अलबेदवी की टीका इस प्रकार है—"प्रथम अपराध के लिए अपराधी को अपना दाहिना हाथ खोना पड़ता था। इस बार उसका हाथ मणिबन्ध (कलाई) के पास से काट दिया जाता था। दूसरी बार अपराध करने पर उसका बायें पैर का टखना, तीसरे के लिए उसका बायाँ हाथ तथा चौथे के लिए उसका दाहिना पैर काट लिया जाता था। इतने पर भी यदि वह अपराध करता रहता था तो न्यायाधीश की स्वेच्छा से उसे कोड़े लगाये जाते थे।" (सैल)

(३) कारावास अथवा निर्वासन ।

(४) कानों पर घूँसा मारना, कोड़ा लगाना । कोड़े न तो तीन से कम और न ३९ से अधिक (अथवा अबू युसुफ द्वारा उल्लिखित हनफी सम्प्रदाय के अनुसार ७५) हों ।

सन् १७८० के लगभग हनफी सम्प्रदाय के न्यायज्ञों—मुल्ला ताजुद्दीन, मीर मुहम्मद हुसैन तथा मुल्ला शैरियतुल्ला—द्वारा तैयार किये गये इस्लामी कानून के हेदाया नामक फारसी के संकलन में यह कहा गया है कि उपर्युक्त दण्ड अपराधियों की श्रेणी के अनुसार दिया जाना चाहिए । तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के लोगों अर्थात् क्रमशः तुच्छ व्यापारियों तथा साधारण श्रमिकों (अथवा जैसा कि मनु द्वारा व्यक्त वैश्यों और शूद्रों) के लिए यह दण्ड कारावास तथा कोड़े लगाने तक ही सीमित था । हलके प्रकार के दण्डों को भद्र परिवार के लोगों तथा मध्यम वर्ग के लिए सुरक्षित रखा गया था । [हेदाया, पृ० २०३-२०४; पूर्ण विवरण के लिए देखिए ह्यू द्वारा सम्पादित डिक्शनरी आँव इस्लाम, पृ० ६३२-६३४]

जहाँ तक ताजीर-बिल-माल (Tazir-bil-mal) अथवा अर्थ-दण्ड अर्थात् जुरमाने का प्रश्न है, केवल अबू हनीफा ही इसे वैधानिक घोषित करते हैं, किन्तु दूसरे व्यक्ति इसे कुरान की विधियों के विरुद्ध बतलाकर अस्वीकार करते हैं। [हेदाया, पृ० २०३] औरंगजेब ने जो स्वयं एक कट्टर हनीफ तथा धार्मिक विधियों का पण्डित था, १६७९ ई० में गुजरात तथा दूसरे प्रान्तों के दीवानों को आदेश दिया था कि प्रत्येक अपराधी—माल अधिकारी (अम्ल), जमींदार अथवा दूसरे व्यक्ति—को उसके अपराध के अनुसार कारावास, पदच्युति तथा निर्वासन का दण्ड देना चाहिए किन्तु उसे अर्थ-दण्ड नहीं देना चाहिए क्योंकि धार्मिक विधि के द्वारा अर्थ-दण्ड निषिद्ध है । [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २९३]

८. व्यक्तिगत प्रतिकार, लोकापमान आदि
(Private Vengeance, Public Degradation etc.)

किसास अथवा प्रतिकार—कुछ अपराधों, विशेष रूप से हत्या करने पर, आहत अथवा उसके उत्तराधिकारियों का यह वैयक्तिक अधिकार था । आहत अथवा उसके उत्तराधिकारी द्वारा वैधानिक दण्ड की माँग करने पर काजी इसके लिए बाध्य था । वह और बादशाह दोनों ही उस दण्ड को रद्द अथवा उसमें परिवर्तन कर राजकीय क्षमाशीलता (royal clemency) का प्रयोग नहीं

कर सकते। इसके विपरीत, यदि मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी हत्यारे द्वारा दिये गये हरजाने (रक्त के मूल्य) से सन्तुष्ट हो जाता था अथवा बिना किसी प्रकार की शर्त के उसे क्षमा कर देता था, तो यह उसका अपना दृष्टिकोण था। इसके पश्चात् न तो काजी और न बादशाह ही उस अपराध पर ध्यान देता था। साधारण अपराधों के लिए मूसा द्वारा निर्धारित विधि-विधान "एक दाँत के स्थान पर दाँत तथा एक आँख के स्थान पर एक आँख" मान्य था; यद्यपि इसमें कुछ अपवाद भी थे। [**ह्यू द्वारा सम्पादित डिक्शनरी ऑव इस्लाम, पृ० ४८१; एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० १०३८**]

तशहीर अथवा लोकापमान एक लोक-निर्धारित दण्ड था जो समस्त विश्व में प्रचलित था। यह मुसलिम-जगत् के अतिरिक्त भारत तथा मध्यकालीन यूरोप में भी प्रचलित था। इस्लामी विधि-पुस्तकों में न तो इसको मान्यता ही दी गयी थी और न इसकी निन्दा ही की गयी थी, किन्तु यह दण्ड सभी मुसलिम काजियों तथा बादशाहों और अनभिज्ञ जनता द्वारा दिया जाता था क्योंकि बिना विधि-विधान के यह एक मृदु दण्ड था। भारत में अपराधी के सिर को मुड़ाकर उसे गधे पर बैठा दिया जाता था। उसका मुख गधे की पूँछ की ओर होता था और उसे धूल-धूसरित कर दिया जाता था। कभी-कभी तो अपराधी के गले में पुराने जूतों की माला पहना दी जाती है और फिर शोरगुल के साथ उसे गलियों में घुमाया जाता था। तत्पश्चात् उसे शहर से बाहर निकाल दिया जाता था। न्यायाधीश भी अपराधी का मुख़ काला करवा सकता था, उसके सिर के बाल कटवा सकता था अथवा उसे गलियों में घुमवा सकता था। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द १, पृ० १३२**] इस अन्तिम चलन का सम्बन्ध अरब से है।

जहाँ तक राज्य के विरुद्ध किये गये अपराधों—उदाहरणार्थ राजद्रोह, धनापहरण तथा मालगुजारी का भुगतान न करने का प्रश्न है, बादशाह स्वेच्छा से दण्ड दिया करता था क्योंकि इस सम्बन्ध में कुरान की विधि किसी प्रकार का पथ-प्रदर्शन नहीं करती है। दोषी को मृत्यु-दण्ड देने की प्रथाओं में उत्तेजित हाथियों द्वारा कुचलवाकर मार डालना, जीवित ही दफन करवा देना, साँपों से कटवाकर मार डालना अथवा दबाकर मार डालना सम्मिलित था (अन्तिम प्रथा मध्यकालीन आंग्ल-विधि द्वारा भी स्वीकृत थी।) युक्तिसंगत विभिन्न प्रकार की अन्य यातनाएँ भी प्रचलित थीं।

चोरी (सर्का) हस्तच्छेद तथा पदच्छेद द्वारा दण्डनीय थी। किन्तु यदि

अपराधी ने डकैती के साथ-साथ हत्या भी की है तो उसे मृत्यु-दण्ड दिया जाता था और उसके शरीर को एक चौराहे पर अथवा किसी दूसरे स्थान पर तीन दिन तक इस अवस्था में टंगा हुआ रखा जाता था जिससे जनसाधारण उसे देख सके। यहाँ पर मृत्यु-दण्ड अल्लाह का हक (ईश्वरीय अधिकार) समझा जाता था और रक्त-धन का प्रश्न ही नहीं उठता था। अपराधी के अन्य सहायक भी इसी प्रकार दण्डित होते थे। किन्तु सर्वप्रकार की वैधानिक शर्तों के पूर्ण हो जाने पर ही न्यायाधीश हद्द के रूप में उपर्युक्त दण्ड दे सकता था। लूटे गये व्यक्ति के समक्ष ही वैधानिक जाँच करनी पड़ती थी। प्रमाण के लिए दो पुरुषों की साक्षी अथवा स्वीकारोक्ति आवश्यक थी। यदि चोर अपराध लगाये जाने के पूर्व ही चुराई हुई वस्तु को लौटा देता था तो वह दण्ड से मुक्त कर दिया जाता था। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० १७३-१७४]

निम्नलिखित दशाओं में वैधानिक रूप से अपराध सिद्ध हो जाने पर मृत्यु-दण्ड (कत्ल) दिया जाता था :

(१) मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी हत्यारे के प्राण ही लेना चाहता था और उसके बदले क्षतिपूर्ति धन (money compensation) (दिया (Diya) अथवा रक्त-मूल्य) लेना अस्वीकार कर देता था;

(२) व्यभिचार के कुछ अभियोगों में पापिनी स्त्री को जनता पत्थर फेंक कर मार डालती थी। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, 'जिनाह' शब्द के अन्तर्गत, जिल्द ४, पृ० १२२७];

(३) दिन-दहाड़े डाका डालने पर, [कुरान, जिल्द ५, पृ० ३७ और इसके आगे];

(४) इस्लाम धर्म का त्याग करने पर [(मुर्तद्द) कुरान, जिल्द ४, पृ० ९१ और इसके आगे] "एक गैर-मुसलिम धर्म से दूसरे गैर-मुसलिम धर्म में परिवर्तन के लिए मृत्यु-दण्ड निश्चित था। एक जिन्दिक अर्थात् वह व्यक्ति जो कि मुसलमान होने का बहाना करता है और वास्तव में एक अविश्वासी व्यक्ति है, अथवा वह व्यक्ति जिसका कोई धर्म नहीं है, मृत्यु-दण्ड का भागी होता था।" प्रत्येक नास्तिक जो कि जजिया नहीं देता है···किसी भी मुसलमान द्वारा किसी भी समय मारा जा सकता है। इस मारने वाले व्यक्ति को न तो किसी प्रकार का दण्ड ही मिलता था और न उसे किसी प्रकार की आर्थिक क्षति ही उठानी पड़ती थी। धर्म त्याग करने वाले की हत्या करना एक आवश्यक कर्त्तव्य समझा जाता था।

मुर्त्तद्—हदीस में धर्मत्यागी के लिए मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था है। फिख में भी इस विषय में मतैक्यता (unanimity) है कि धर्मत्यागी को मृत्यु-दण्ड ही दिया जाना चाहिए। हनफी सम्प्रदाय के अनुसार एक स्त्री धर्मत्यागी को कैद कर लेना चाहिए किन्तु विधि के अन्य तीनों सम्प्रदायों के अनुसार इसे अवश्य ही मृत्यु-दण्ड देना चाहिए। अभी हाल ही में (लगभग १९२५ ई०) में अहमदीय सम्प्रदाय के अनुयायियों को अफ़ग़ानिस्तान में पत्थर फेंककर मार डाला गया था। **[एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ३, पृ० ७३७]** जिन्दिक एक पाखण्डी माना जाता था जिसकी शिक्षाएँ राज्य के लिए भयावह हो सकती हैं। यह अपराध मृत्यु-दण्ड **[कुरान, जिल्द ५, पृ० ३७; जिल्द २६, पृ० ४९]** तथा सदैव निन्दा का पात्र है। सब्ब-अल-रसूल (पैगम्बर का अपमान) के लिए स्वयं पैगम्बर ने विधिवत् मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था की थी। मुसलिम न्यायज्ञों ने स्वतन्त्र विचार अथवा धर्म-विरोध (जिन्दिकिज्म) को पैगम्बर की प्रतिष्ठा के विरुद्ध एक बौद्धिक विद्रोह माना था। अतः यह मृत्यु-दण्ड के योग्य है। उदाहरणार्थ अल-हल्लाज की फाँसी। **[एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० १२२८]**

इसके अतिरिक्त हनफी सम्प्रदाय के विधि (law) के अनुकूल निम्नलिखित तीन दशाओं में हत्या करना वैध है :

(५) गाजी द्वारा अपने नास्तिक वंशज का अल्लाह अथवा उसके पैगम्बर का अपमान करने के कारण वध करना।

(६) इमाम द्वारा युद्ध के नास्तिक बन्दी का उस दशा में कत्ल कर देना जबकि उसकी हत्या के कारण उसे जीवन-मुक्त करने के कारणों के बिलकुल समकक्ष हों।

(७) अपनी व अपने किसी हितैषी की सम्पत्ति व जान-माल की रक्षार्थ तथा आत्मरक्षा के हेतु हत्या।

अवधान (Caution)—कोई भी व्यक्ति जो किसी भी प्रकार के मुर्त्तद् (धर्मत्यागी) को बिना अधिकारी द्वारा अधिकार पाये ही मार डालता है तो साधारणतः वह किसास का नहीं अपितु ताजीर का भागी है। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी ताजीर का भागी है जो (इमाम के) अधिकार के बिना ही युद्ध के एक नास्तिक बन्दी की हत्या कर डालता है। **[एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ८२४-८२८]**

यहाँ पर हम सिविल-कारावास विधि (law of civil imprisonment) का सुविधापूर्वक वर्णन कर सकते हैं। जबकि एक महाजन काजी के समक्ष

अपना अधिकार सिद्ध करते हुए अपने ऋणी के कारावास की माँग करता है तो काजी को तुरन्त इसका पालन नहीं करना चाहिए अपितु सबसे पहले उसे ऋणी को भी अपना प्रमाण देने का अवसर देना चाहिए। किन्तु यदि वह (ऋणी) इस आदेश का पालन नहीं करता है और प्रमाणित ऋण के भुगतान में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तो उसे अवश्य ही बन्दी बना लेना चाहिए।

जबकि दोनों पक्ष के लोग स्वेच्छा से किसी विवाद में मध्यस्थता (सालिस) स्वीकार कर लेते हैं तो उसका (मध्यस्थ) निर्णय विधानतः प्रामाणिक है और यदि वह काजी के समक्ष प्रस्तुत किया जाय और वह (काजी) इसका अनुमोदन करे तो उसे कार्यान्वित करना उसका कर्तव्य हो जाता था। [हेदाया, पृ० ३३८-३४३]

९. औरंगजेब के शासनकाल की दण्ड-संहिता (Penal Code)

फतवा-ए-आलमगीरी अथवा संक्षिप्त इस्लामिक अभियोग-विधि-संहिता के अतिरिक्त, जिसका औरंगजेब ने शेख निजाम की अध्यक्षता में धर्मज्ञों की समिति द्वारा संग्रह करवाया था, उसने १६ जून, १६७२ ई० को गुजरात के दीवान के नाम एक फरमान जारी किया था जो उसके धर्म-संहिता का एक लघु रूप प्रस्तुत करता है। 'ताजीर' (न्यायाधीश की स्वेच्छा से शारीरिक दण्ड देना) के अर्थ में 'सुधार' शब्द का प्रयोग करते हुए उसका अनुवाद निम्नलिखित है :

"बादशाह को ज्ञात हुआ है कि स्थानीय अधिकारी उन लोगों के अभियोगों का निर्णय करने में विलम्ब करते हैं जो बिना किसी अपराध के ही जेल में डाल दिये गये हैं। अतएव बिना उचित कारण के ही कारावास में रखने की प्रथा को रोकने के लिए निम्नलिखित नियम निर्धारित किये जाते हैं :

(१) काजी के सम्मुख चोरी के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध वैधानिक प्रमाण सिद्ध हो जाने पर अथवा अपराधी द्वारा अपराध स्वीकार कर लेने की दशा में, 'हद्द' को लागू किये जाने की आवश्यक शर्तों की पूर्ति हो जाने पर, काजी को अपने सामने ही दण्ड देना चाहिए और अपराध के लिए पश्चात्ताप के लक्षणों के स्पष्ट होने तक उसे कारावास में रखना चाहिए।

(२) यदि नगर में चोरी साधारण-सी बात हो और चोर गिरफ्तार कर लिया गया हो तो प्रमाण के पश्चात् भी न तो उसका वध करो और न उसे सूली पर ही चढ़ाओ क्योंकि बहुत सम्भव है कि यह उसका प्रथम अपराध हो।

(३) यदि किसी व्यक्ति ने केवल एक ही बार निसाव[६] के बराबर अथवा उससे कम मूल्य की चोरी की है अर्थात् यदि वैधानिक रूप से 'हद्द' लागू न हो तो उसे सुधार (ताजीर) लो। किन्तु यदि वह पुनः अपराध करता है तो ताजीर के पश्चात् उसके पश्चात्ताप करने की अवधि तक उसे कारावास में रखो। यदि वह ताजीर तथा कारावास द्वारा भी नहीं सुधरता है और पुनः चोरी करता है तो उसे एक लम्बी अवधि का कारावास अथवा सियासत (siasat) तथा फाँसी दे दो और स्वामित्व का वैधानिक प्रमाण मिल जाने पर यदि स्वामी उपस्थित हो तो चुराई हुई सम्पत्ति उसे दे दो। यदि ऐसा न हो तो उस सम्पत्ति को बैतुलमाल में अमानत के रूप में जमा कर दो।

(४) यदि किसी व्यक्ति ने दो बार चोरी की है और इन दोनों अवसरों पर उसे 'हद्द' के अन्तर्गत दण्ड दिया गया है और इसके पश्चात् भी वह पुनः चोरी करता है, तथा उसके विरुद्ध वैधानिक रूप से दोष सिद्ध हो जाता है, अथवा वह जेबकतरा हो जाता है और इस अपराध को बराबर करता रहता है, तो ताजीर के पश्चात् उसे पश्चात्ताप करने की अवधि तक कारावास में रखो। किन्तु यदि इतने पर भी वह नहीं सुधरता है और पुनः अपराध करता है तो उसे लम्बी अवधि तक कारावास (आजन्म कारावास) में रखो।

(५) यदि कोई व्यक्ति किसी शव को कब्र से बाहर निकालते हुए पकड़ लिया जाता है तो जनसाधारण के समक्ष उसकी भर्त्सना करो और तब उसे छोड़ दो। किन्तु यदि यह उसका व्यवसाय बन जाता है तो उसे देश से निकाल दो अथवा सियासत (siasat) के रूप में उसके हाथों को काट लो। सूबे के गवर्नर की राय में इस सम्बन्ध में जो कुछ उचित हो, उसे विधि-न्यायालय के अधिकारियों के सहयोग से कार्यान्वित करो।

(६) यदि किसी व्यक्ति का दिन-दहाड़े डकैती डालने का अपराध काजी के समक्ष सिद्ध हो जाता है अथवा दण्ड पाने की शर्त के रूप में वांछित विस्तार के साथ वह स्वयं उसे स्वीकार कर लेता है, तो काजी को अपनी ही उपस्थिति में उसे उचित दण्ड देना चाहिए। किन्तु यदि उसका अपराध मृत्यु-दण्ड अथवा 'हद्द' के योग्य न हो और सूबे के गवर्नर और अदालत के अधिकारियों की राय उसको फाँसी देने के विरुद्ध हो तो उसका अंग-भंग (सियासत) कर दो।

---

[६] कुरान के टीकाकारों के अनुसार यदि चुरायी हुई वस्तु का मूल्य चार दीनार अथवा चालीस शिलिंग से कम हो तो अंग-विच्छेद नहीं करना चाहिए।

(७) यदि एक गिरफ्तार किया हुआ चोर अपने लूट के सामान को किसी दूसरे व्यक्ति के यहाँ रखा हुआ बताता है और जाँच करने के पश्चात् वह व्यक्ति चोर का सहायक सिद्ध हो जाता है और यदि यह उसका प्रथम अपराध हो तो उसे ताजीर के अनुसार दण्ड दो, किन्तु यदि उसकी ऐसी आदत ही हो तो 'ताजीर' के पश्चात् उसके सुधर जाने की अवधि तक उसे कारावास में रखो। यदि इन बातों से भी वह नहीं सुधरता है और पुनः अपराध करता है तो स्थायी रूप से उसे जेल में रखो। नियम ३ में उल्लिखित शर्तों के अनुसार चुरायी हुई सम्पत्ति लौटा देनी चाहिए। चुरायी हुई सम्पत्ति के निरपराध क्रेताओं को दण्ड नहीं देना चाहिए वरन् प्रमाण मिलने पर वास्तविक स्वामी को उस सम्पत्ति को लौटा देना चाहिए अथवा बैतुलमाल में जमा कर देना चाहिए।

(८) ऐसे अभ्यस्त अपराधियों का प्रमाण मिलने पर अंग-भंग (सियासत) कर दो जो लोगों के घरों में डाका डालते हैं और जन-धन को हानि पहुँचाते हैं।

(९) (गुजरात के) ग्रासियों और जमींदारों के सम्बन्ध में भी जो अभ्यस्त डाकू और लुटेरे हैं और जिनकी मृत्यु जन-कल्याण के लिए अपेक्षित है, प्रमाण मिलने पर अंग-भंग (सियासत) कर दो।

(१०) संदिग्ध ठग को, जिसकी ठगी वैधानिक रूप से सिद्ध नहीं हो पायी है, 'ताजीर' के अनुसार सुधारा जाना चाहिए और उसे तब तक कारावास में रखा जाना चाहिए जब तक वह पश्चात्ताप न कर ले। किन्तु यदि ऐसा करने का वह अभ्यस्त हो गया है और यह बात वैधानिक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध हो जाती है, अथवा इस प्रकार के कार्यों के लिए वह सूबे की जनता तथा गवर्नर को भलीभाँति विदित हो जाता है, अथवा उसके पास ठगी के लक्षण और हत्या किये गये व्यक्ति की सम्पत्ति पायी जाती है तथा सूबेदार और अदालत के अधिकारी को पूर्ण रूप से शंका हो जाती है कि वह इस प्रकार के कार्यों को करने का अभ्यस्त हो गया है, तो उसे फाँसी दे दो।

(११) यदि चोरी, दिन-दहाड़े डकैती, ठगी अथवा लोगों की जघन्य हत्या (strangulation) का संदिग्ध अपराधी पकड़ लिया जाता है और सूबेदार तथा अदालत के अधिकारी प्राप्त लक्षणों से उसी के दोषी होने की अधिक सम्भावनाएँ पाते हैं, तो उसे कारावास में डाल दो जिससे वह पश्चात्ताप कर सके। यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त अपराधों के सम्बन्ध में दोषी ठहरता है, तो मुकदमे के लिए काजी का आश्रय लो।

(१२) ऐसे दुष्ट लोगों को जो दूसरे के मकानों में आग लगाकर सम्पत्ति लूटने के लिए एकत्र जनसमुदाय से लाभ उठाते हैं अथवा जो लोगों को अचेत करने और उनकी सम्पत्ति लूटने के लिए धतूरा, भांग, कुचला तथा दूसरी निद्राकारक औषधियों का प्रयोग करते हैं, प्रमाण मिलने पर उन्हें कठोर दण्ड तथा कारावास देना चाहिए जिससे वे पश्चात्ताप कर सकें। यदि छुटकारा पा जाने तथा पश्चात्ताप कर लेने के पश्चात् भी वे पुनः अपराध करते हैं, तो उनका अंग-भंग कर दो। यदि कोई व्यक्ति ऐसे लोगों के पास पायी गयी वस्तु को अपनी बतलाता है तो इस मामले को काजी को सौंप दो जो प्रमाण पाने पर उसे वास्तविक स्वामी को दिला देगा और (दोषी की निजी सम्पत्ति से) जलायी हुई सम्पत्ति का हरजाना दिला देगा।

(१३) यदि विद्रोहियों का एक दल युद्ध के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करता है और उसके लिए तैयार होता है, यद्यपि उनमें विरोध करने की पूर्ण शक्ति अभी तक संचित नहीं हो सकी है, तो उन्हें पकड़ लो और उस समय तक कारावास में रखो जब तक वे पश्चात्ताप न करें। यदि उन सबों ने युद्ध करने की स्थिति प्राप्त कर ली है तो उन पर आक्रमण करो और उन्हें समूल नष्ट कर दो। उनमें से घायलों और हारे हुए लोगों की हत्या कर दो जब तक कि वे तितर-बितर न हो जायँ। किन्तु उन लोगों के तितर-बितर हो जाने पर उन पर न तो आक्रमण करो और न उनकी हत्या ही करो। यदि उनमें से कोई गिरफ्तार कर लिया जाता है तो उसका वध कर दो अथवा उसे उस समय तक कारावास में रखो जब तक कि उनके दल का संगठन छिन्न-भिन्न न हो जाय। जब ये पश्चात्ताप कर लें और अपने भावी आचरण के सम्बन्ध में तुम्हें पूर्ण आश्वासन दे दें तो उनके दल की प्राप्त सम्पत्ति को उन्हें लौटा दो।

(१४) नकली सिक्का बनाने वाले को पहली बार 'ताजीर' और 'तह-दीद' के पश्चात् छोड़ देना चाहिए किन्तु यदि यह उसका व्यवसाय बन जाता है तो उसे 'ताजीर' के अन्तर्गत दण्ड दो और उसे उस समय तक कारावास में रखो जब तक कि वह पश्चात्ताप न करे। यदि इतने पर भी वह यह कार्य नहीं छोड़ता है तो उसे लम्बी अवधि तक कारावास में रखो।

(१५) यदि कोई व्यक्ति नकली सिक्का बनाने वाले के यहाँ से नकली सिक्का क्रय करता है और उसे असली सिक्के की तरह चलाता है तो उसे लम्बी अवधि के कारावास के अतिरिक्त अनुच्छेद १४ में उल्लिखित सभी प्रकार का दण्ड दो।

(१६) नकली सिक्कों को रखने वाले निष्कपट व्यक्ति दण्ड के पात्र नहीं हैं किन्तु ऐसे सिक्कों को नष्ट अवश्य कर देना चाहिए।

(१७) यदि कोई व्यक्ति 'रससिद्ध' (alchemist) होने का वहाना करता है और इस प्रकार दूसरों के धन का हरण कर लेता है तो उसे 'ताजीर' के अन्तर्गत दण्ड दो और उस समय तक कारावास में रखो जब तक कि वह पश्चात्ताप न करे। जहाँ तक इस प्रकार प्राप्त सम्पत्ति का प्रश्न है, नियम ३ के अन्तर्गत उल्लिखित नियमों के अनुसार उसका प्रवन्ध कर दो।

(१८) यदि कोई व्यक्ति छल से किसी को विप दे देता है जिसका परिणाम घातक होता है तो उसे 'ताजीर' के अन्तर्गत दण्ड दो और उस समय तक कारावास में रखो जब तक कि पश्चात्ताप न करे।

(१९) यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री का हरण कर लेता है, तो प्रमाण मिलने पर उसे उस समय तक कारावास में रखो जब तक कि वह पत्नी को उसके पति को अथवा बच्चे को उसके माता-पिता को नहीं लौटा देता है अथवा वन्दीगृह में मर नहीं जाता है। यदि इसी बीच पत्नी अथवा बच्चे मर जाते हैं तो अपराधी को 'ताजीर' के अन्तर्गत कठोर दण्ड दो और उसे छोड़ दो अथवा तशहीर के अन्तर्गत दण्ड दो और उसे देश से निकाल दो। मध्यस्थों को सुधारात्मक दण्ड दो और वन्दी बना लो।

(२०) पासे से जुआ खेलने के लिए 'ताजीर' और कारावास का दण्ड है। इसकी पुनरावृत्ति करने पर लम्बी अवधि का कारावास देना चाहिए। जीती हुई सम्पत्ति को स्वामी को लौटा देना चाहिए अथवा उसे न्यासधारियों (ट्रस्टियों) की देखरेख में दे देना चाहिए।

(२१) इस्लाम के नगर अथवा गाँव में शराव वेचने पर अपराधी को घूसों की कठोर मार देकर सुधारना चाहिए अपराधी द्वारा अपराध की पुनरावृत्ति करने पर उसे उस समय तक कारावास में रखो जब तक कि वह सुधर न जाय।

(२२) यदि कोई व्यक्ति शराव वनाने वाले को अपने यहाँ नौकर रखता है और वनायी हुई शराव वेचता है परन्तु वह ऐसा व्यक्ति न हो जिसकी राज-दरवार में पहुँच हो, तो उसे घूंसे मारकर सुधारो और कारावास में रखो, किन्तु यदि वह ऐसा व्यक्ति है जिसकी दरवार में पहुँच है तो उस अभियोग की वास्तविकता को वादशाह से कह दो और शराव वनाने वाले को खूब पीटो और उसकी खुलेआम निन्दा करो।

(२३) भाँग, वूजा तथा इसी प्रकार के अन्य मादक द्रव्यों के वेचने वालों

को ताड़ना देनी चाहिए और यदि वे अभ्यस्त अपराधी हैं तो उन्हें उस समय तक जेल में रखो जब तक वे पश्चात्ताप न कर लें।

(२४) यदि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को पानी में डुबोकर, कुएँ में फेंककर अथवा पर्वत-शिखर या छत से ढकेलकर मार डालता है तो उसे ताड़ना दो, कारावास में रखो और उसे हत्या किये गये व्यक्ति के उत्तराधिकारी को 'दिया' अथवा धार्मिक विधि के अनुसार निर्धारित दोषमोचक अर्थ-दण्ड देने के लिए बाध्य करो। यदि वह अपराध की पुनरावृत्ति करता है तो उसे कठोर 'सियासत' के अनुसार दण्ड दो।

(२५) यदि एक व्यभिचारी किसी दूसरे मनुष्य के घर में व्यभिचार करने के निमित्त घुसता है तो उसे कठोर ताड़ना दो और उस समय तक बन्दीगृह में रखो जब तक कि उसके भावी आचरण के सम्बन्ध में तुम्हें स्वयं विश्वास न हो जाय।

(२६) यदि एक व्यक्ति गवर्नर के समक्ष दूसरे व्यक्ति पर अनावश्यक दोषारोपण करता है और इस प्रकार धन का नाश कराता है तो प्रमाण मिलने पर, यदि यह उसका व्यवसाय ही है तो, उसे 'सियासत' के अनुसार दण्ड दो। अन्यथा उसे ताड़ना दो और उस समय तक जेल में रखो जब तक कि वह पश्चात्ताप न कर ले। वह उन लोगों को हरजाना भी दे जिनकी सम्पत्ति को उसने नष्ट किया है।

(२७) यदि एक जिम्मी (पुरुष अथवा स्त्री) एक मुसलमान (पुरुष अथवा स्त्री) को अपना नौकर रखता है अथवा एक जिम्मी एक मुसलिम औरत को या एक मुसलमान "धर्म-ग्रन्थ में उल्लिखित लोगों" (ज्यू तथा ईसाई) के अतिरिक्त एक जिम्मी स्त्री को अपनी पत्नी बनाता है तो अपराधी को धार्मिक विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए काजी के समक्ष प्रस्तुत कर दो।

(२८) दुराचारी, व्यभिचारी, पुरुष के साथ मैथुन करने वाले, मद्य तथा दूसरे प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले, किसी स्त्री को फुसलाकर उसका सतीत्व नष्ट करने वाले, धर्म-त्यागी, काजी के आदेशों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले तथा अपने स्वामियों के यहाँ से भागने वाली नौकरानियाँ एवं दास जो महाजनों के यहाँ शरण लेते हैं और पवित्र विधि के नाम पर दीवानी के अधिकारियों के यहाँ पुनर्विचार की प्रार्थना करते हैं, उनके विषय में तुम्हें काजी के आदेशों के अनुसार कार्य करना चाहिए।

(२९) जब किसी व्यक्ति के विरुद्ध हत्या करने का अभियोग पवित्र विधि

के अनुसार सिद्ध हो चुका है अथवा उसका सिद्ध होना प्रायः निश्चित है तो अपराधी को कारावास में रखो और इसके बारे में बादशाह को सूचित कर दो।

(३०) यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पुत्र के पुंसत्व को नष्ट कर देता है तो उसे ताड़ना दो और उस समय तक जेल में रखो जब तक वह पश्चात्ताप न कर ले।

(३१) यदि किसी विशेष धार्मिक पन्थ के अनुयायियों का नेता (रईस) दूसरों को धर्म-परिवर्तन के लिए उकसाता है और उसकी प्रेरणा से बिदाअत (नास्तिकता) के फैलने की आशंका है तो उसे 'सियासत' के अनुसार दण्डित करो।

(३२) जहाँ तक फौजदार तथा दूसरे लोगों द्वारा सूबेदार के यहाँ भेजे गये बन्दियों का प्रश्न है, उनके पहुँचते ही उनके मामलों में परिश्रम के साथ जाँच-पड़ताल करो और यदि उनके मामलों का सम्बन्ध राज-भूमि की मालगुजारी से हो तो उन्हें मालगुजारी-अधिकारी को सौंप दो और उसे उन मामलों को मुस्तैदी के साथ शीघ्र निपटाने के लिए प्रेरित करो। यदि ऐसा न हो तो उपर्युक्त नियमों में से उपयुक्त नियम का प्रयोग करो। प्रति मास एक बार कैदियों के मामलों के सम्बन्ध में कचहरी में अथवा पुलिस चबूतरे पर पूछताछ कर लो, निरपराधियों को छोड़ दो और दूसरों के अभियोगों के शीघ्र निर्णय के सम्बन्ध में प्रयत्न करो।

जब एक व्यक्ति कोतवाल के आदमियों अथवा मालगुजारी वसूल करने वालों द्वारा अथवा व्यक्तिगत अभियोग के सम्बन्ध में गिरफ्तार कर कोतवाल के चबूतरे पर ले आया जाता है तो कोतवाल को स्वयं उसके विरुद्ध लगाये गये दोष की जाँच करनी चाहिए। यदि वह निरपराध हो तो उसे तुरन्त ही छोड़ दो। यदि किसी ने उस पर अभियोग चलाया हो तो अभियोग चलाने वाले से न्यायालय का आश्रय लेने के लिए कहो। यदि उसके विरुद्ध राजभूमि-कर-विभाग का कोई अभियोग है तो उसके सम्बन्ध में सूबेदार को सूचित कर दो। जैसा सूबेदार सुझाये वैसा ही एक प्रमाणपत्र ले लो और उसी के अनुसार कार्य करो। यदि काजी किसी व्यक्ति को राजबन्दी बनाने के लिए भेजता है तो इस सम्बन्ध में अपने अधिकार के लिए काजी द्वारा हस्ताक्षरित आदेश प्राप्त कर लो और उस आदमी को कारावास में रखो। यदि काजी उसके मुकदमे की तिथि निश्चित करता है तो उस तिथि पर कैदी को अदालत में भेज दो।

अन्यथा उसे वहाँ प्रतिदिन भेजो जिससे उसके अभियोग का शीघ्र निर्णय हो सके।[७]

१०. इस्लाम में संगीत का स्थान

रूढ़िवादी धर्मान्ध बादशाह औरंगजेब का सरकारी इतिहास इस्लाम में संगीत के स्थान के विषय की स्पष्ट व्याख्या करता है। इसका लेखक साकी मुस्तादखाँ जो बादशाह का नौकर तथा प्रशंसक था, लिखता है कि एक दिन मिर्जा मकर्रमखाँ ने बादशाह से पूछा कि 'आपकी संगीत के विषय में क्या राय है ?' बादशाह ने अरबी भाषा में उत्तर दिया कि यह 'मुबाह' है, न तो अच्छा ही है और न बुरा ही। **[मासीरे आलमगीरी, मूल, पृ० ५२७]** 'मुबाह' शब्द (मीम, बे, अलिफ हे हुती) का शाब्दिक अर्थ है 'आज्ञापित' अर्थात् एक ऐसा कार्य जिसे एक व्यक्ति मुसलिम धार्मिक विधि के अनुसार कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता है; न तो यह प्रशंसा का ही कार्य है और न निन्दा का ही; तथा न तो पुण्य ही है और न पाप ही। वस्तुतः इसके सम्बन्ध में धार्मिक विधि अन्यमनस्क है। **[एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० ३२२]**

अनभिज्ञ जनता के बीच औरंगजेब के संगीत सम्बन्धी अधिनियमों के विषय में अत्यन्त मिथ्या विचार प्रचलित हैं। उसके सरकारी इतिहास में वर्णित है कि 'मधुर कंठ वाले गायक तथा वाद्य-यन्त्रों को सुन्दर ढंग से बजाने वाले उसके सिंहासन के चारों ओर अधिक संख्या में एकत्र होते थे, और अपने शासनकाल के प्राथमिक कुछ (दस) वर्षों तक वह कभी-कभी उनके गानों को सुन लिया करता था। फिर भी अतिसंयम एवं आत्मसंयम (तवर्रा वा परहेजगारी) से प्रेरित होकर उसने संगीत का सुनना बिलकुल छोड़ दिया।" **[मासीरे-आलमगीरी, पृ० ५२६]**

शाही दीवान अलीमुहम्मदखाँ द्वारा लिखे गये गुजरात के इतिहास में संगीत एवं उसके प्रयोग के सम्बन्ध में बादशाह औरंगजेब के आदेशों का उल्लेख है। यह लेखक निम्नलिखित घटना का उल्लेख करता है—

---

[७] **मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २७८-२८३।** लेखक का कथन है कि "समय के प्रभाव और कीटाणुओं द्वारा की गयी क्षति के कारण इस फरमान के बहुत-से शब्द नष्ट हो गये हैं अतः इसका पाठ अशुद्ध है।" मैंने इसके प्राप्य रूप में इसका अनुवाद किया है। यह उस समय की सामाजिक प्रथाओं और मुसलिम-जगत् के सनातन न्यायिक विचारों का एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

जब शाहजादा औरंगजेब बादशाह हुआ तो शेख मुहिउद्दीन अबू यूसुफ यहिया अलचिश्ती को एक हजार रुपया प्रति वर्ष की पेंशन दी गयी थी। इसने शाहजादे औरंगजेब को आशीर्वाद दिया था और दिल्ली के सिंहासन पर उसके बैठने की भविष्यवाणी की थी। शेख गाने और नाचने के साथ मौलूद करने का बहुत ही शौकीन था। अतः वह चिश्तिया सम्प्रदाय की प्रथा के अनुसार अपने पूर्वजों (बुजुर्गान) की मजलिस और उर्स के अवसर पर प्रायः संगीत (singing without flutes) (बेमजामीर) और मौलूद की व्यवस्था किया करता था। चूंकि बादशाह ने इस पर कठोरता के साथ प्रतिबन्ध लगा दिया था, अतः अहमदाबाद के दोषवेचक (सेन्सर) मिर्जा बाकर ने सभी स्थानों पर मौलूद का मनाना बन्द करवा दिया। किन्तु जब उसने इसे रोकने के लिए शेख के पास अपने एजेण्ट को भेजा तो शेख ने अपने शिष्यों को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित कर दिया और स्वयं एक तलवार लेकर दोषवेचक (सेन्सर) के आश्रम में घुसने पर उसका मुकाबला करने की धमकी दी। बादशाह को इस सम्बन्ध में सूचना दी गयी। उसने शेख के पास क्षमा का एक अत्यन्त नम्र पत्र लिखा, स्थानीय अधिकारियों (चार) की भर्त्सना की और उन्हें बहुत-सी भेंट की सामग्री के साथ उस फकीर के पास क्षमायाचना के लिए भेजा। इसके पश्चात् किसी अधिकारी ने किसी को मौलूद और संगीत से नहीं रोका।

इसके बाद की एक और महत्त्वपूर्ण घटना है। जब यही शेख मक्का जाते समय अहमदाबाद पहुँचे और सभी लोग उनका आदर करने के लिए उनके पास पहुँचे तो शहर की मसजिद के इमाम अब्दुल वाहिद बोहरा ने, जो एक प्रसिद्ध विद्वान तथा धार्मिक प्रवृत्तियों के व्यक्ति थे, अहम् तथा सूफियों से अपनी शत्रुता के वशीभूत होकर कहा कि "मैं उनसे मिलने क्यों जाऊँ। वह तो सदैव घें-घें सुनते हैं।" संगीत के प्रति उसका यह घृणास्पद संकेत था। शेख ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने क्रोध में आकर कहा कि "यह तुच्छ व्यक्ति स्वयं घें-घें करेगा।" उसी दिन सन्ध्या की नमाज का जब अब्दुल वाहिद इमाम की हैसियत से नेतृत्व कर रहे थे, तो उन्होंने कुरान के कल्मों को पढ़ना चाहा किन्तु वे "घें-घें" के अतिरिक्त और कुछ न कह सके। अपने को नियन्त्रित करने के उनके सभी प्रयत्न निष्फल रहे और अन्त में उन्होंने इमाम के कार्य को ही छोड़ दिया। यह दोष उनमें मृत्युपर्यन्त तक बना रहा। [मौराते अहमदी, सप्लीमेण्ट, पृ० ७९-८२]

भारत के बाहर मुसलिम देशों में प्रचलित प्रथा भी संगीत के अवैधानिक होने के सिद्धान्त का खण्डन करती है। "इस्लाम के प्रारम्भिक दिनों में गाने का विरोध देखा गया है। गाना सुनने और गाना गाने के प्रश्न की वैधानिकता इस्लाम के विधानवेत्ताओं के बीच वाद-विवाद का विषय बन गयी थी। इब्न कुतैबा ने यह संकेत किया था कि कुरान को गाने (तघबीर) तथा ऐहिक गानों के गाने (घिना) से सम्बन्ध रखने वाले नियम एकसे थे। वस्तुतः, यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि यदि कलात्मक संगीत अवैधानिक है तो कुरान का गाना भी अवैधानिक है। 'अलगिना' के प्रति इस्लाम के विशुद्ध वादियों का विरोध बहुत कम सफल रहा और प्रारम्भ के दिनों में गायिकाओं (कैना) के अतिरिक्त व्यावसायिक पुरुष गायक (मुघानी) भी थे। इनमें सर्वप्रथम तुवैस थे।" अबू अब्दुल मुनीम ईसा अलतुवैस का जन्म पैगम्बर की मृत्यु के दिन हुआ था। उन्होंने मदीना में तृतीय धार्मिक खलीफा उस्मान के दरबार को सुशोभित किया था और वहाँ पर एक नये प्रकार के गाने को प्रचलित किया था। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, सप्लीमेण्ट, पृ० ८२; जिल्द ४, पृ० ६८३]

इस प्रकार यह सिद्धान्त कि मसजिद के समक्ष गाना मुसलिम धर्म पर एक आघात है अथवा यह स्वयं अनैतिक है, 'शरा' अथवा इतिहास में उल्लिखित मुसलिम प्रथाओं के प्रमाण पर आधारित नहीं है।

अध्याय ७

बादशाह के विशेषाधिकार (Prerogatives)

मूल फारसी स्रोतों के आधार पर मुग़ल बादशाहों के लिए सुरक्षित उपभोगों और अधिकारों के विषय में हमें पूर्ण जानकारी प्राप्त है। प्रजा का अपने लिए इनका प्रयोग एक महान् अपराध तथा बुरा व्यवहार समझा जाता था।

अपने अधिकार-क्षेत्र में बादशाह का अभिनय करना प्रत्येक सूबेदार की महत्त्वाकांक्षा थी। इसके सबसे बड़े अपराधी चार बड़े सूबेदार अथवा सीमान्त प्रदेशों के वाइसराय थे जो, इंगलैण्ड के जागीरदारों के 'मार्चर अर्ल' के सदृश, दूसरे सूबों के सूबेदारों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली एवं प्रतिष्ठित थे। १६०८ ई० से लेकर १६१३ ई० तक बंगाल के गवर्नर इस्लामखाँ चिश्ती के समय में यह दोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। यह अत्यन्त अहंकारी एवं स्वेच्छाचारी व्यक्ति था। इसलिए जहाँगीर ने अपने शासनकाल के छठवें वर्ष (१६११ ई०) में कुछ प्रथाओं को बन्द करने के लिए एक आदेश प्रपत्र निकालना आवश्यक समझा। वाइसरायों (सूबेदारों) द्वारा इन प्रथाओं का अपनाया जाना बादशाह के विशेषाधिकारों का अपहरण घोषित किया गया।[1]

औरंगजेब भी जहाँगीर के समान ही राजपद की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में पैनी दृष्टि रखता था। उसने अपने पुत्रों द्वारा भी शाही विशेषाधिकारों की किसी प्रकार की कल्पना को ईर्ष्या के साथ दण्डित किया था। इन विषयों से सम्बन्धित अपनी कठोरता के लिए वह कहा करता था कि—

"यदि एक भी नियम का उल्लंघन किया गया, तो सभी नियम नष्ट हो जायेंगे। यद्यपि अभी तक मैंने (दरबार के) किसी भी नियम के उल्लंघन करने की आज्ञा नहीं दी है, फिर भी लोग इतने साहसी हो गये हैं कि वे मुझ से नियमों को हटाने के लिए कहते हैं।" [अहकामे आलमगीरी, अनुच्छेद ६३]

---

[1] तुजुके जहाँगीरी (सैयद अहमद का संस्करण), पृ० १००; बहरिस्ताँ, पृ० १०३अ; इकबालनामा, पृ० ५६; मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० १६०

और फिर "उसने (यहाँ उसका तात्पर्य अपने पुत्र शाहजादे मुअज्जम अथवा शाहआलम से है) कैसे वह कार्य करने का साहस किया जो कि वादशाहों का विशेषाधिकार है। दिवंगत वादशाह शाहजहाँ अपने पुत्रों के प्रति बड़ा ही उदासीन था जिसके फलस्वरूप उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी।" **[अहकामे आलमगीरी, अनुच्छेद १५]**

इन दोनों शासनकालों के सरकारी दस्तावेजों के आधार पर हमें १६ ऐसी वातें ज्ञात होती हैं जो कि सम्राटों के लिए विशेष रूप से सुरक्षित तथा प्रजा के लिए चाहे वह कितने ही उच्च पद पर क्यों न हो, निषिद्ध थीं :

(१) प्रातःकाल प्रासाद के छज्जे से अपनी प्रजा को झरोखा-दर्शन देना। इसे 'दर्शन' कहते थे। यह संस्कृत भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है "किसी मूर्ति अथवा यति का देखना"। सम्राट् अकवर ने इस प्रथा का आरम्भ किया था। जैसा कि उसके दरवारी इतिहासज्ञ अवुल फजल ने लिखा है :

"वादशाह सलामत साधारणतया चौवीस घंटे में दो वार दर्शन देते थे जवकि सभी वर्ग के लोग उसकी मुखाकृति के प्रकाश से अपने नेत्रों और हृदय को तृप्त कर सकते थे। सर्वप्रथम प्रातःकाल की नमाज पढ़ने के पश्चात्, गदा-धरों (mace-bearers) द्वारा विना किसी अड़चन के, सभी वर्गो के लोगों के लिए, शामियाने के वाहर से वह दृष्टिगोचर होते थे।" **[आईने अकवरी, जिल्द १, पृ० १५६]**

आगरा (तथा दिल्ली) के किले की पूर्वी दीवार में एक छज्जा था जिसे झरोखा-ए-दर्शन कहते थे। यहाँ से यमुना का मध्यवर्ती भाग जो नीचे एक मैदान के सदृश फैला हुआ था, दिखायी पड़ता था। जव सम्राट् यहाँ निवास करते थे तो प्रतिदिन प्रातःकाल दर्शकों का अपार जनसमूह उसी रेतीले मैदान में एकत्र होता था। सम्राट् सूर्योदय के पौन घंटे पश्चात् उसी छज्जे पर निकला करता था और अपने मुख का दर्शन अपनी प्रजा को दिया करता था। प्रजा तत्क्षण उसका अभिवादन करती थी और वह भी उनके अभिवादन का उत्तर देता था। केवल अपना दर्शन देने में ही नहीं अपितु कार्य करने में भी वह आधा घंटा अथवा उससे अधिक समय वहाँ पर व्यतीत करता था। वह मैदान दुर्ग की दीवारों के वाहर था अतः जनता वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक पहुँच सकती थी और आहत व्यक्ति द्वारपालों तथा दरवार के अनुजीवियों की मुट्ठी गरम किये विना ही सम्राट् को अपना प्रार्थनापत्र दे सकते थे और उससे अपनी शिकायत कर सकते थे। प्रायः छज्जे (झरोखे) से एक रस्सी लटकी रहती थी। लोग अपने

प्रार्थनापत्रों को इसी में बाँध देते थे जिसे नौकर खींच लिया करते थे और सम्राट् के समक्ष प्रस्तुत कर दिया करते थे।

सबसे विचित्र बात तो यह थी कि इससे एक वर्ग विशेष की उत्पत्ति हो गयी थी जिसे 'दर्शनिया' कहते थे। इन लोगों ने रोमन साम्राज्य के अगस्टेल्स के श्रेणियों की भाँति सम्राट् के पुजारियों का एक सम्प्रदाय बना लिया था। जिस प्रकार गया और जगन्नाथपुरी के हिन्दू भक्त स्थानीय प्रतिमाओं के प्रति व्यवहार करते थे, उसी प्रकार ये लोग भी प्रातःकाल सम्राट् के शुभ मुख का दर्शन किये बिना न तो अपना दिन का कार्य ही आरम्भ करते थे और न सुबह का नाश्ता ही करते थे।

औरंगजेब ने अपने शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष के पश्चात् प्रातःकालीन अभिवादन के निमित्त छज्जे पर निकलना अस्वीकार कर मनुष्य-पूजा की इस प्रथा का अन्त कर दिया था। [खफीखाँ, जिल्द २, पृ० २१३]

(२) चौकी तथा चौकी की तस्लीम अर्थात् अमीरों से अश्वारोहियों द्वारा राजमहल का पहरा दिलवाना तथा उस स्थान का रीत्यानुसार अभिवादन करवाना। अकबर ने इस प्रथा को चलाया था। आईने अकबरी (जिल्द १, पृ० २५७) के एक उद्धरण के अनुसार—

"अश्वारोही रक्षकों (mounting guards) को हिन्दी में चौकी कहते हैं। सेना के चार दलों को सात भागों में बाँट दिया गया था। एक विश्वसनीय मनसबदार की अध्यक्षता में उनमें से प्रत्येक एक दिन के लिए नियुक्त किया जाता था। वे बादशाह सलामत द्वारा दिये गये किसी भी आदेश का पालन करने के लिए कटिबद्ध महल के चारों ओर दिन और रात उपस्थित रहते थे। सन्ध्या समय शाही झण्डा (कुर) जन-दरबार में लाया जाता था। इसके दाहिनी ओर कार्यभार सँभालने वाला तथा बायीं ओर कार्यमुक्त अश्वारोहियों का दल खड़ा होता था। दोनों बादशाह सलामत का अभिवादन करते थे। इनमें से यदि कोई बिना किसी उचित कारण के अनुपस्थित हो जाता था तो उसका एक सप्ताह का वेतन काट लिया जाता था अथवा उसकी उचित भर्त्सना की जाती थी।"

बर्नियर इस विषय में और अधिक सूचना देता है:

"उमराओं को बारी-बारी से सप्ताह में एक बार चौबीस घंटे दुर्ग (शाही प्रासाद) की अवश्य रखवाली करनी पड़ती थी। वह अपनी चारपाई, बिस्तर और दूसरा आवश्यक सामान दुर्ग में भेज दिया करता था क्योंकि

वादशाह उसे केवल भोजन देता था। भोजन की ये तश्तरियाँ उसे विचित्र औपचारिकता के साथ दी जाती थीं। अन्तःपुर की ओर मुख करके उमरा तीन वार तस्लीम करता था—पहले वह अपने हाथ को नीचे भूमि तक ले जाता था और तब इसे ऊपर सिर तक उठाता था। [वर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २१४ तथा २५८]

राजाओं (हिन्दू मनसवदारों) को कभी भी दुर्ग के भीतर चौकी नहीं देनी पड़ती थी किन्तु अपने खेमों में रहकर दीवार के वाहर ऐसा अवश्य करना पड़ता था। [वर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २१०]

शाही भवन के चारों ओर पहरा देने का कार्य यद्यपि सप्ताह में केवल चौबीस घंटे ही करना पड़ता था, फिर भी अमीर इसे एक दुखद कर्तव्य समझते थे। किन्तु वादशाह इस कर्तव्य के निर्वाह के लिए सदैव वल देता था। प्रान्तीय गवर्नरों के पास शाही शान व शौकत से रहने तथा भवन के चारों ओर पहरा देने के लिए शाही सेना के अधिकारियों को विवश करने का कोई अधिकार न था।

(३) प्रजा का कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से अपने समक्ष उसके हाथों अथवा ललाट से भूमि-स्पर्श या तस्लीम तथा कोरनिश नहीं करवा सकता था।[२]

तस्लीम अथवा दिल्ली के दरवार में प्रचलित सलाम करने का ढंग अकवर द्वारा प्रचलित किया गया था। तस्लीम में दाहिने हाथ को जमीन पर रखकर धीरे-धीरे, जब तक व्यक्ति सीधा खड़ा न हो जाय, उसे ऊपर उठाया जाता था और अपने मस्तक पर लगे हुए मुकुट पर रखना पड़ता था। इसका अभिप्राय यह होता था कि वह अपने आप को वादशाह को अर्पण करने के लिए तैयार है। अकवर का कथन है कि एक वार उसने अपने पिता को संयोगवश इसी ढंग से सलाम किया जिसका फल यह हुआ कि हुमायूँ इससे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने राजदरवार में इसी ढंग से सलाम करने की प्रणाली को अपनाने का आदेश दिया। [आईने अकवरी, जिल्द १, पृ० १५८]

---

२ कोई सूवेदार न तो अपने झंडे खड़े कर सकता था और न अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अपने समक्ष सिर झुकाने के लिए वाध्य ही कर सकता था। इस प्रकार की सलामी लेखक द्वारा लिखित "स्टडीज़ इन औरंगज़ेव्स रेन" के दूसरे अध्याय में वर्णित ढंगों के अनुसार शाही दरवार में ही की जाती थी।

दूसरे मुसलिम देशों में सम्राट् को प्रणाम करने का ढंग इससे भिन्न था, अर्थात् उन देशों में छाती के ऊपर तक भुजाओं को मोड़कर (जोड़कर) सिर को झुकाना पड़ता था। दिल्ली के सम्राटों की प्रबल अभिलाषा थी कि विदेशी यात्री (विशेष रूप से फारसी राजदूत) अपने देशों में प्रचलित प्रथा के अनुसार नहीं अपितु भारतीय प्रथा के अनुकूल उन्हें प्रणाम (सलाम) करें।

तस्लीम की चर्चा करते हुए इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि अप्रैल, १६७० ई० में औरंगजेब ने अपने मुसलिम दरबारियों को एक-दूसरे को तस्लीम करने के लिए मना कर दिया था। जब वे परस्पर मिलते थे तो उन्हें अपने हाथों को सिर तक नहीं उठाना पड़ता था अपितु केवल सलाम-आलेकुम (तुम्हें शान्ति मिले) कहना पड़ता था। **[मासीरे आलमगीरी, पृ० ९८ तथा २७२]**

अबुल फजल ने कोरनिश का निम्न वर्णन किया है :

"बादशाह सलामत ने दाहिने हाथ की हथेली को ललाट पर रखने तथा सिर को नीचे झुकाने का आदेश दिया था। आधुनिक भाषा में इस ढंग से सलाम करने को कोरनिश कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि सलाम करने वाले ने अपने सिर को (जो कि समस्त इन्द्रियों तथा मस्तिष्क का केन्द्र है) राजकीय सभा को उपहारस्वरूप अर्पण करते हुए उसे दीनता के हाथों (in the hands of humility) में सौंप दिया है और अपने को किसी भी प्रकार की सेवा करने के लिए प्रस्तुत कर दिया है।" **[आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५८]**

"(अपने पद से) छुट्टी लेने अथवा राजदरबार में उपस्थित होने या मनसब, जागीर, प्रतिष्ठा की वर्दी अथवा अश्व स्वीकार करने के अवसर पर तीन बार तस्लीम करने का नियम है किन्तु दूसरे अवसरों पर; यथा वेतन पाने तथा उपहार प्राप्त करते समय, केवल एक ही बार तस्लीम करने का नियम है।" **[आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५८]**

(४) कोई भी सूबेदार शाही दरबार की भाँति नियमित रूप से अपने दरबार में उपस्थित होने के लिए गायकों एवं संगीतज्ञों को बाध्य नहीं कर सकता था।

इस सम्बन्ध में अकबर द्वारा अपनायी गयी प्रथा का इस प्रकार वर्णन किया गया है :

"सूर्योदय के लगभग तीन घंटे पूर्व सभी जाति के संगीतज्ञ एवं गायक दीवाने-खास में सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होते थे। वे गीतों एवं धार्मिक

छन्दों द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन करते थे। जब सवेरा होने में केवल चार घड़ी (अर्थात् डेढ़ घंटा) शेष रह जाती थीं, तो बादशाह सलामत अपने अन्तःपुर में (शयन करने के लिए) चले जाते थे।

"जब कभी भी बादशाह सलामत जनदरबार करते थे तो पुरुष और स्त्री गायक अपने प्रदर्शन की आज्ञा की प्रतीक्षा में रहते थे।" [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५६-१५७]

"दरबार के संगीतज्ञों की सप्ताह के प्रत्येक दिन के लिए सात टोलियाँ बना दी गयी थीं। बादशाह सलामत का आदेश पाने पर वे अपने संगीत का प्रदर्शन आरम्भ कर देते थे।" [आईने अकबरी, पृ० ६१२]

औरंगजेब ने १६६७ ई० में इस प्रथा को समाप्त कर दिया था और शाही नौबत के अतिरिक्त दरबार के दूसरे संगीतज्ञों को पेंशन देकर पदच्युत कर दिया था।

(५) यात्रा के अवसर पर प्रस्थान करते समय नक्कारे का बजाना।

मनुची ने इस सम्बन्ध में शाही प्रथा का वर्णन इस प्रकार किया है:

"जब वह (औरंगजेब) तख्तेरवाँ पर चढ़ता था और अपने खेमों से निकलता था तो युद्ध के सभी बाजे बजाये जाते थे।" [स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ६६]

जब बादशाह दीवाने-ख़ास में अपने सिंहासन पर बैठता था तो सभी लोगों को दरबार आरम्भ होने की सूचना देने के लिए 'दमदमा' बजाया जाता था। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५७]

औरंगजेब के शासन के अन्तिम दिनों में बड़े-बड़े अमीरों को अपने साथ आलम तथा नक्कारा ले जाने का अधिकार दिया जाने लगा था, किन्तु उन्हें शाही शिविर अथवा राजधानी में तथा अपने सूबों में दरबार करते समय नक्कारा बजाने की अनुमति नहीं थी। अति महत्त्वपूर्ण सेवाओं के उपलक्ष में प्राप्त विशेष अनुग्रह के फलस्वरूप कुछ अमीरों को अपने अभियान पर प्रस्थान करते समय शाही शिविर के द्वार से अपना नक्कारा बजाने की आज्ञा दे दी गयी थी।

(६) जब एक सूबेदार किसी को घोड़ा अथवा हाथी भेंट करता था तो वह उससे उसकी पीठ पर अंकुश अथवा लगाम रखवाकर अपने को प्रणाम नहीं करवा सकता था। यह केवल उसी समय किया जाता था जबकि सम्राट् ही दाता होता था।

राजकीय शब्दावली का प्रयोग था। इस बात का पता लग जाने पर औरंगजेब ने घृणापूर्वक कहा था कि फिरोजजंग ऐसे सप्तहजारी सेनापति को आश्चर्य-जनक कार्य करने का अधिकार नहीं है। [**हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद ३५**] औरंगजेब का सबसे बड़ा लड़का मुहम्मद सुल्तान जब चौदह वर्ष का था तो वह भी अबुल फजल द्वारा लिखित अकबर के पत्रों की शैली के आधार पर अपने पत्रों को तैयार करने के मूर्खतापूर्ण यत्न में शाही पत्र सम्बन्धी शैली को अपनाने के कारण अपने पिता द्वारा डाँटा-डपटा गया था। [**स्टडीज़ इन औरंगजेब्स रेन, अध्याय ३, अनुच्छेद ३**]

(१०) कोई भी वायसराय किसी भी अपराधी को अन्धा करने अथवा उसके नाक-कान काटने का दण्ड नहीं दे सकता था।

स्वत्व का दावा करने वाले व्यक्ति अपने अधिकार को प्राप्त कर सकते थे। उससे निम्न श्रेणी के व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त न था। सम्राट् ही भक्तों का नायक अथवा शासन का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी तथा राज्य में इस्लाम का एजेण्ट (अभिकर्ता) था।

(१२) हाथियों के युद्ध के लिए आदेश देना। यह दिल्ली के सम्राटों का अति ईर्ष्या के साथ सुरक्षित विशेषाधिकार था। अकबर के बाद के बहुत-से सम्राट् इस राजकीय मनोरंजन के बड़े ही शौकीन थे। उनके पुत्रों को यह रुचि पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली थी। शाहआलम के सरहिन्द से अभियान के समय हस्तयुद्ध कराने की प्रबल इच्छा को रोकने में शाहजहाँ की असमर्थता और तत्पश्चात् दोनों जानवरों के बीच हुए युद्ध को आकस्मिक घटना बताकर अपने पिता के क्रोध को शान्त करने का उसका यत्न एक मनोरंजक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आगरा (तथा दिल्ली) के दुर्ग की बाहरी दीवार और यमुना नदी के मध्य एक बड़ा रेतीला मैदान है। प्रातःकालीन झरोखा-दर्शन के पश्चात् इस मैदान से भीड़ हटा दी जाती थी और दो शाही हाथी परस्पर युद्ध करने के लिए छोड़ दिये जाते थे। टैवर्नियर का कथन है कि "जल के समीप इस स्थान को जान-बूझकर चुना गया था क्योंकि विजेता हाथी को कुपित होने पर उन लोगों के पास उस हाथी को अधिक समय तक शान्त न होने पर नदी में जाने के लिए प्रेरित करने के अलावा कोई दूसरा साधन नहीं था। ऐसा करने के लिए कभी-कभी धूर्तता का प्रयोग करने की भी आवश्यकता पड़ती थी। अर्थात् उसे पानी में ले जाने के लिए भालों की नोकों पर आतिशबाजी बांधकर उनमें आग लगानी पड़ती थी।" [टैवर्नियर, ट्रैवल्स इन इण्डिया, जिल्द १, पृ० १०६]

शाही हाथीखाने में युद्ध करने के निमित्त प्रत्येक हाथी का जोड़ा नियत कर दिया जाता था। जब इस प्रकार का एक अच्छा जोड़ा युद्ध करने के लिए छोड़ा जाता था तो एक तीसरा हाथी, जिसे 'तवांचा' कहते थे, उन दोनों में से किसी एक की, दूसरे के द्वारा बुरी तरह घायल कर दिये जाने पर, सहायता करने के लिए तैयार रखा जाता था। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १३१, ४६७]

"दोनों विशालकाय जानवर आमने-सामने एक-दूसरे से मिलते थे। प्रत्येक के लिए दो महावत रहते थे ताकि एक के नीचे गिर जाने पर फौरन ही दूसरा उसका स्थान ले सके। महावत उन हाथियों को खुशामदी शब्दों द्वारा अथवा

कायर होने का उलाहना देकर उत्तेजित करते और अपनी एड़ियों से आगे बढ़कर युद्धरत होने के लिए प्रेरित करते थे। भीषण घात-प्रतिघात होते थे और इसलिए बीच-बीच में रुककर पुनः युद्ध होता था, बार-बार उन्हें उकसाया जाता था और लड़ाया जाता था। उन दोनों में से अधिक साहसी हाथी अपने शत्रु पर आक्रमण करता था और उसे भागने के लिए विवश कर इतनी दृढ़ता के साथ उससे गुँथ जाता था कि उन दोनों के मध्य आतिशबाजी छोड़ने पर ही वे एक-दूसरे से अलग किये जा पाते थे।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २७६-२७७]

इस राजकीय मनोरंजन का दुष्परिणाम महावतों और दर्शकों की मृत्यु एवं उनके अंगों की क्षति थी।

"प्रायः ऐसा होता था कि कुछ महावत वहीं पैरों तले कुचल जाते अथवा मर जाते थे। हाथी अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी के महावत को उतार फेंकने के महत्त्व का अनुभव करने के लिए पर्याप्त चतुर थे अतः वे अपनी सूड़ों से उसे नीचे पटक देने का यत्न करते थे। यह इतना भयावह समझा जाता था कि युद्ध के दिन वे (महावत) अपने स्त्री-बच्चों से इस प्रकार की औपचारिक विदा माँगते थे मानो उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया हो।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २७७]

मनुची ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है:

"जब बादशाह हस्तियुद्ध करवाता था तो महावतों की स्त्रियाँ अपने आभूषण उतार देती थीं, अपने कंगनों को तोड़ डालती थीं और रोती रहती थीं मानो वे विधवा हो गयी हों। यदि उनके पति जीवित लौट आते थे तो वे नवविवाहिता की भाँति एक बड़ी दावत देती थीं।" **[स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ३६४]**

"इस प्रकार अपने जीवन को खतरे में डालने वाले व्यक्ति को कुछ ताम्र खण्डों का इनाम मिलता था। इसका मूल्य सवा छः रुपये था और जो उसके एक या दो मास के वेतन के बराबर था। युद्ध समाप्त होते ही यह धन उसे एक थैले में रखकर दे दिया जाता था।" **[आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १३१; बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २७७]**

केवल यही भय न था। "प्रायः ऐसा होता था कि कुछ दर्शकों को हाथी अथवा भीड़ धक्का देती थी और कुचल देती थी, क्योंकि उस समय जबकि उत्तेजित हाथियों से बचने के लिए पुरुष और घोड़े भागते थे, तो भीड़ भयंकर हो जाती थी।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २७८] मुग़ल इतिहास के पाठक भलीभाँति जानते हैं कि एक बार शाहज़ादे औरंगजेब को जबकि उसकी आयु केवल

पन्द्रह वर्ष की थी एक अनियन्त्रित युद्धालु हाथी ने घोड़े से गिरा दिया था और मार ही दिया होता यदि उसने अपने धैर्य और साहस से अपनी प्राणरक्षा न की होती (हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद १ में इस घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।) औरंगजेब ने एक अधिकारी को अपने समक्ष दो हाथियों का युद्ध कराने के कारण दण्डित किया था। [ईश्वरदास, पृ० १४४ब]

जहाँगीर द्वारा उल्लिखित सम्राट् के उपर्युक्त बारह विशेषाधिकार थे। दूसरे प्राप्त स्रोतों के आधार पर हमें चार अन्य विशेषाधिकारों का भी ज्ञान होता है।

(१३) वर्नियर [ट्रैवल्स, पृ० ३७८] का कथन है कि शेर का शिकार भी एक विचित्र राजकीय मनोरंजन था "क्योंकि विशेष आज्ञा के अतिरिक्त केवल बादशाह और शाहजादे ही ऐसे व्यक्ति थे जो इस खेल में सम्मिलित होते थे।" वह पृष्ठ ३७८ से लेकर पृष्ठ ३८० तक इस खेल का विस्तृत वर्णन करता है। इसमें गधा शिकार फँसाने के लिए चारे का कार्य करता था। एक जालीदार घेरे के भीतर शेर घिरा हुआ रहता था जिसे सम्राट् हाथी की पीठ पर चढ़कर मारता था।

(१४) कार्यालय अथवा दरबार के समय प्रजा के किसी भी व्यक्ति को कमरे की फर्श पर बिछी हुई दरी (अथवा बहारिस्ताँ के अनुसार भूमि से ऊपर मनुष्य की ऊँचाई के आधे) से अधिक ऊँचे किसी स्थान पर नहीं बैठना चाहिए।

१६६५ ई० के लगभग जब औरंगजेब को संवाद-लेखकों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि बंगाल का गवर्नर, इब्राहीमखाँ, अत्यन्त वैभव और दर्प के कारण एक चारपाई पर बैठकर दरबार करता है और काजी तथा दूसरे धर्माधिकारी फर्श पर नम्रता के साथ बैठते हैं तो उसने तुरन्त ही गवर्नर के पास एक कड़ा पत्र भेजा और उससे कहा कि यदि वह किसी बीमारी के कारण भूमि पर बैठने में असमर्थ है तो उसे अपने चिकित्सकों को अपने को शीघ्र रोगमुक्त करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। [हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद ६४]

शाहजादे भी इस नियम से वंचित न थे। उपर्युक्त घटना के कुछ ही वर्ष पश्चात् सम्राट् के सबसे बड़े जीवित लड़के शाहआलम ने इसी प्रकार अपने पिता को क्रुद्ध कर दिया था जिसके लिए उसे उसी समय दण्ड दिया गया था। हमीदुद्दीनखाँ के ही शब्दों में वह वर्णन उद्धरित है :

"काबुल के सूबे के संवाददाता से सम्राट् को ज्ञात हुआ कि मुहम्मद मुअज्जम बहादुरशाह दरबार करते समय भूमि से एक गज ऊँचे मंच पर

बैठा करता था। सम्राट् ने प्रतिवेदन (रिपोर्ट) के पृष्ठ पर लिखा कि केवल इच्छा करने से ही हम लोगों का कार्य नहीं हो सकता, प्रत्येक वस्तु के लिए ईश्वर की अनुकम्पा आवश्यक है। तुम केवल अधीरतापूर्ण कार्यों द्वारा बड़ों का स्थान नहीं प्राप्त कर सकते हो।...

"दो कठोर गदाधरों को खुले दरबार में उसे अपने स्थान से नीचे उतारने के लिए तथा उस मंच को तोड़ने के लिए भेजना चाहिए।" [हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद १५]

सम्राट् के दरबार की कार्यविधि इस प्रकार की थी कि वह अन्तःपुर के एक दरवाजे से दीवाने-आम के समीपवर्ती उच्च झरोखे पर निकलता था। इसके पश्चात् वह अपने सिंहासन पर बैठ जाता था जो कि एक उच्च स्थान पर रखा रहता था। जब वह एक खेमे में दरबार करता था तो वह बड़े कमरे के मध्य में रखा रहता था। "बादशाह सलामत के पुत्र, पौत्र, दरबारीगण तथा वहाँ प्रवेश पाये हुए अन्य लोग कोरनिश करने के लिए वहाँ उपस्थित होते थे और अपनी भुजाओं पर भुजाओं को रखे हुए अपने पदों के अनुसार अपने यथोचित स्थानों पर खड़े रहते थे।" [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५७, १६०; टेवर्नियर, ट्रैवल्स इन इण्डिया, जिल्द १, पृ० ९९]

सम्राट् विशेष आदेशों के द्वारा अपने पुत्रों को प्रायः बैठ जाने की आज्ञा दे दिया करते थे। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १६०; स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द १, पृ० १९१]

(१५) जुमे की नमाज के लिए केवल सम्राट् ही पालकी में बैठकर जामा मसजिद को जा सकता था। औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम दिनों में गुजरात के वायसराय इब्राहीमखाँ की पालकी में बैठकर जामा मसजिद जाने के विरुद्ध शिकायत की गयी थी; यद्यपि शाहजादे भी सम्राट् की विशेष आज्ञा के बिना ऐसा नहीं कर सकते थे। औरंगजेब ने इस सूबेदार को पत्र लिखा कि तुम ऐसा कार्य क्यों करते हो जिससे संवाददाताओं को तुम्हारे विरुद्ध शिकायत करने का अवसर मिलता है। [हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद ६५]

(१६) शरीर को सुवर्ण से तोलना भी राजकीय विशेषाधिकारों में से एक था, यद्यपि सम्राट् ने कभी-कभी अपने प्रिय पुत्र को भी ऐसा करने की आज्ञा दे दी थी। [अब्दुलहमीद कृत पादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३७७; तुजुके जहाँगीरी, पृ० १६३]

अध्याय ८

धर्माध्यक्ष (Head of Religion) के रूप में सम्राट्

१. मुसलिम राज्य में सम्राट् के धार्मिक कार्य

पूर्वी देशों के इतिहास में सम्राटों द्वारा अपनी प्रजा का आध्यात्मिक नेता होने का दावा करने के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। सम्भव है कि मनुष्य के स्वाभाविक मिथ्याभिमान अथवा राज्य और धार्मिक क्षेत्र में अपना समान उच्चाधिकार प्राप्त करने के राजनीतिक अभिप्राय तथा उसके द्वारा सम्राट् की स्थिति को अनक्रमणीय (unassailable) बनाने अथवा इन दोनों ही उद्देश्यों के कारण इस प्रकार के दावे किये गये हों। पांच लाख तलवारों का स्वामी उस समय तक प्रसन्न नहीं हो सकता है जब तक कि वह अपने प्रति गर्व से यह न कह सके कि उसने अपनी प्रजा का स्वाभाविक प्रेम तथा स्वेच्छानुरूप आज्ञा-पालन प्राप्त कर लिया है। उसमें यह समझने की स्वाभाविक दुर्बलता होती थी कि वह दूसरे व्यक्तियों से भिन्न है, उसका सम्बन्ध देवताओं से है और वह अर्द्ध-ईश्वरीय मनुष्य के रूप में ईश्वरीय अधिकार द्वारा शासन करता है। चाटुकारों द्वारा यही विचार रोम के सम्राटों और इंगलैण्ड के स्टुअर्ट-वंशीय राजाओं के मस्तिष्क में धीरे-धीरे भर दिया गया था।

मुसलिम राज्य में इसे एक सुविधाजनक उपक्रम (lodgement) मिल गया था। वह एक ऐसा राज्य था जिसमें ईश्वर को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न तथा उसके सम्राट् को सिद्धान्ततः पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। वह युद्ध-क्षेत्र तथा आम नमाज के समय समान रूप से मुसलमान भक्तों का नायक था। वही उस समय का एकमात्र खलीफा था और यदि वह अपने पद के लिए योग्य होता था तो अरब के पैगम्बर का जामा उस पर आ जाता था और वह केवल राष्ट्रीय सेना का सेनापति ही नहीं होता था वरन् धर्म का सर्वश्रेष्ठ जीवन-पथ-प्रदर्शक (मुज्तहिद) तथा इमाम भी होता था। केवल सेना द्वारा शासित राज्य तथा संकटकालीन स्थिति ने इस अधिकार के पल्लवित होने में बाधा पहुँचायी थी जिसने सम्पूर्ण मध्ययुग के अधिकांश मुसलिम

भू-प्रदेशों में एक प्रगाढ़ धर्मज्ञ के स्थान पर एक क्रूर अपढ़ सैनिक को एक सफल सम्राट् बनाया था। शताब्दियों के लम्बे तारतम्य के वास्तविक अनुभव द्वारा जनता के मस्तिष्क से यह विचार धीरे-धीरे दूर हो गया था कि सुल्तान अवश्य ही मुज्तहिद अथवा इमाम भी था, किन्तु वह ऐसा हो सकता था।

२. एक महान् पथ-प्रदर्शक के अवतार की लोकेच्छा

भगवान के नर-रूप की विचारधारा (Anthropomorphism) अथवा मनुष्य के रूप में ईश्वर-पूजा आर्य जाति का एक महान् शाप है। फारस के निवासी इस्लाम के सदृश एक नितान्त अद्वैतवादी धर्म को अपनाने के पश्चात् भी इसे दूर न कर सके थे। इस्लाम के सिद्धान्तों के साथ-साथ फारस के निवासियों द्वारा पूजित विभिन्न अवतार यह सिद्ध करते हैं कि नर-पूजा के लिए ईरान कितना उर्वर प्रदेश है। हमें ब्राउन कृत "लिटरेरी हिस्ट्री ऑव पर्शिया, जिल्द १, अध्याय ९" में इन धार्मिक आन्दोलनों का पूर्ण विवरण मिलता है। सूफीवाद भी, जिसके लिए मुसलिम जातियों में सबसे अधिक फारस के निवासियों ने कार्य किया है, उत्प्रेरित (inspired) अथवा अलौकिक मेधावी आध्यात्मिक शिक्षकों को मान्यता प्रदान करता है।

'इंसाने कामिल' अथवा पूर्ण व्यक्ति अत्यन्त उच्चकोटि की मानवता अथवा ईश्वर के साथ तादात्म्य प्राप्त सूफियों को मुसलिम रहस्यवादियों द्वारा प्रदत्त उपाधि है। पूर्ण व्यक्तिवाद का सिद्धान्त सर्वेश्वरवाद सम्बन्धी एकेश्वरवाद पर आधारित है जो सृष्टिकर्ता (अलहक) तथा सृष्टि (अल खल्क) को पूर्ण ब्रह्म का पूरक आकार मानता है अथवा, जैसा कि एक हिन्दू कहेगा, पुरुष और प्रकृति दोनों एक ही वस्तु के दो रूप हैं। एक अरबी रहस्यवादी लिखता है कि "मनुष्य में ईश्वर और संसार दोनों रूपों का समावेश है। वह एक दर्पण है जिसके द्वारा ईश्वर व्यक्त होता है। हम लोग स्वयं ऐसे गुण हैं जिनके द्वारा हम ईश्वर का वर्णन करते हैं। हम लोगों का अस्तित्व उसके अस्तित्व का प्रत्यक्षीकरण मात्र है।" पूर्ण व्यक्ति अपने में ही उस असीम सत्ता को प्रदर्शित करता है और उसी में स्वयं लय हो जाता है और बराबर ईश्वरीय प्रकाश के माध्यम से ऊँचा चढ़ता चला जाता है जब तक कि वह उस असीम सत्ता में पूर्णतया विलय नहीं हो जाता और विलय हो जाने पर देवत्व की मुहर लगा देता है। तब वह विश्व का कुतुब (ध्रुवतारा) तथा वह माध्यम हो जाता है जिसके द्वारा यह विश्व सुरक्षित रहता है। वह सर्वशक्तिमान् है। कोई वस्तु उससे छिपी नहीं रहती है। यह उचित ही है कि मनुष्य जाति उसके समक्ष भक्ति-

पूर्वक अपना मस्तक नत करें क्योंकि वह विश्व में ईश्वर (खुदा) का प्रतिनिधि (vicegerent) (खलीफा) है। [कुरान, जिल्द २, पृ० २८] इस प्रकार अपने ईश्वरीय तथा मानवीय दोनों रूपों में वह ईश्वर तथा उसके द्वारा सृजित वस्तुओं में सम्बन्ध स्थापित करता है। कट्टर मुसलमानों के अनुसार यह प्रतिनिधि महापुरुष पैगम्बर मुहम्मद हैं। अलजिली का यह मत है कि प्रत्येक युग में मुहम्मद एक जीवित फकीर का रूप धारण करते हैं और उसी वेष में वह अपना ज्ञान रहस्यवादियों को कराते हैं। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ५१०]

अपने युग में मनुष्य के रूप में एक ईश्वरीय शिक्षक के लिए साधारणतः सूफी सम्प्रदाय के मुसलमानों की तथा विशेष रूप से फारसी जाति के लोगों की प्रबल उत्कण्ठा थी। हिन्दू एक अवतार का स्वागत करने के लिए उनसे अधिक तैयार हैं क्योंकि उनका यह विश्वास है कि अतीत में इस प्रकार के बहुत-से अवतार हुए हैं और ईश्वर निश्चय ही अवतार लेता है जबकि पापाधिक्य तथा वर्तमान उपदेशकों द्वारा अशान्त आध्यात्मिक भूख के सन्ताप के कारण इसकी आवश्यकता पड़ती है। (भगवद्गीता)

३. अकबर द्वारा स्वयं को ईश्वर का अभिकर्ता घोषित करना

जबकि सच्चे अनुयायी ऐसे महापुरुष अथवा तत्कालीन ईश्वर (साहबे जमाँ) की आशा करते थे तो यह जानना मानव स्वभाव के अनुकूल ही होगा कि बहुत-से उत्सुक व्यक्ति ऐसे भी थे जो सम्राट् के प्रति धार्मिक भक्ति घोषित कर भौतिक लाभ प्राप्त करना चाहते थे। ऐसा ही मत अलबदायूँनी ने व्यक्त किया है।

सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत का धार्मिक वातावरण विद्युत के समान गतिमान था। इस युग में चैतन्य और नानक अपने उपदेशों के द्वारा लोगों को धर्म-परिवर्तन के लिए प्रेरित करते थे। उस युग की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर उनके नवीन मत भारत में राज्य-विजयी आन्दोलन सिद्ध हुए, जैसा कि ब्लोकमन ने आईने अकबरी की प्रथम जिल्द में अपने अनुवाद की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। प्राचीन कट्टर धर्म से विचलित होकर भारत में दूसरे धार्मिक आन्दोलनों का भी जन्म हुआ था। इनमें महदवी सम्प्रदाय अर्थात् वे लोग जो एक नये महदी अथवा सर्वशक्तिमान् आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक की खोज में थे, विशेष उल्लेखनीय है। (महदवी सम्प्रदाय सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक बीजापुर में भलीभाँति जीवित था और वह अब भी

गुजरात में फैला हुआ है।) [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ३, पृ० १११]

जैसा कि अलवदायूंनी ने व्यक्त किया है, सम्राट् अकवर आंशिक रूप से अपने स्वाभाविक दर्प किन्तु विशेप रूप से अपने प्रिय जनों की चाटुकारिता के कारण स्वयं को ईश्वर का अभिकर्ता घोपित करने के लिए विवश हुआ था।

यद्यपि वह अपढ़ था, फिर भी उसने मुज्तहिद अथवा कुरान तथा मुसलिम धर्मशास्त्र की समस्त विवादग्रस्त वातों की अचूक व्याख्या करने वाले के रूप में अपनी मान्यता सुरक्षित कर ली थी (१५७९)। हिन्दू धर्म के प्रति उसके झूठे प्रेम, प्रसिद्ध हिन्दू संन्यासियों और पण्डितों के साथ उसकी लम्वी तथा गुप्त वार्ताएँ, समस्त हिन्दू रीति-रिवाजों के प्रति सहिष्णुता के उसके निर्देश एवं अन्तिम रूप से वहुत-से हिन्दू आचार तथा शिष्टाचार सम्वन्धी नियमों का उसके द्वारा पालन करने के कारण हिन्दू उसे अपने में से एक समझते थे। वे उसे जगद्गुरु अथवा सम्पूर्ण विश्व का आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक मानते थे और उसके मुसलमान प्रशंसकों का संघ (विशेप रूप से फारसी लोग) उसे इंसाने कामिल तथा साहिवे जमाँ कहता था।

अपनी प्रजा के धार्मिक पथ-प्रदर्शक के नाते अकवर ने सर्वप्रथम गुप्त रीति से तथा वाद में काफी विचार-विनिमय के उपरान्त एक पैगम्वर अथवा एक अवतार के अन्य वहुत-से विशेपणों तथा विशेपाधिकारों को भी अपना लिया था। इसने उसकी कट्टर मुसलिम प्रजा में घोर घृणा उत्पन्न कर दी थी और रूढ़िवादी मुल्लाओं के आह्वान पर मुसलमानों के विद्रोह के भय से वह प्राय: रुक जाता था।

४. धार्मिक पथ-प्रदर्शक के रूप में अकवर की पूजा

मैं उसके दरवारी चाटुकार अवुल फजल के लेखों से उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ :

"जव कभी भी, भाग्यानुकूल परिस्थितियों के कारण, ऐसा अवसर आता है कि राष्ट्र सत्य की पूजा करना सीखे तो लोग अपने राजा की ओर देखते हैं और उसे अपना आध्यात्मिक नेता होने की भी आशा करते हैं क्योंकि राजा में, मनुष्यों से भिन्न, ईश्वरीय वुद्धि की आभा विद्यमान रहती है। आधुनिक युग के राजाओं की भी यही दशा है। भविष्यवाणी करने में सिद्धहस्त लोग यह जानते थे कि वादशाह सलामत का कव जन्म हुआ था और तभी से वे आनन्द-पूर्ण प्रत्याशा में प्रतीक्षा कर रहे थे।

"बादशाह सलामत ने कुछ समय के लिए अपने को आवरण से बुद्धिमानों के साथ ढक लिया था मानो वह उनकी आशाओं के प्रति एक बाह्य अथवा अपरिचित व्यक्ति था। किन्तु क्या मनुष्य ईश्वरेच्छा का उल्लंघन कर सकता है? वह अपने विचारों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता है। वह अब राष्ट्र का आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक है। उसने अब वह द्वार खोल दिया है जो उचित मार्ग को ले जाता है और उन सभी लोगों की पिपासा को शान्त करता है जो सत्य की खोज में इधर-उधर भटकते फिरते हैं।

"सभी राष्ट्रों के लोग, वृद्ध तथा युवक, परिचित और अपरिचित, दूरस्थ एवं निकटस्थ अपनी समस्त कठिनाइयों के दूर करने के साधनस्वरूप अपने बादशाह सलामत के समक्ष प्रार्थना करते हैं और अपनी इच्छाओं की पूर्ति हो जाने पर श्रद्धा से अपना मस्तक नत कर देते हैं। बादशाह सलामत के दरबार छोड़ने पर कोई छोटे से छोटा पुरवा अथवा शहर न था जहाँ से पुरुषों तथा स्त्रियों के जनसमूह अपने हाथों में भेंट लेकर तथा अपने अधरों पर प्रार्थना लिए हुए न उमड़ पड़ता हो। ये लोग (सम्राट् के प्रति लिये हुए) अपने व्रतों के प्रभावों का उल्लेख करते अथवा अपने द्वारा की गयी उसकी मूक प्रार्थना के कारण प्राप्त आध्यात्मिक सहायता का विवरण घोषित करते हैं। बादशाह सलामत प्रत्येक का सन्तोषजनक उत्तर देता है और उनकी धार्मिक व्यग्रता की चिकित्सा करता है। एक दिन भी ऐसा नहीं होता है जबकि लोग उसके पास जल के प्याले को उससे फुंकवाने के लिए न लाते हों। बहुत-से बीमार व्यक्ति, जिनकी बीमारियों को अति विख्यात चिकित्सकों ने असाध्य बतलाया था, इस ईश्वरीय साधन द्वारा स्वस्थ हो गये थे।

"नवसिखियों की भरती करने में बादशाह सलामत द्वारा दिखलायी गयी अनिच्छा एवं कठोरता के बावजूद हजारों व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने विश्वास के जामे को अपने कन्धों पर रख लिया था और प्रत्येक ने आशीर्वाद की प्राप्ति के साधनस्वरूप नवीन धर्म को अपना लिया था।" [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १६३-१६५]

इस नवीन सम्प्रदाय के सदस्यों के जीवन सम्बन्धी नियम एवं दीक्षा-संस्कार आईने अकबरी (प्रथम जिल्द, पृ० १६५-१६७) में वर्णित है। अतः यहाँ उनके उद्धरण की आवश्यकता नहीं है।

दरबार में उपस्थित सभी लोगों को सम्राट् को कोरनिश और तस्लीम करनी पड़ती थी किन्तु अकबर के शिष्यों को इनके अतिरिक्त सिज्दा अथवा भूमि

पर अपना मस्तक टेककर साष्टांग प्रणाम भी करना पड़ता था। यह मुसलिम प्रार्थना के समय किया जाने वाला एक कार्य था इसलिए कट्टर मुसलमान इसे केवल ईश्वर (खुदा) के लिए किया जाने वाला धार्मिक संस्कार मानते थे। अकबर को जन-सन्तोष के समक्ष झुकना पड़ा और उसने अत्यन्त बुद्धिमानी से इस साष्टांग प्रणाम को दरबार-खास के अतिरिक्त और सब स्थानों पर करना बन्द कर दिया था। इसका प्रचलित नाम जमीन-बोस अथवा सिंहासन के समक्ष भूमि-चुम्बन था। आदर प्रदर्शित करने की यह निकृष्ट प्रथा प्राचीन फारस तथा हिन्दू रियासतों में भी प्रचलित थी। जैसा कि हम नित्य अपने चारों ओर देखते हैं, धार्मिक नेता इसके एकमात्र अधिकारी हैं। अबुल फजल इसे यह कहकर उचित ठहराता है कि "वे लोग बादशाह सलामत के समक्ष उसी प्रकार साष्टांग प्रणाम करते हैं जैसे कि वे ईश्वर के समक्ष करते हैं क्योंकि राजपद ईश्वरीय शक्ति का चिह्न है।" [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५९]

मुसलमानों के लिए यह प्रथा अत्यन्त घृणास्पद थी और यद्यपि जहाँगीर ने इसे कायम रखा था किन्तु शाहजहाँ को जनता की राय को मानना पड़ा और अपने सिंहासनारूढ़ होने के समय इसे समाप्त कर देना पड़ा।

दर्शनार्थियों अथवा उन लोगों ने जो प्रातःकाल एक मूर्ति की भाँति सम्राट् के मुख का सर्वप्रथम दर्शन किये बिना न तो अपना दैनिक कार्य आरम्भ करते हैं और न सवेरे का नाश्ता ही करते हैं, (उसके पुजारियों का) एक नया सम्प्रदाय बना लिया था और विशेष नियमों का अनुसरण किया था। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० २०७]

शाही भवन के दास भी नाममात्र के लिए सम्राट् के शिष्य बना लिये गये, जैसा कि दरबारी इतिहासज्ञ लिखता है :

"बादशाह सलामत, धार्मिक दृष्टिकोण से, बन्दा अथवा दास नाम से घृणा करते हैं क्योंकि उनका यह विश्वास है कि स्वामित्व ईश्वर के अतिरिक्त और किसी का नहीं है। इसलिए वह इस वर्ग के लोगों को चेला कहकर पुकारता है। हिन्दी में यह शब्द एक स्वामिभक्त शिष्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बादशाह सलामत की अनुकम्पा के कारण उनमें से बहुतों ने सुख का मार्ग चुना है (अर्थात् अकबर के ईश्वरीय धर्म को स्वीकार कर लिया है)। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० २५३]

५. सम्राट् की धार्मिक उपाधियाँ

सम्राट् का लोगों का आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक होने तथा अपने वैयक्तिक

शिष्यों को दीक्षित करने की परम्परा औरंगजेब के शासनकाल में भी प्रचलित रही यद्यपि उस सम्राट् ने अपनी कट्टर धर्मपरायणता, योगी सदृश कठोर जीवन तथा चमत्कारिक शक्ति के द्वारा लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। यही कारण था कि लोग उसे आलमगीर, जिन्दा पीर अर्थात् जीवित यति आलमगीर कहा करते थे। १६९० ई० में जब सम्राट् कृष्णा नदी के तट पर बद्री के पास खेमा डाले हुए पड़ा था, मीरतुजुक, सलावतखाँ, ने एक ऐसे व्यक्ति को उसके समक्ष न्यायालय में प्रस्तुत किया जिसने बादशाह से कहा कि मैं बंगाल के दूरस्थ प्रदेश से बादशाह सलामत का शिष्य होने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। इस पर औरंगजेब एक व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसा और खान को लगभग सौ रुपये नकद और चाँदी तथा सोने के कुछ टुकड़ों को उसे भेंट करने के लिए दिया। उसने उससे यह भी कहा कि "उससे कह दो कि जिस अनुकम्पा की वस्तुतः वह मुझ से आशा कर रहा था वह यही है।" उस व्यक्ति ने रुपया फेंक दिया और स्वयं नदी में कूद पड़ा। दरबार के कर्मचारियों ने उसे बचा लिया। सम्राट् ने उसे सरहिन्द के एक प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान के पास इस प्रार्थना के साथ भिजवाने का आदेश दिया कि वह उसे अपना शिष्य बना ले। [मासीरे आलमगीरी, पृ० ३३३-३३४]

सम्राट् के प्रति दिखलायी गयी धार्मिक श्रद्धा के प्रतीक-स्वरूप उसके पुत्र तथा उसकी प्रजा सम्पूर्ण मुगलकाल में पैगम्बरों के योग्य उपाधियों का प्रयोग कर उसे सम्बोधित करते थे। अर्थात् वे सम्राट् को 'किब्ला व काबा' अथवा मक्का के काले मन्दिर व जेरूसलम के सुलेमान के मन्दिर की भाँति वह केन्द्र-बिन्दु जिसके चारों ओर एक भक्त प्रार्थना के समय घूमकर चक्कर लगाता है, कुतुब अथवा धर्म का ध्रुवतारा तथा पीर व मुर्शिदे आलम या अलामिया अथवा दुजहाँ अथवा दीन या दुनिया अर्थात् संसार तथा उसके निवासियों अथवा इस लोक और परलोक का आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक तथा शिक्षक कहकर सम्बोधित करते थे।

अकबर का अनुकरण कर उसके समकालीन बीजापुरी सुलतान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने जगद्गुरु की उपाधि धारण की थी। साधारणतया लोगों का यह कहना था कि वह हिन्दू धर्म एवं उसकी प्रथाओं की ओर झुका हुआ था, दूध पर ही जीवन-निर्वाह करता था और अपनी राजधानी के नगर दुर्ग की भीतरी खाई के पश्चिमी किनारे पर एक छोटे-से मन्दिर में हिन्दू देवता 'नरसोबा' की पूजा किया करता था। उसके मुसलिम इतिहासज्ञ ने इस आरोप

का कि उसने इस्लाम धर्म त्याग दिया था, खण्डन करने का प्रयास किया है। [बसातीनुस सलातीन, पृ० २५९-२६०, २६४] किन्तु वह स्वीकार करता है कि साधारण बोलचाल में वह उसे जगद्गुरु कहा करता था। [बाम्बे गजेटियर, जिल्द २३, पृ० ६३६ में भी इसका उल्लेख है]

जैसा कि हम लोगों ने देखा है, मुग़ल सम्राट् भी जगद्गुरु अथवा संसार के सर्वश्रेष्ठ धार्मिक प्रधान होने का दावा करते थे। किन्तु ये धार्मिक गुरु विवाहित थे और यदि उनकी पटरानी उनकी आध्यात्मिक उपाधियों में भाग नहीं लेती थीं तो यह असंगत हो जाता था। इस प्रकार हमें ज्ञात है कि जहाँगीर की पत्नी, जो जोधपुर की राजकुमारी और शाहजहाँ की माता थी, जगत-गोसाइनीं अथवा विश्व की स्त्री-धर्मगुरु कहलाती थी। [तुजुके जहाँगीरी, पृ० ५]

मुग़ल बादशाहों के इस बात के बहुत-से ऐतिहासिक सादृश्य मिलते हैं। अली-वंश के पक्ष में एक धार्मिक आन्दोलन के आधार पर बगदाद के अब्बासी खलीफा गद्दी पर बैठे थे और सब ने जिस प्रकार पूर्ण रूप से अपनी प्रजा की राजनीतिक वफादारी का दावा किया था उसी प्रकार पैगम्बर के वंश से अपनी उत्पत्ति होने के कारण मुसलिम-जगत् के आध्यात्मिक सम्मान का भी दावा किया था।

इसी प्रकार फारस के सफवी-वंश ने भी सर्वप्रथम धार्मिक नेता होने का दिखावा कर एक विशेष प्रभाव और अनुयायियों का एक प्रबल दल उत्पन्न कर लिया था। तत्पश्चात् उन्होंने आसानी से उस देश का राजसिंहासन भी हस्तगत कर लिया था। सिक्खों के गुरु भी आरम्भ में साधारण तौर पर धार्मिक पथ-प्रदर्शक ही थे और अन्त में जनता के शासक और योद्धा हुए। आज भी वे अपने अनुयायियों द्वारा 'दस बादशाह' कहे जाते हैं।

६. सुन्नी धार्मिक कट्टरता के नायक के रूप में औरंगजेब और शियाओं का अवदमन

अपनी प्रजा के सीधे तथा वैयक्तिक धार्मिक शिक्षक अथवा जगद्गुरु अथवा एक उत्प्रेरित (inspired) तथा दैवी शक्ति दिखलाने वाले फकीर के पद, जिसके लिए अकबर और इब्राहीम आदिलशाह लालायित थे, तथा सिंहासनारूढ़ एक दर्वेश की उपाधि अथवा जिन्दा फकीर, जिस नाम से औरंगजेब को पुकारा जाना अच्छा लगता था, के अतिरिक्त मुग़ल सम्राट् वैधानिक विधि के अनुसार प्रभावशाली धर्म की कार्यकारिणी के प्रधान भी थे। तत्कालीन खलीफा होने के कारण कट्टर धर्म अर्थात् इस्लाम के सुन्नी सम्प्रदाय को लागू करना उसका

कर्तव्य था। राजनीतिक विचारधाराओं तथा उससे अधिक सहिष्णु उसके पूर्वजों ने (फारस तथा मध्य एशिया दोनों के) औरंगजेब को बहुत-से शियाओं की प्रतिभा का उपयोग करने के लिए बाध्य किया था किन्तु उनका भी भाग्य अच्छा नहीं था। अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में अपने भाइयों के साथ हुए उत्तराधिकार के युद्ध में वह मीर जुमला नामक एक शिया का अत्यन्त ऋणी था किन्तु वृद्धावस्था में उसके धार्मिक विचार अत्यन्त संकुचित हो गये थे जिसके फलस्वरूप इस सम्प्रदाय को उसके दरबार में कोई स्थान नहीं रह गया था। इस सम्राट् के पत्रों में तथा उसके शासनकाल के सरकारी इतिहास में भी शिया विरोधी भावनाओं के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं।

उसकी दृष्टि में शिया नास्तिक (रफीजी) थे और वह साधारणतया फारसियों को मृतक पशुओं का मांस खाने वाला राक्षस कहा करता था (ईरानी गुले-बयाबानी) किन्तु उसकी यह भावना सफवी शाह के प्रति उसकी राजनीतिक घृणा के कारण हो सकती है। अपने एक पत्र में उसने एक अमीर द्वारा रफीजीकुश अथवा शियाहन्ता नामक कटार के भेंट के अवसर पर अपनी प्रसन्नता का उल्लेख किया है। साथ ही, उसी आकार और नाम के कुछ और खंजरों को अपने लिए तैयार करने के आदेश का भी उल्लेख है। [रुक्काते आलमगीरी, पृ० १३३]

इसका परिणाम यह हुआ कि उसके शिया अधिकारियों को अपनी सुरक्षा के लिए छलपूर्ण व्यवहार का आश्रय लेना पड़ा।

बदख्शां के राजा का पौत्र सरबुलन्दखां १६७२ ई० से १६७९ ई० तक औरंगजेब का द्वितीय बख्शी था। एक दिन बादशाह सलामत ने यह शिकायत की कि सरबुलन्द के शब्दों में शिया सम्प्रदाय की कुछ गन्ध है। इस पर खान ने उत्तर दिया कि "हां, बुखारा के बहुत-से सैयद इस सम्प्रदाय के हैं। मेरे भाषण में उनसे मेरे पहले के सम्पर्क के प्रभावों के अब भी चिह्न विद्यमान हैं किन्तु मैं इस धर्म का पक्का अनुयायी नहीं हूँ। दुर्भाग्य से, यद्यपि मैंने अपने को इस धर्म से अलग कर लिया है किन्तु फिर भी उसे पूरा नहीं कर सका हूँ।" इसी स्रोत के आधार पर हमें यह भी विदित है कि यही सरबुलन्दखां फारसियों का पक्षपात करता था और उच्च पदों पर उनकी नियुक्ति के लिए बादशाह से सिफारिश किया करता था। यद्यपि औरंगजेब इस जाति पर विश्वास नहीं करता था किन्तु फिर भी लेखाकर्म और वित्त-व्यवस्था में उनकी अद्वितीय योग्यता के कारण वह उन्हें नियुक्त करने के लिए बाध्य था। [हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद ३८ और ३९]

औरंगजेब के दरबार में शिया सम्प्रदाय के अमीरों की स्थिति उनके स्वामी की धार्मिक कट्टरता के कारण पर्याप्त शोचनीय थी। साथ ही, सुन्नी सम्प्रदाय की विभिन्न जातियों के तूरानी अथवा अफगानी अमीरों के ईर्ष्यालु विरोध के कारण उनकी स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो गयी थी। अठारहवीं शताब्दी में मुग़ल दरबार में फारसी और तुर्की दलों अथवा ईरानियों और तूरानियों का उसी प्रकार स्पष्ट विभाजन हो गया था जिस प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी में बहमनी-वंश के सुलतानों के अधीन उनका विभाजन हुआ था और जिसका परिणाम तूरानियों के लिए अत्यन्त घातक हुआ। बर्नियर तथा मनुची जैसे यूरोपियन यात्री भी दिल्ली की शाही नौकरी में और विशेष रूप से उस समय जब फारस से एक दूत के आने की आशा की जाती थी, इन दोनों जातियों के मध्य स्वार्थ सम्बन्धी शत्रुता तथा नीति सम्बन्धी स्पष्ट भेदभाव को जाने बिना नहीं रह सके। [**स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ५०, ५३; बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० १४६-१५३**] वैवाहिक सम्बन्ध भी इस साम्प्रदायिक झगड़े को शान्त न कर सका क्योंकि शिया लोग स्वाभाविक रूप से अपने ही क्षेत्र के अन्तर्गत विवाह करना चाहते थे और सुन्नी लोग शिया लड़कियों से विवाह न करने के लिए प्रसिद्ध थे। इसी सम्बन्ध में हमीदुद्दीनखाँ कृत अहकाम से हमें ज्ञात होता है कि रुहुल्लाखाँ प्रथम ने जो १६८२ से १६९२ ई० तक औरंगजेब का वेतनाध्यक्ष था, अपनी मृत्यु के समय उत्तराधिकार पत्र में सुन्नी धर्म के लिए शिया धर्म के त्याग का उल्लेख करते हुए सम्राट् से अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह सुन्नियों से करने की प्रार्थना की थी। यद्यपि इस रुहुल्लाखाँ का सम्बन्ध बहुत ऊँचा था, अर्थात् उसकी माता सम्राट् की माता की बहन थी, फिर भी एक साधारण अमीर सियादतखाँ ने उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया था क्योंकि उसे सन्देह था कि उसकी लड़की भी सुन्नी धर्म को न मानकर अपने पैतृक धर्म अर्थात् शिया मत को ही मानती है। [हमीदुद्दीन कृत अहकाम, अनुच्छेद ६६]

सम्राट् को भी रुहुल्लाखाँ द्वारा सुन्नी धर्म को ग्रहण करने की सच्चाई में शक था और यह शंका सत्य भी सिद्ध हुई। खान ने अपनी मृत्युशय्या पर से सम्राट् से अपने शव को कफनाने तथा धोने के लिए एक शाही सुन्नी काजी को भेजने की प्रार्थना की थी। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् जब काजी उनके घर पहुँचा तो उसे एक ऐसा पत्र दिखलाया गया जिसमें मृत व्यक्ति ने उनसे अपने दफनाने का प्रबन्ध करने का भार अपने विश्वस्त नौकर आग़ा बेग को सौंपने की प्रार्थना की थी। काजी यह जानता था कि यह व्यक्ति एक शिया

धर्मज्ञ और पुजारी है और एक कथित नौकर है। उसने इस घटना के नये रूप से सम्राट् को अवगत करा दिया। तब औरंगजेब ने क्रोधपूर्ण शब्दों में इसका उत्तर दिया :

"काजी उसके घर से चले आये। दिवंगत खान ने अपने जीवन में धोखा देने की आदत डाल रखी थी और अपनी मृत्यु के समय भी उसने उसी अप्रिय पाप का अनुसरण किया। किसी व्यक्ति के धर्म से मेरा क्या सम्बन्ध ?"

किन्तु शिया लोगों को अपना धर्म छिपाने के बहुत-से कारण थे। औरंगजेब के एक पत्र को जब हम पढ़ते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि एक समय वह लाहौर के वेतनाध्यक्ष और दो नाजिमों के शिया होने पर इतना बौखला गया था कि उसने फौरन ही प्रथम को कहीं दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करने का आदेश दिया। [कालीमात-ते, पृ० १६अ] अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों में उसने अमीर शिया लोगों की मृत्यु के पश्चात् उनकी अस्थियों को चुपचाप कर्बला[1] और मश्शाद में दफनाने के लिए भेजने की प्रथा पर आपत्ति की थी। इसे वह अन्धविश्वास मानता था। [कालीमात-ते, पृ० १२अ] यद्यपि वह स्वयं पत्थर पर पैगम्बर के पद-चिह्नों एवं उनके बालों (आसारे-शरीफ) को सजाकर मूर्ति-पूजा का स्वांग रचा करता था।

७. मुसलिम भारत में शिक्षा

मुग़लकालीन भारत में मध्यकालीन यूरोप की भाँति शिक्षा धर्म का एक अंग थी और राज्य का शिक्षा पर होने वाला व्यय दान मद से सदाव्रत बाँटने के लिए नियुक्त शाही अधिकारी (सदर-उस-सद्र) के हाथों से अदा किया

---

[1] औरंगजेब के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व ३ नवम्बर, १६७२ ई० को प्रथम तीन खलीफाओं को बुरा-भला कहने के कारण उस समय के एक पुराने नौकर का सिर काट दिया गया था। [मासीरे आलमगीरी, पृ० १२०] सम्राट् ने किसी भी नव-नियुक्त अमीर की उपाधि में 'अली' शब्द के प्रयोग करने पर आपत्ति की थी। [मासीरे आलमगीरी, पृ० ३१३] एक पत्र में वह एक कहानी का वर्णन करता है जिसमें किस प्रकार एक सुन्नी ने इस्फान में एक शिया को मार डाला और फिर अपनी सुरक्षा के लिए भाग गया। [आई० ओ० एल०, १३४४फ, ३४ब] वह आदेश देता है कि भारत में आये हुए ईरानी पश्चिमी समुद्र-तट के किसी भी बन्दरगाह पर नियुक्त न किये जायें। [कालीमात-ते, पृ० १४१अ] औरंगजेब के शासनकाल में प्रथम तीन खलीफाओं की निन्दा करने के कारण शियाओं को मृत्यु-दण्ड देने के बहुत-से उदाहरण तारीखे काश्मीरी आजमी में दिये हुए हैं।

जाता था। अपार ग़ैर-मुसलिम जनता इस राज्य-दान के क्षेत्र के बाहर थी। हमें औरंगजेब के शासनकाल के प्रारम्भिक समय का एक फरमान प्राप्त है जिसमें इस प्रकार की व्यवस्था का वर्णन किया गया है। वह गुजरात के दीवान को आदेश देता है कि प्रति वर्ष राज्य की ओर से अध्यापक नियुक्त किये जायें और सूबे के सदर की संस्तुति (recommendation) के अनुसार तथा अध्यापक की मुहर से तस्दीक होकर छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाये। इस धन का भुगतान जन-कोष से किया जाय। इसके लिए अनुदान बहुत कम था क्योंकि हमें केवल तीन ही मौलवियों—एक अहमदाबाद, दूसरा पाटन, तथा तीसरा सूरत—की नियुक्ति एवं पैंतालीस छात्रों के ही वृत्ति पाने का उल्लेख मिलता है। [**मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २५८**][२]

मठों (खानकों) को जब साधारण दाताओं से दान नहीं मिलता था तो वे शासन की ओर से अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त करते थे और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे धार्मिक एवं साधारण शिक्षा देने में ईसाई समाज के बड़े गिरिजाघरों का सा कार्य करें। दिल्ली की सरकार सरहिन्द, सियालकोट तथा कुछ अन्य नगरों के प्रसिद्ध विद्वानों के परिवारों को भत्ता देती थी, जो कि अपने घरों में विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। किन्तु जब इन परिवारों से विद्वान व्यक्तियों का निकलना बन्द हो गया, तो इन स्कूलों का अन्त हो गया।

हम दरबार के कवियों से सम्बन्धित विषयों की चर्चा कर मुगल भारत के शिक्षा सम्बन्धी अपने विवरण को समाप्त कर सकते हैं। ये ईरान में पैदा हुए ईरानी थे। औरंगजेब सदृश कट्टर सदाचारी सम्राट् के अतिरिक्त वे अन्य सभी सम्राटों से अपने गीतों के लिए उचित सहायता पाते एवं भलीभाँति पुरस्कृत होते थे। ये गीत विजय-समारोह, शाही विवाह, राज्याभिषेक, जन्म-दिवस तथा दरबार के दूसरे उत्सवों को मनाने तथा सम्राट् की प्रिय इमारतों एवं सिंहासनों के हेतु अभिलेख (खुतबा) तैयार करने के लिए लिखे जाते थे। इन कवियों में से एक कवि को चार पंक्तियों के एक चुटकुले के

२ मोरक्को में शिक्षा पर राज्य-व्यय कुछ उलमाओं के भत्ते तक ही सीमित था। जनस्वास्थ्य के लिए कुछ भी नहीं किया जाता था। किन्हीं शहरों में कुछ अस्पताल अवश्य थे जहाँ कुछ इने-गिने दुखी जीव कूड़े-करकट में पड़े रहते थे जिन्हें भूख से मरने से बचाने भर के निमित्त 'हबस' तथा जनता से पर्याप्त दान मिल जाया करता था। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ३, पृ० १७०**] उस समय मिस्र में अल अजहर नाम का एक बहुत बड़ा कालेज था।

लिए दस हजार की एक थैली मिली थी। इसमें उसने एक सिखाये हुए तेंदुए द्वारा सम्राट् जहाँगीर के समक्ष एक जंगली भैंसे को मार गिराने का वर्णन किया था। [तजकीरे सरखश]

सत्रहवीं शताब्दी में ये कवि दरबार के हकीमों से जन्म अथवा विवाह द्वारा अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। ये हकीम अधिकतर ईरानी थे। ईरान के शाह के यहाँ से भागा हुआ हकीम दिल्ली दरबार में अवश्य हार्दिक स्वागत पाता था। [अब्दुल हमीद कृत पादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३६७-३६८; आलमगीर-नामा, पृ० १४५]

इन ईरानी कवियों और चिकित्सकों के परिवारों की स्त्रियाँ शिक्षित और योग्य थीं। वे अन्तःपुर में राजकुमारियों को पढ़ाने तथा शाही दान को स्त्रियों में वितरित करने के लिए नियुक्त थीं। स्त्रियों में दान वितरण करने का अधिकारी होने के नाते उन्हें 'सदर उन्निसा' अथवा स्त्रियों के लिए सदाव्रत करने के लिए नियुक्त अधिकारी कहा जाता था। सम्राज्ञी मुमताजमहल की मित्र एवं उसकी लड़कियों की अध्यक्षा सितिउन्निसा का जीवन शाहजहाँ के वैभवपूर्ण समय के अन्तःपुर की संस्कृति का एक आकर्षक चित्र प्रस्तुत करता है। [स्टडीज इन मुग़ल इण्डिया, पृ० २१-२६]

अध्याय ६

सामन्तशाही (Aristocracy) की स्थिति

१. अमीरों की सम्पत्ति को जब्त करना

मुग़ल-साम्राज्य में प्रचलित एक विचित्र तत्कालीन प्रथा को देखकर यूरोपीय यात्री दंग रह गये थे अर्थात् इस समय अमीरों में वंशानुगत सम्पत्ति का अत्यन्त अभाव था। सन् १६०८ में जैसा कि कप्तान हाकिन्स ने कहा था :

"अपने अमीरों के कोष पर, उनके मर जाने के पश्चात्, अधिकार कर लेने और उनके बच्चों को स्वेच्छानुसार कुछ दे देने की तत्कालीन मुग़ल सम्राट् के यहाँ की प्रथा है। किन्तु साधारणतया सम्राट् उन बच्चों का उनके पिता की भूमि पर अधिकार मानकर और उसे उनमें बाँटकर उनके साथ अच्छा व्यवहार करता है। सबसे बड़े पुत्र की वह बड़ी प्रतिष्ठा करता है जो आगे चलकर अपने पिता की समस्त उपाधियाँ प्राप्त कर लेता है।" [पर्चे, जिल्द ३, पृ० ३४]

यहाँ हमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि अधीनस्थ राजाओं तथा जमींदारों के अतिरिक्त मुग़लकालीन भारत में कोई दूसरा वंशानुगत भू-स्वामी नहीं था। सभी अमीर राज्य के नौकर थे और अपनी नौकरी की अवधि तक सेवा के बदले में मिली हुई जागीर पर अपना अधिकार रखते थे। उनके मर जाने पर उनकी भूमि स्वतः राज्य के पास चली जाती थी। किन्तु उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति क्यों जब्त कर ली जाती थी ?

बर्नियर इस प्रथा को बर्बर कहकर उसकी निन्दा करता है और उसके परिणामों का इस प्रकार वर्णन करता है :

"जो लोग राजा के यहाँ नौकरी करते समय मर जाते हैं उनकी सम्पत्ति का राजा के स्वतः एकमात्र उत्तराधिकारी होने की बर्बर और प्राचीन प्रथा इस देश में प्रचलित है।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० १६३]

"सम्पूर्ण मुग़ल-साम्राज्य में भूमि सम्राट् की समझी जाती है अतः यह किसी सरदार, मार्क्विस (marquisates) (राजदरबारी) अथवा ड्यूक (duchies) की रियासत नहीं हो सकती है। राजकीय अनुदान में केवल पेंशन ही सम्मिलित है—वह चाहे भूमि (जागीर) के रूप में हो अथवा वेतन (तनख्वाह)

के रूप में हो। इसे सम्राट् स्वेच्छा से देता है, स्वेच्छा से इसमें वृद्धि करता है और स्वेच्छा से ही छीन भी लेता है। हिन्दुस्तान के अमीर न तो भू-स्वामी हो सकते हैं और न फ्रांस के अमीरों की भांति स्वतन्त्र रूप से भूमि-कर ही प्राप्त कर सकते हैं। पेंशन ही उनकी एकमात्र आय है जिसे सम्राट् अपनी स्वेच्छा से स्वीकृत करता अथवा छीन लेता है। इस पेंशन से वंचित हो जाने पर ये अत्यन्त नगण्य हो जाते हैं।" [वर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० ५, ६५]

"उनकी सभी सम्पत्ति का सम्राट् ही उत्तराधिकारी होता है अतः कोई भी परिवार अधिक समय तक अपनी प्रतिष्ठा नहीं बनाये रह सकता है। अमीर की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र उनकी प्रतिष्ठा का अन्त हो जाता है। उनके पुत्रों अथवा कम से कम उनके पौत्रों की दशा साधारणतया भिखमंगों की सी हो जाती है और वे अश्वारोहियों की सेना में एक साधारण सवार के रूप में भरती होने तक के लिए विवश हो जाते हैं। फिर भी सम्राट् आमतौर से विधवाओं को और कभी-कभी परिवार के लोगों को थोड़ी-सी पेंशन दे देता है और यदि अमीर दीर्घायु है तो वह राजकीय अनुग्रह द्वारा अपने बच्चों की तरक्की कर सकता है।" [वर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २११-२१२]

औरंगजेब के पत्रों में हमें निम्नलिखित कुछ ऐसे अंश मिलते हैं जो उस समय की वास्तविक परिस्थिति से अपरिचित पाठकों को आश्चर्यचकित कर सकते हैं। "अफगानिस्तान का गवर्नर अमीरखां (जो बीस वर्ष तक गवर्नर के पद पर रहा) मर गया है। मुझे भी मृत्यु निश्चित है। लाहौर के दीवान को मृतक की सम्पत्ति को अत्यन्त परिश्रम तथा यत्न से कुर्क करने के लिए लिखो जिससे छोटी-बड़ी कोई भी वस्तु—यहां तक कि घास का एक तिनका भी—छूटने न पाये। बाह्य स्रोतों से सूचना प्राप्त कर लो और किसी भी स्थान पर प्राप्त प्रत्येक वस्तु को अपने अधिकार में कर लो क्योंकि ईश्वर के दासों (सम्राटों) का यह उचित अधिकार है।" [रुक्काते आलमगीरी, पत्र ६६]

राज्य में बैतुलमाल नाम का एक स्थायी विभाग था जिसमें उत्तराधिकारी छोड़े बिना मरे हुए व्यक्तियों की सम्पत्ति जब्त की जाती थी। राज्य के अमीरों एवं अधिकारियों की सम्पत्ति भी उनकी मृत्यु के पश्चात् जब्त कर ली जाती थी और इसी में रखी जाती थी।[1]

---

[1] हेदायेतुल कवायद, तथा मीराते अहमदी, जिल्द २, पृ० १८५ के अनुसार अन्तिम प्रकार की सम्पत्तियों को अमवाल कहते हैं और इस प्रकार इस विभाग को बैतुलमाल का अमवाल कहा जाता है।

२. मृत्यु के पश्चात् व्यक्तिगत सम्पत्ति की जब्ती का कारण

अमीरों की मृत्यु के पश्चात् उनकी सम्पत्ति के प्रत्यक्ष अपहरण का निर्दिष्ट कारण यह था कि सभी अधिकारी पहले ही धन तथा वस्तुओं को लेकर अथवा अपनी सेवाओं द्वारा अर्जित धन तथा सम्राट् के निमित्त उनके द्वारा भरती किये लोगों के सामान तथा संख्या के आधार पर प्राप्त धन के विरुद्ध इन अग्रिम धनों को दिखाकर राज्य का हिसाब किये बिना ही अपनी जागीर की आय को प्राप्त कर लेने के कारण शासन के ऋणी रहते थे। इस प्रकार के सैनिक हिसाब को समझने में देर लगती थी और किसी भी अधिकारी के जीवनकाल में वह कठिनाई से ही पूरा हो पाता था। इसके अतिरिक्त एक सेनानायक द्वारा अपने आकस्मिक खर्चों को रजिस्टर (दाग वा ताशीहा) में चढ़ा लेने के पश्चात् ही उसके द्वारा अर्जित वेतन का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता था। साथ ही घोड़ों को मंजूरी के पश्चात् उन्हें दागा जाना व वर्णनात्मक नामावली (चेहरा) द्वारा उनके अधिकारियों की पहचान भी आवश्यक थी। ऐसा करने में समय लगता था और शान्ति के समय के अतिरिक्त यह कार्य कभी भी सन्तोषजनक ढंग से नहीं किया जाता था। हम लोगों को प्रायः ऐसे अधिकारियों के बारे में पढ़ने का अवसर मिलता है जिन्हें 'दाग' क्षम्य थी और जिन्हें अति-आवश्यकता अथवा कष्ट के समय अपनी सेना का निरीक्षण कराये बिना अथवा यथारीति रजिस्टर तैयार किये बिना ही वेतन का भुगतान कर दिया जाता था।

विशेष रूप से उस युग में जबकि प्रायः युद्ध हुआ करता था, स्वभावतः सैन्य-लेखा बड़ी बुरी तरह से रखा जाता था और इसे लिखने तथा इसकी जाँच करने में वर्षों लग जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत प्रथम सिक्ख युद्ध में भाग लेने वाले अंग्रेज सिपाहियों का वेतन अधिक समय तक समायोजित नहीं हो सका था और उन्हें केवल तीन या चार वर्ष के पश्चात् ही पूरा भुगतान किया जा सका था। [बैंक्राफ्ट कृत फ्राम रिक्रूट टू स्टाफ सार्जेण्ट]

मुगलकालीन भारत में यह दशा और भी खराब थी। सैनिक को वेतन देने वाले कार्यालय के क्लर्कों की बेईमानी और उनका विलम्बीपन सैनिक-वर्ग के लिए अत्यन्त निराशाजनक था। बंगाल में १६५९ से १६६५ ई० तक मीर जुमला और शाइस्ताखाँ के अधीन शिहाबुद्दीन तालिश नामक एक अधिकारी सैनिकों द्वारा इस कारण उठाये गये दुखों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। वह लिखता है कि "मुझे पूर्ण आशा है कि चोरी करने वाले क्लर्कों के अत्याचारों द्वारा कुचले

जाने तथा परेशान किये जाने के तथ्य तथा सैन्य-वर्ग के कष्ट को कोई व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक स्पष्ट रूप से सम्राट् से कह देगा। ...हिन्दू क्लर्क तथा पिनकी (drowsy) लेखक सेना के साथ अग्निपूजक दासों तथा एक यहूदी के कुत्ते से भी बुरा व्यवहार करते हैं।" इसके पश्चात् इस बात का विशद वर्णन है कि वृत्ति पाने वालों को अपनी वृत्ति पाने के पूर्व कचहरी में किस प्रकार रिश्वतें देकर अपने को लुटवाना पड़ता था। **[बोडालियन, मूल पांडुलिपि, पृ० ५८६, फोलियो १२९ब-१३१अ]**

निम्न कहानी द्वारा मनुची सैनिकों का वेतन देने वाले कार्यालय के क्लर्कों की शक्ति एवं धृष्टता का उदाहरण प्रस्तुत करता है :

"शाहजहाँ के समय में एक सैनिक अपना वेतन लेने गया। व्यस्त होने के कारण सम्बन्धित अधिकारी उसकी ओर तत्काल ध्यान न दे सका। अतएव उस सैनिक ने क्रुद्ध होकर उसे अपनी तलवार से उसके दाँतों को तोड़ देने की धमकी दी। अधिकारी ने उससे कुछ न कहा और उसका वेतन दे दिया। ...कुटिल लेखक ने उस सैनिक से अपने को दी गयी धमकी का बदला लेने के लिए उस पुस्तक में जिसमें सैनिकों के बारे में पूर्ण विवरण लिखा होता था, यह लिख दिया कि उसके (सैनिक के) सामने के दो दाँत टूट चुके हैं। कुछ महीने बीत गये और वही सैनिक पुनः वेतन लेने के लिए वहाँ आया। लिपिक ने पुस्तक खोली जिसमें दिये गये विवरण के अनुसार वह सैनिक वेतन पाने का अधिकारी नहीं था, क्योंकि विवरण-पुस्तिका में लिखित दाँतों की अपेक्षा उसके पास सामने के दो दाँत अधिक थे। सैनिक हतबुद्धि हो गया। अन्त में उसे विवश होकर लेखानुकूल सामने के दो दाँतों को निकलवाना पड़ा और तभी उसको उसका वेतन मिल सका।" **[स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ४४९]**

इस प्रकार सैन्य-लेखा कभी भी साफ नहीं हो पाता था और किसी भी अधिकारी को राज्य द्वारा दिया जाने वाला धन और ऋण उसके जीवनकाल में कभी भी निश्चित नहीं हो पाता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् भी यह बड़ी कठिनाई से निश्चित हो पाता था। इस परिस्थिति में सम्राट् के लिए सबसे अच्छा उपाय यही था कि वह मृतक की सम्पत्ति उसकी मृत्यु के पश्चात् तुरन्त ही जब्त कर ले और तब राजकीय कोष द्वारा उसके हिसाब-किताब को निश्चित करने की ओर ध्यान दे।

महाराज जसवन्तसिंह पर राज्य का बहुत भारी ऋण था और १६७० ई० में जब वे दूसरी बार गुजरात के सूबेदार नियुक्त हुए तो यह शर्त लगा दी गयी

थी कि पूरा ऋण अदा न हो जाने तक प्रति वर्ष वे राज्य को दो लाख रुपया देते रहेंगे। **[मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २७७]**

सन् १६७८ में सम्राट् को बंगाल के दीवान से ज्ञात हुआ कि वहाँ का वाइसराय शाइस्ताखाँ १२ महीनों में राजकोष से अपने वेतन से एक करोड़ बत्तीस लाख रुपया अधिक निकाल चुका है। यह धन उस पर ऋण के रूप में दिखाया गया था। **[मासीरे आलमगीरी, पृ० १७०]** १६८३ ई० में दीवान ने शाइस्ताखाँ को यह सूचना दी कि सम्राट् ने आसाम के आक्रमण में व्यय हुई ५८ लाख रुपये की राशि को उससे (शाइस्ताखाँ से) वसूल करने का आदेश दिया है। अमीर ने इसके उत्तर में बतलाया कि केवल सात लाख रुपया ही इस प्रकार खर्च हुआ था और शेष धन बंगाल के लिए ही अग्रिम धन था। तत्पश्चात् सम्राट् ने अपने आदेश में संशोधन किया और केवल सात लाख रुपया ही वसूल करने का आदेश दिया। **[मासीरे आलमगीरी, पृ० २३४]**

३. अमीरों की सम्पत्ति की जब्ती के बारे में सम्राट् के अध्यादेश

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि राज्य के प्रत्येक नौकर की मृत्यु के पश्चात् ही उसकी सम्पत्ति कम से कम अस्थायी रूप से राज्य द्वारा जब्त कर लेने की मुग़ल-शासन की साधारण प्रथा थी। यद्यपि प्रयोग में यह अपहरण था किन्तु जहाँ तक सिद्धान्त का प्रश्न था यह इतना निर्लज्जतापूर्वक अनैतिक न था। सम्राट् किसी भी मृत प्रजा की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने का कभी भी दावा न करता था जब तक कि वह किसी सन्तान अथवा वैधानिक उत्तराधिकारी को छोड़े बिना नहीं मरता था। (और इस पर भी सिद्धान्ततः वह सम्पत्ति सम्राट् की न होकर मुसलिम सम्प्रदाय की होती थी।) वे केवल मृत व्यक्ति से अपने देय धन के भुगतान को निश्चित कराना चाहते थे जो कि उनके नौकर थे और जिन्होंने उनसे अग्रिम धन तथा ऋण लिये थे।

सन् १६०५ में अपने राज्यारोहण के अवसर पर जहाँगीर द्वारा दिये गये बारह अध्यादेशों में एक अध्यादेश इस आशय का था—"मेरे साम्राज्य के किसी भी भाग में जब कोई नास्तिक अथवा मुसलमान मरता था तो उसकी जायदाद तथा सम्पत्ति किसी के द्वारा बिना हस्तक्षेप किये ही उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त होती थी। जब कोई उत्तराधिकारी नहीं होता था तो सम्पत्ति का कार्यभार ग्रहण करने तथा इसे इस्लाम के कानून के अनुसार मसजिद तथा सराय बनवाने, टूटे हुए पुलों की मरम्मत करवाने तथा तालाब और कुआँ खुदवाने में व्यय करने के लिए अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।"

[तुजुके जहांगीरी, पृ० ४] किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि उसने राज्य के मरे हुए नौकरों, विशेष रूप से राज-कोष में चालू हिसाब-किताब रखने वाले नौकरों, की सम्पत्ति को जब्त करने की प्रथा को छोड़ दिया था अथवा नहीं। २४ जुलाई, १६६६ ई० को औरंगजेब द्वारा जारी किया गया इस विषय से सम्बन्धित फरमान इससे अधिक स्पष्ट है। वह प्रान्तीय दीवानों को आदेश देता है कि "जब कभी भी बिना उत्तराधिकारी छोड़े कोई राजकीय कर्मचारी मरता है तथा राजकोष का उसके ऊपर उसके द्वारा लिये गये अग्रिम धन (advances) (मुतालिबा) का कोई हिसाब-किताब शेष नहीं है तो बैतुलमाल के भाण्डागारिक (store-keeper) के पास उसकी सम्पत्ति जमा कर दो। यदि राज्य का उस पर कोई ऋण नहीं है तो केवल उतना ही धन ले लो और शेष सम्पत्ति बैतुलमाल में जमा कर दो। यदि उसका कोई उत्तराधिकारी हो तो उसकी मृत्यु के तीन दिन पश्चात् उसकी सम्पत्ति को कुर्क करवा लो। यदि उसकी सम्पत्ति राज्य द्वारा दिये गये ऋण से अधिक है तो केवल उतना ही धन ले लो और उसके उत्तराधिकारी को वैधानिक रूप से अपना अधिकार स्थापित कर लेने पर शेष उसे लौटा दो। यदि राज्य का मृत व्यक्ति पर कोई ऋण नहीं है तो उसके उत्तराधिकारी को, वैधानिक प्रमाण मिल जाने पर, उसकी सारी सम्पत्ति दे दो।" [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६६]

यह एक अत्यन्त यथार्थ और उचित नियम है। फिर भी मनुची का कथन है कि औरंगजेब ने कभी भी इसका पालन नहीं किया था। इस सम्राट् के सम्बन्ध में उसका कथन है कि

"उसके इस प्रकार की घोषणा करने पर भी कि मृत व्यक्तियों की सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं है, वह अपने सेनानायकों, अधिकारियों तथा दूसरे कर्मचारियों की प्रत्येक वस्तु को उनके मरने के पश्चात् जब्त कर लिया करता है। ऐसा होते हुए भी इस बहाने से कि वे उसके अधिकारी हैं और उन पर राज्य का ऋण है, वह उनकी प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार कर लेता है। यदि उसकी विधवा स्त्री होती है तो वह उसके जीवनयापन के लिए कुछ भूमि और प्रति वर्ष कुछ नाममात्र का धन दे दिया करता है।" [स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ४१७]

औरंगजेब के शासनकाल के प्राप्य दस्तावेजों की भलीभांति जांच करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि मनुची द्वारा औरंगजेब पर लगाया गया उक्त आरोप सत्य नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रत्येक मृत अमीर के राज्य

सम्बन्धी चालू हिसाब-किताब की जाँच करने और उसे ठीक करने में आवश्यक देर होती थी और इस लम्बी अवधि के बीच उसकी सम्पत्ति बैतुलमाल में मुहरबन्द ताले के भीतर रख ली जाती थी किन्तु यह सब जानबूझकर व अनुचित अपहरण की नीयत से नहीं किया जाता था। इस प्रकार का उल्लेख है कि जब गुजरात का सद्र और जज़िया का अमीन शेख मुहीउद्दीन मरा तो उसकी सम्पत्ति जब्त नहीं की गयी क्योंकि उसके पुत्र अकरमुद्दीन ने अपने पिता द्वारा राज्य-कोष से लिये गये ऋण के लिए अपनी जमानत दे दी थी। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० ३१९]

औरंगजेब द्वारा १६६६ ई० में जारी किया गया अध्यादेश (ordinance) एक मिथ्या बहाना न था। इस बात से भी सिद्ध होता है कि साम्राज्य के अन्तिम काल में बुयुतात के कर्तव्यों के अन्तर्गत यह कहा गया है कि वह मृतकों के उत्तराधिकारियों की सम्पत्ति की सुरक्षा तथा राज्य के देय धनों (dues) के भुगतान को खतरे से बचाने के निमित्त एक सूची बनाने तथा उसे कुर्क करने का अधिकारी है।

इसके अतिरिक्त, जवाबिते आलमगीरी में १६६१ ई० में सचमुच जब्त की हुई सम्पत्ति की एक सूची विद्यमान है। इसमें केवल उन्हीं अमीरों की सम्पत्ति का उल्लेख है जिनकी मृत्यु गत आठ साल के पहले नहीं अपितु इसके भीतर ही हुई थी। [जवाबिते आलमगीरी, पृ० ६९अ–७१ब] इससे यह बात और भी अधिक स्पष्ट की जा सकती है कि इन अमीरों का हिसाब-किताब कभी पूरा नहीं हुआ है, इसलिए जब्ती केवल सामयिक है।

४. जब्ती के नियमों से सम्बन्धित सिद्धान्त

अमीरों की सम्पत्ति को उनकी मृत्यु के पश्चात् जब्त करने की मुगल-कालीन प्रथा, औरंगजेब के नियमों तथा इस सम्बन्ध में प्रचलित वास्तविक प्रथा के भलीभाँति अध्ययन से मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि इसमें एक घुमक्कड़ जाति की समस्त सम्पत्ति के साम्प्रदायिक स्वामित्व नाम की प्राचीन एवं विदेशी संस्था पर अध्यारोपित (superimposed) सम्पत्ति की पवित्रता से सम्बन्ध रखने वाला कुरान का कोई कानून निहित है।

तुर्क लोग, जैसा कि वस्तुतः जाति के अनुसार तथाकथित दिल्ली के पठान और मुगल शासक थे, मौलिक रूप में घुमक्कड़ लोग थे और साम्राज्य की शान व शौकत से सूक्ष्म रूप से आवृत्त होने पर भी इन लोगों ने अन्त तक घुमक्कड़ लोगों के आवश्यक गुणों को कायम रखा। ऐसी जाति अपने मुखिया के नेतृत्व

आदेश से कार्य करने वाले राज्य के वेतनभोगी नौकरों के प्रभाव के कारण विरोध की बहुत कम सम्भावना होती थी।

अतएव राज्य उस सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता था जो उसकी स्वीकृति तथा आर्थिक एवं सैनिक सहायता के कारण किसी के जीवनभर की संचित सम्पत्ति थी। साम्राज्य साम्प्रदायिक सम्पत्ति थी और एक अमीर, सुल्तान अथवा पादशाह, हजरत मुहम्मद में पूर्ण विश्वास रखने वाले मुसलमानों के नायक की हैसियत से, इस्लाम की इस सेना के अधिकारियों की सभी अर्जित वस्तुओं को जब्त करने का अधिकार रखता था। सच्चे धर्मानुयायियों के प्रभु-समुदाय (जमैयत) के अधिकारों का वह उसी प्रकार एकमात्र न्यासधारी (ट्रस्टी) था जिस प्रकार इस्लाम को स्वीकार करने के पूर्व जन-जाति का कुलपति हुआ करता था। यह घुमक्कड़ चाहे पितृमूलक (Patriarchal) (इस्लाम से पूर्व) था अथवा धर्ममूलक (Theocratic) (इस्लाम के अन्तर्गत); किन्तु दोनों में सम्पत्ति समान रूप से साम्प्रदायिक मानी जाती थी।

तुर्की राज्य के उपरोक्त आधारभूत विचार इस्लामिक कानून के निजी अंग—निजी सम्पत्ति की पवित्रता और कोई अपनी पैतृक सम्पत्ति से वंचित न हो यह देखने का राजा का उत्तरदायित्व—आपस में मेल न खा सके। औरंगजेब के नियम इन दोनों के बीच मेल कराने के यत्न के प्रतीक थे। ये नियम साम्प्रदायिक सम्पत्ति से सम्बन्धित घुमक्कड़ लोगों के विचारों का कम से कम वाहरी कार्यों में अन्तिम रूप से परित्याग तथा व्यक्ति की निजी सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों का अपनाना अर्थात् राज्य के अभिकर्ताओं (Agents) का गैर-सरकारी स्वामियों में परिवर्तन कराने वाले थे। मेरी राय में यह मान लेना ऐतिहासिक न होगा कि प्रजा की अधिकारपूर्ण सम्पत्ति को उसकी मृत्यु के पश्चात् अरक्षित मानकर जब्त कर लेना मूलतः निरंकुश शासक के दूषित विचारों का परिणाम थी।

की स्वेच्छा पर निर्भर है। मुग़ल-साम्राज्य के अन्तर्गत भू-स्वामियों के उस वर्ग का होना असम्भव था जिसने बलपूर्वक किंग जॉन (King John) से मैगना चार्टा छीन लिया था अथवा जिसने प्रसन्नतापूर्वक चार्ल्स प्रथम के शासन के समय देश से निष्कासन, जब्ती तथा मृत्यु-दण्ड के प्रस्ताव को विचारार्थ प्रस्तुत किया था। मध्यकालीन भारत में सम्राट्, जो समाज में सर्वोपरि थे, तथा दरिद्र किसानों और निम्न श्रेणी के साधारण लोगों के बीच मध्यस्थ का कार्य करने वाला स्वतन्त्र अमीरों अथवा व्यापारियों का कोई वर्ग न था। राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से समान रूप से ऐसा शासन अत्यन्त अस्थायी तथा जर्जर था।

६. बैतुलमाल अथवा जब्त की हुई सम्पत्ति का गोदाम

बैतुलमाल वह गोदाम था जहाँ पर केवल बिना उत्तराधिकारियों के मरने वाले व्यक्तियों की सम्पत्ति रखी जानी चाहिए थी, किन्तु, जैसा कि औरंगजेब के नियमों से प्रकट होता है, व्यवहार में वहाँ पर अमीरों की जब्त की हुई सम्पत्ति तक जमा की जाती थी। इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार बैतुलमाल पर ईश्वर का अधिकार होता था और इसकी वस्तुओं को केवल दान के कार्यों में ही व्यय किया जा सकता था। इन्हें सम्राट् के निजी कार्यों अथवा शासन की साधारण आवश्यकताओं पर व्यय नहीं किया जा सकता था। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द १, पृ० ५६८]

औरंगजेब अपने एक पत्र में लिखता है कि उस युग का खलीफा (देश का शासक) बैतुलमाल का स्वामी न होकर एक न्यासधारी (trustee) है। [रुक्काते आलमगीरी, न० १०६] अपने दूसरे दो पत्रों में वह इस बात का भी उल्लेख करता है कि "बैतुलमाल की सम्पत्ति में वृद्धि करना उसका कर्तव्य है और बादशाह को भेंट में मिली हुई सभी वस्तुओं पर बैतुलमाल का अधिकार है।" [इरविन की पाण्डुलिपि, ३५०, सं० २६; आई० ओ० एल० एम० एस०, ३३०१, सं० १०२]

औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम समय में इसे कार्यान्वित किया गया था। इस प्रकार का उल्लेख है कि १६६० ई० में उसने एक आदेश दिया था जिसके अनुसार प्रान्तीय काजी को उनके सूबे के बैतुलमाल की शाखाओं का अमीन अथवा न्यासधारी नियुक्त किया गया था। इस सम्बन्ध में अहमदाबाद के काजी को यह आदेश दिया गया था कि वह शहर के फकीरों तथा दूसरे भिखारियों को जाड़े में डेढ़ सौ कोट और डेढ़ सौ कम्बल, जिनका क्रमशः डेढ़

रुपया प्रति कोट तथा आठ आना प्रति कम्बल मूल्य था, दिया करे। [मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० ३३८] उस शहर में गरीबों के वस्त्र के लिए ६००० रुपया व्यय किया जाता था किन्तु इसके अतिरिक्त इस मद से दिये जाने वाले दानों के लिए दूसरे अवसर भी थे।

प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हम बैतुलमाल तथा सम्राट् द्वारा सद्र अथवा सिविल जज और सदाव्रत बाँटने के लिए नियुक्त अधिकारी के हाथों में सुपुर्द दान-मदों की कार्य-सीमाओं को पहचानने में असमर्थ हैं। जकात अथवा मुसलमानों की आय के ढाई प्रतिशत के दसवें भाग को केवल पवित्र कार्यों में ही व्यय किया जाता था। इनमें मुसलिम विद्वानों, धर्मशास्त्र के विद्यार्थियों, फकीरों तथा भिखारियों का भरण-पोषण, कुमारियों के लिए दहेज देना आदि सम्मिलित था। वस्तुतः जकात को बैतुलमाल के कोष में जमा किया जाना चाहिए क्योंकि सम्राट् इसके किसी अंश को वैधानिक रूप से अपने निजी कार्य के लिए प्रयोग नहीं कर सकता था। मनुची के कथनानुसार औरंगजेब के अन्तिम वर्षों में, जबकि दक्षिण के युद्ध में राजकोष के खाली हो जाने पर वह आर्थिक क्लेश के कारण व्यग्र हो उठा था, सम्राट् ने सर्वप्रथम मृत व्यक्तियों अथवा अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में राज्य के छोटे-बड़े नौकरों की जब्त की गयी सम्पत्ति से भरे हुए गोदामों की वस्तुओं का प्रयोग करना चाहा था, किन्तु बाद में उसने इन गोदामों को न खोलने का आदेश दिया क्योंकि ऐसा करने में उसे भय था कि उत्तरी राजधानी से उसकी अनुपस्थिति में इन गोदामों की आधी से अधिक वस्तुएँ कहीं उनके अधिकारी ही न चुरा ले जायें। [स्टोरिया ड् मोगोर, जिल्द २, पृ० २५५]

हेदायेतुल कवायद में राज्य के ऋणी (मुतालिबादार) मृत अधिकारियों की जब्त की हुई और इस प्रकार कानूनन जन-कोष की सम्पत्ति (अमवालों) (amwal) का तथा बैतुलमाल अथवा लावारिस व्यक्तियों की सम्पत्ति के गोदामों का स्पष्ट उल्लेख है जो कानूनन ईश्वर के थे और जिन्हें केवल दान करने में ही व्यय किया जा सकता था। किन्तु औरंगजेब के विस्तृत पत्रव्यवहार में अमवाल जैसे विभाग का वर्णन नहीं है। इसमें केवल बैतुलमाल में जब्त की हुई सम्पत्ति के जमा करने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त हेदायेतुल कवायद यह भी बतलाता है कि अजनास (सूबेदारों और सेनानायकों को ऋण के रूप में दिये जाने वाले सुरक्षित सरकारी गोदाम), अमवाल (मृत्यु के उपरान्त अधिकारियों की जब्त की हुई सम्पत्ति के गोदाम) तथा बैतुलमाल (लावारिस

व्यक्तियों की सम्पत्ति के गोदाम) दारोगा (अध्यक्ष) तथा खपाल, भाण्डागारिक और रक्षकों के एक ही दल के अधीन थे। इसीलिए यह विभाग अधिकारियों को युद्ध-सामग्री भी प्रदान करता था। इससे यह सिद्ध होता है कि अजनास में तोपखाना विभाग के अतिरिक्त बारूद, छर्रे, शीशा और मोमजामा आदि भी रखे जाते थे।

हेदायेतुल कवायद में पृष्ठ ९० से लेकर पृष्ठ ९२ तक इस भण्डार-विभाग के नवनियुक्त दारोगा को उसके कर्तव्यों के रूप में दिये गये निर्देशों का वर्णन है।

७. सम्राट् द्वारा जामिन (hostages) के रूप में रखा गया अमीरों का परिवार

मुग़लकाल में सम्राट् अमीरों पर एक दूसरा अधिकार भी रखता था। इस अमीर वर्ग में अधिकांश मध्य एशिया और फारस तथा कुछ तुर्की साम्राज्य से आये हुए योग्य साहसी व्यक्ति सम्मिलित थे। फारस के लोग अपने शिष्ट आचरण, साहित्यिक योग्यता तथा वित्त एवं हिसाब-किताब रखने की क्षमता के कारण अनमोल थे। फारस के शाह तथा टर्की के सुल्तान के उच्चाधिकारियों को अपनी सेवा में रखने की मुग़ल-शासकों की सदैव प्रबल इच्छा रहती थी क्योंकि, जैसा कि औरंगजेब स्पष्ट रूप से कहा करता था, ईरानी भारतीय मुसलमानों की अपेक्षा प्रखर बुद्धि वाले थे और पश्चिमी तुर्क अपने साथ कुछ यूरोपीय संस्कृति एवं विज्ञान भी लाते थे। जब वे अपनी जन्म-भूमि पर अपमान का अनुभव करते थे अथवा अपने सम्राट् के कोप का भाजन होते थे तो ऐसे अधिकारियों के लिए जान बचाकर भारत में चले आने पर उनकी जन्म-भूमि पर प्राप्त प्रतिष्ठा, शक्ति और धन से कहीं अधिक प्रतिष्ठा, शक्ति और धन का मार्ग खुल जाता था। औरंगजेब के अन्तिम वर्षों में शिया विरोधी भावनाओं की वृद्धि और भारतीय मुसलमानों की जनसंख्या में प्रभावशाली सुन्नी बहुमत के कारण तथा आंशिक रूप से सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में अन्तिम शफवी शाहों के अन्तर्गत इराक की शाही शक्ति एवं सभ्यता के द्रुतगति से होने वाले पतन के कारण भी मुग़ल-साम्राज्य की सफलता एवं वैभव में अधिक योग देने वाले इन नये अधिकारियों का यह स्रोत स्वाभाविक रूप से सूख गया था। किन्तु जब तक यह स्रोत बहता रहता भारत में आये हुए उच्च वंशों में उत्पन्न ईरानी और अरबी शरणार्थियों का स्वागत होता था और सम्राट् इन नवागन्तुकों की पुत्रियों के साथ अपने पुत्रों और पौत्रों का विवाह प्रसन्नतापूर्वक करते थे।

फिर भी इन नवागन्तुकों को अपने नये स्वामी को अपनी स्वामिभक्ति का जामिन देना पड़ता था। किसी भी ईरानी अथवा तुर्क शरणार्थी को किसी उच्च पद पर उस समय तक स्थायी नहीं किया जाता था जब तक वह स्वदेश से अपने परिवार को लाकर भारत में स्थायी रूप से बस न जाये क्योंकि इस देश से उनके भाग जाने को रोकने का सर्वोत्तम साधन यही था। उन्हें अपने पुत्रों में से एक को अपने प्रतिनिधि (वकील) के रूप में दरबार में भी रखना पड़ता था। प्रान्तों से उनकी अनुपस्थिति के समय उनके सदाचरण के लिए वे सचमुच एक जामिन का कार्य करते थे। हिन्दू राजाओं को भी ऐसा ही करना पड़ता था।

अध्याय १०

राज्य व्यवसाय

१. उत्पादक के रूप में शासन

लगभग प्रत्येक वांछित वस्तु की पूर्ति के लिए मुग़ल-शासन उत्पादक होने को विवश था, क्योंकि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में हमारे देश की आर्थिक दशा अविकसित थी, उत्पादन के आधुनिक अशासकीय संगठनों एवं यातायात के साधनों का अभाव था और शासन स्वयं अपने कर्मचारियों एवं अपनी प्रजा के साथ व्यवहार करने में कुछ पैतृक दृष्टिकोण रखता था। इस प्रकार के राज्य के कारखाने इस देश की एक प्राचीन संस्था थे क्योंकि सारे मध्ययुग में तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार उनकी आवश्यकता थी। इस तरह हमें ज्ञात है कि चौदहवीं शताब्दी के अन्त में सुल्तान फीरोजशाह तुगलक ने ३६ कारखानों को स्थापित किया था जिन पर सम्भवतः उस समय प्रति वर्ष पचास लाख रुपया व्यय किया जाता था जबकि रुपये की क्रय-शक्ति उसकी वर्तमान क्रय-शक्ति से पच्चीस गुनी अधिक थी। अफीफ कृत तारीखे फीरोजशाही में पृष्ठ ३३४ से लेकर पृष्ठ ३४० तक इन कारखानों के प्रबन्ध का विस्तृत वर्णन है। अरब का भूगोलवेत्ता शहाबुद्दीन अबुल अब्बास अहमद अल दमिश्की सौदागरों के प्रतिवेदनों (रिपोर्ट) का उल्लेख करते हुए हमें उनकी (कारखानों की) कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में कुछ संकेत करता है। [इलियट, जिल्द ३, पृ० ५७८] फातमी मिस्र की प्रासादीय उद्योगशालाओं (palace workshops) के लिए एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० १७-१८ को देखिए।

अकबर के शासनकाल में, लगभग सोलहवीं शताब्दी के अन्त में, प्रासादीय उद्योगशालाओं (palace workshops) का विस्तृत विस्तार हो चुका था। अढ़ाई सौ वर्ष की सभ्यता के विकास से आशा भी यही की जाती थी। उसका प्रशंसक अबुल फजल लिखता है कि "इलाही संवत्" के उनतालीसवें वर्ष में (१५९५ ई० में) शाही महल में "सौ से अधिक कार्यालय और कारखाने थे जिनमें से प्रत्येक एक शहर अथवा एक छोटे-से साम्राज्य की भाँति प्रतीत

होना था।" [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १२] बर्नियर ने उन्हें साठ वर्ष बाद देखा था और उसने उनका आँखों देखा विवरण दिया है। [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २५९] दस्तूरुल अम्ल नामक सरकारी पुस्तिकाओं तथा सत्रहवीं शताब्दी के अन्त और उसके बाद के लिखे गये दूसरे ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी हमें कारखानों की सूची मिलती है।

किन्तु राज्य के आर्थिक कार्यकलाप की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें दो प्रकार की वस्तुओं को अलग-अलग समझने की आवश्यकता है जिन्हें हमारे मान्य ईरानी इतिहासवेत्ताओं ने 'कारखानों' के नाम से पुकारा है और उसी सूची में उन्हें भी सम्मिलित कर लिया है अर्थात् (१) जानवरों, खाद्य एवं पेय पदार्थों तथा शासन द्वारा प्राप्त और राजप्रासाद में रखी हुई तैयार अथवा प्रयोग करने के योग्य वस्तुओं के गोदाम, तथा (२) वास्तविक कारखाने, जहाँ पर राज्य के वेतन प्राप्त नौकर कच्चे माल से प्रयोग करने के योग्य वस्तुएँ तैयार करते थे।

२. राज्य कारखाने व अन्य खजाने

प्रारम्भ में ही राजमहल के विभिन्न खजानों के सम्बन्ध में कुछ कह देना आवश्यक है क्योंकि गोदामों और कारखानों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। अकबर का दरबारी इतिहासकार इनके विषय में हमें गर्वपूर्वक बतलाता है कि

"ईरान और तूरान में, जहाँ पर केवल एक ही कोषाध्यक्ष नियुक्त किया जाता था, हिसाब-किताब अस्तव्यस्त था, किन्तु यहाँ भारत में आय इतनी अधिक थी और कारोबार इतने विभिन्न प्रकार के थे कि रुपया संग्रह करने के *लिए बारह खजानों की आवश्यकता थी।* इनमें से नौ विभिन्न प्रकार के नकद भुगतान तथा तीन बहुमूल्य पत्थरों, सोना और जड़ाऊ जवाहरात के लिए आवश्यक थे। कर लेने के लिए एक अलग कोषाध्यक्ष, लावारिस सम्पत्ति (बैतुलमाल) को जमा करने के लिए एक दूसरा कोषाध्यक्ष, नजर (भेंट) लेने के लिए एक तीसरा कोषाध्यक्ष और शाही व्यक्ति को तोलने तथा दातव्य दानों में व्यय किये जाने वाले धन के लिए एक चौथा कोषाध्यक्ष नियुक्त होता था।" [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १४]

वृहत् अथवा जन-कोष (खजानये आमेरा) के अतिरिक्त आठ खजानों के नाम तथा उनके कार्य के सम्बन्ध में हमें जानकारी है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में शाकिरखाँ द्वारा लिखे गये एक फारसी इतिहास में बारह खजानों का नाम इस प्रकार दिया हुआ है :

(१) 'अन्दरूने महल' अर्थात् अन्तःपुर के भीतर का खजाना। जैसा कि औरंगजेव के अन्तिम दुखपूर्ण वर्षों में लिखे गये उसके पत्रों से हमें ज्ञात है, यही खजाना मुग़ल सम्राटों की सुरक्षा की अन्तिम वित्तीय पंक्ति थी।

(२) 'बकाया' अर्थात् वह कोष जहाँ पर अवशिष्ट धन (arrears) संग्रह किया जाता था।

(३) 'जेवेखास' अथवा सम्राट् के जेब-खर्च चलाने का खजाना अर्थात् जिसमें से सम्राट् स्वयं अपने हाथों से खर्च करता था।

(४) 'जेवेफैज' अथवा पवित्र दानों के लिए खजाना अर्थात् वह धन जिसे सम्राट् प्रति वर्ष दान में तथा अपने को सोने, चाँदी तथा कई दूसरी वस्तुओं से तोलने में व्यय किया करता था और जो गरीबों तथा मजहबी भिखारियों को बाँट दिया जाता था।

(५) 'खजानये रिकाब' अथवा वह खजाना जो सम्राट् के अभियान (marches) के समय उसके साथ-साथ जाता था।

(६-७) 'खजानये नजर व पेशकश'। इन खजानों में संकल्पों की पूर्ति हेतु दी गयी नजरें, भेंट, तोहफे अथवा सम्राट् के शरीर से बुरी ग्रह-दशाओं को दूर करने के उपलक्ष में प्रजा द्वारा सम्राट् को दिये गये दान रखे जाते थे। अबुल फजल उन्हें दो अलग-अलग खजाने मानता है किन्तु शाकिरखाँ (अठारहवीं शताब्दी के मध्य में) उन्हें एक ही में मिला देता है।

(८) 'खजानये सर्फेखास' अर्थात् सम्राट् के निजी अथवा पारिवारिक व्यय के निमित्त उसका निजी कोष। सम्राट् इसे अपने हाथों से व्यय नहीं करता था। इस धन को खानसामा ही खर्च करता था।

(९) 'वैतुलमाल'। यहाँ पर उन लोगों की सम्पत्ति रखी जाती थी जो विना उत्तराधिकारी के मर जाते थे। ऐसा इसलिए किया जाता था ताकि आगे चलकर इसे साधारण जनता की सहायता के लिए व्यय किया जा सके। कुरान की आयतों के अनुसार सम्राट् अपने निजी काम में इस धन का कोई भी अंश खर्च नहीं कर सकता था। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द १, पृ० ५९८**]

जैसा कि आईने अकबरी से हमें ज्ञात है, दूसरे तीन प्रकार के खजाने इस प्रकार थे:

(१०) वहुमूल्य पत्थरों का खजाना।

(११) स्वर्ण-द्रव्यों का खजाना ।

(१२) जड़ाऊ जवाहरातों का खजाना ।

'सभासद बखर' (१६६७ ई०) तथा 'शिवाजी के चिटनिस बखर' (१८१० ई०) नामक दो मराठी ग्रन्थों में क्रमशः पृष्ठ ६५ और ७६ पर उपरिलिखित सूची से भिन्न बारह दूसरे खजानों की सूची दी हुई है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो इन ग्रन्थों के लेखकों ने खजानों और गोदामों के भेद को ही स्पष्टतया न समझा हो और दूसरे यह भी हो सकता है कि शायद मराठा शासन-प्रणाली मुग़ल शासन-प्रणाली से कुछ अंशों में भिन्न रही हो। इन खजानों को बड़ा महल अथवा कोष कहा जाता था और इनका नाम था फौता, सौदागरी, पालकी, इमारत, पागा, सैरी (अथवा सैरे बाग), दरुनी, थट्टी, टँकशाल (अथवा टकसाल), छबीना और बहिली (दूसरा नाम जमादारखाना अथवा वर्दीखाना)।

यहाँ पर 'पागा' शब्द (जिसका अर्थ अश्वारोही दल है) बकाया का अपभ्रंश प्रतीत होता है; बहिली हिन्दी का 'बहलह' शब्द है जिसका अर्थ निजी कोष (privy purse) [देखिए, आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १५]; 'छबीना' फारसी शब्द 'शबीना' का मराठी अपभ्रंश है, जो बादशाह के अभियान के समय उसके साथ चलने वाले अश्वारोही दल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मैं इसे रिकाब का शिथिल अनुवाद मानता हूँ, और जैसा कि ऊपर हम लोगों ने देखा है, यह सम्राट् के अभियान का द्योतक है। फौता जन-कोष के लिए और दरुनी (अन्दरुनी) अन्तःपुर के कोष के लिए प्रयुक्त हुआ है।

शेष खजाने न होकर गोदाम मात्र थे। सैरे बाग का अर्थ मनोरंजन के लिए स्थापित उद्यानों की यात्रा है और मुझे सन्देह है कि इस उद्देश्य के लिए व्यय करने के निमित्त एक विशेष प्रकार का कोष था। थट्टी का अर्थ पशु-विभाग है। [जुन्या ऐतिहासिक गोष्ठी, जिल्द १, पृ० ३८]

जवाबिते आलमगीरी (फोलियो १३२ब) में चौबीस खजानों का उल्लेख है जिनमें से एक जन-कोष भी है। दूसरे पाँच उपर्युक्त सूची में सम्मिलित हैं किन्तु शेष अठारह विभिन्न प्रकार के हैं। ये अशर्फियों (सोने के सिक्कों), लेडी बेगमों, आर्थिक दण्डों, राज-महाल (रासुलमाल) (देखिए, अध्याय ३, अनुच्छेद ४), दाम, अहदीस, शार्गिद-पेशा (निम्नकोटि के कर्मचारियों), जागीरों के आदान-प्रदान, तोपखानों, रिकार्डों के कार्यालयों (Record offices), कुलारे हैदराबादी, पशुओं के भोजन, पारितोषिकों, नकद, हाथीखानों के क्लर्कों की

दस्तूरियों, साधारण खर्च (खर्च कुल) और दो अस्पष्ट मदों, जो ठीका (ठेका, किराया) और मुतफर्का मालूम पड़ते थे, के छोटे खजाने थे।

मीराते अहमदी (सप्लीमेण्ट, पृ० १३८) से हमें ज्ञात है कि सूबों में केवल चार ही खजाने थे जिनके नाम इस प्रकार हैं : (१) खजानये आमिरा, इसे बैतलराज अथवा राज्य-भूमि के भू-कर, उपहार तथा हिन्दुओं के सामानों पर ली जाने वाली चुंगी आदि का घर कहते थे; (२) खजानये बकाया अथवा तकावी, कर आदि के अवशिष्ट धन का खजाना; (३) खजानये सदका, इसमें मुसलमानों[1] से लिये जाने वाले दसवें भाग का अढ़ाई प्रतिशत सम्मिलित रहता था; और (४) खजानये जजिया अथवा मुसलमानों के अतिरिक्त दूसरे लोगों से लिये जाने वाले कर का खजाना।

३. राज्य कारखानों के कार्य का विवरण

साधारण बोलचाल में केवल १२ खजाने तथा ३६ कारखाने थे। शाकिरखाँ की संक्षिप्त जीवनी में भी हमें इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। मराठी इतिहास, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, केवल १८ कारखानों का ही वर्णन करते हैं, यद्यपि ये दोनों ग्रन्थ, जहाँ तक उनके (कारखानों) नामों का प्रश्न है, परस्पर मेल नहीं खाते हैं। जवाबिते आलमगीरी (फोलियो १३२ब) में ६६ कारखानों का उल्लेख है; किन्तु उसकी बुरी लिखावट के कारण कुछ नामों को स्पष्ट रूप से पढ़ा नहीं जा सकता है। आईने अकबरी में २६ कारखानों का अलग वर्णन है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इसमें १० दूसरे कारखानों का भी उल्लेख है। इस प्रकार इसके अनुसार कारखानों की कुल संख्या ३६ है।

इन सूचियों के गुण-दोष का विवेचन करने तथा वास्तविक कारखानों से पृथक् गोदामों और कार्यालयों को गिनाने के पूर्व मैं राज्य कारखानों की कार्य-प्रणाली का वर्णन करूँगा।

शम्से अफीफ अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर फीरोजशाह के कारखानों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखता है—"सुलतान के पास ३६ कारखाने थे और उसने उनमें वस्तुओं का संग्रह करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया था। उनमें से प्रत्येक विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओं से भरा हुआ था अर्थात् इनमें

[1] जकात मुसलमानों से अढ़ाई प्रतिशत लिया जाने वाला आवश्यक भिक्षा-कर है तथा सदका स्वेच्छापूर्वक दानस्वरूप दिये जाने वाला धन है। एक समय इन दोनों को एक ही में मिला दिया गया था। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० ३३ और १२०२; कुरान, जिल्द ६, पृ० ६०]

यंत्र, लकड़ी का सामान (फर्नीचर) तथा माल भरे हुए थे। इनकी गणना नहीं की जा सकती थी। प्रति वर्ष प्रत्येक कारखाने पर बहुत-सा धन व्यय किया जाता था। इनमें से कुछ गोदाम 'रातिबी' थे, अर्थात् उनके लिए वार्षिक धन का अनुदान निश्चित रहता था। इनमें हाथीशाला, अश्वशाला, खच्चरशाला, ऊँटशाला, भोजनालय, दीपक-गृह, मद्य-गृह तथा कालीनों के गोदाम सम्मिलित थे। इन रातिबी गोदामों का कुल निश्चित मासिक अनुदान एक लाख साठ हजार टंका था। यह अनुदान उनके यन्त्रों के मूल्य तथा उनके गणकों (एकाउन्टेन्टों) तथा दूसरे अधिकारियों के वेतन के अतिरिक्त था। इनका कुल योग एक लाख साठ हजार चाँदी का टंका था। जमादारखाना, इल्मखाना, फर्राशखाना, रिकाबखाना आदि जैसे गैर-रातिबी कारखानों का व्यय प्रति वर्ष नये सामानों के बनाने की फरमाइश के अनुसार घटता-बढ़ता रहता था।··· प्रत्येक कारखाने का अध्यक्ष खान अथवा मलिक होता था। उन सबों के ऊपर मुतसर्रिफ की नियुक्ति होती थी, और इस समय ख्वाजा अबुल हसन मुतसर्रिफ थे। ···जब सुलतान किसी वस्तु को बनवाना चाहता था तो वह सर्वप्रथम मुतसर्रिफ के पास लिखता था जो सम्बन्धित कारखाने के अध्यक्ष के पास उस फरमाइश को भेज देता था और कार्य जल्दी हो जाया करता था। प्रत्येक कारखाने में बहुत-से गणक (एकाउन्टेन्ट) होते थे।" [अफीफ कृत तारीखे **फीरोजशाही, मूल, पृ० ३३७-३३९**]

सुलतान का यह स्थायी आदेश था कि किसी भी कारीगर के बेकार होने पर उसे उसके पास भेज दिया जाय। पुलिस के नायक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के द्वारा इसका पता लगाते थे और बेकार व्यक्तियों को सुलतान के पास ले जाते थे जो उन्हें अपने कारखानों, अथवा अपने मन्त्रियों के कार्यालयों, अथवा अमीरों के घरों में, उनकी योग्यता तथा इच्छा के अनुसार, काम दिया करता था। [**अफीफ कृत तारीखे फीरोजशाही, मूल, पृ० ३३४**]

अरब का भूगोलवेत्ता दमिश्की लिखता है कि "सुलतान के पास एक कारखाना है जिसमें चार सौ सिल्क के बुनकर काम करते हैं और जहाँ पर वे दरबार से सम्बन्धित कर्मचारियों की वर्दियों, प्रतिष्ठा एवं भेंट के सभी प्रकार के वस्त्र तैयार करते हैं। इस प्रकार तैयार किया हुआ वस्त्र चीन, ईरान तथा सिकन्दरिया से प्रति वर्ष मँगवाये गये वस्त्र के अतिरिक्त होता है। सुलतान प्रति वर्ष २,००,००० वर्दियाँ वितरित करता है।···मुसलिम आश्रमों तथा कुटियों में भी वस्त्र वितरित किये जाते हैं।···

"सुलतान के यहाँ कपड़ों पर सोने के तारों से जरदोजी का काम करने वाले ५०० कारीगर भी नियुक्त हैं जो उसकी पत्नियों के पहनने अथवा अमीरों और उनकी पत्नियों को भेंट में दिये जाने वाले कपड़ों पर ज़रदोजी का काम बनाते हैं।" [इलियट, जिल्द ३, पृ० ५७८]

४. राज्य उद्योग के कुछ प्रमुख स्थान

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांसीसी डाक्टर बर्नियर ने मुगल राजधानी की यात्रा करते हुए इन कारखानों को काम करते देखा था। वह लिखता है कि "किले के भीतर बहुत-से स्थानों पर बड़े-बड़े कमरे हैं जिन्हें कारखाना अथवा कारीगरों की उद्योगशाला कहते हैं। एक बड़े कमरे में कसीदा काढ़ने वाले अपने कार्य में लगे हुए थे और उनके कार्य की एक अध्यक्ष निगरानी कर रहा था। दूसरे कमरे में सुनारों को, तीसरे में रँगरेजों को, चौथे में वारनिश के काम में रत वारनिश करने वालों को, पाँचवें में बढ़इयों, खराद पर काम करने वालों, दर्जियों तथा मोचियों को और छठे में सिल्क, जरी तथा बारीक मलमल बनाने वालों को देखा। इस मलमल के साफे, सुनहरे फूलों वाले कमरबन्द तथा औरतों के पहनने वाले जांघिया बनते थे। इन पर सुन्दरतापूर्वक कसीदाकारी होती थी।

"कारीगर प्रतिदिन सवेरे अपने-अपने कारखानों में कार्य करने आते हैं। यहाँ वे दिन भर अपने कार्य में लगे रहते हैं और सन्ध्या समय अपने घरों को वापस जाते हैं।...कसीदा करने वाले का लड़का कसीदा करने वाला और सोनार का लड़का सोनार होता है तथा शहर के हकीम अपने लड़के को हकीमी सिखाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही व्यापार तथा व्यवसाय करने वालों के अतिरिक्त किसी अन्य के साथ विवाह नहीं करता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों इस प्रथा का बड़ी सख्ती के साथ पालन करते हैं।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २५६]

सूबों में लाहौर, आगरा, फतहपुर, अहमदाबाद, बुरहानपुर तथा काश्मीर में राज्य के कारखाने थे। विभिन्न सूबों के गवर्नर अत्यन्त छोटे पैमाने के अतिरिक्त अपना निजी कारखाना नहीं चला सकते थे क्योंकि उनका प्रायः स्थानान्तर होता रहता था। किन्तु वे स्थानीय उपज को प्रोत्साहन देते थे क्योंकि यह सब होते हुए भी उन्हें सम्राट् को प्रसन्न करने के लिए अपनी कार्यकुशलता का प्रमाण देना पड़ता था। "बादशाह और शाहजादे इन सूबों में से प्रत्येक में अपने अधिकारी नियुक्त करते हैं, जो उस स्थान पर बना हुआ अच्छे से अच्छा सामान अपने पास तैयार रखते हैं। इस माध्यम से वे स्थानीय कारीगरों द्वारा उस प्रकार

के किये जाने वाले कार्यों पर निरन्तर दृष्टि रखते हैं।" **[स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ४३१]**

अबुलफजल राज्य के संरक्षण के अन्तर्गत भारतीय कला-व्यवसाय का निम्न वर्णन करता है···"बादशाह सलामत कुछ विशिष्ट वस्तुओं पर अधिक ध्यान देते हैं। लोगों को निर्माण की उन्नत पद्धति की शिक्षा देने के लिए इस देश में कुशल कारीगर बस गये हैं। लाहौर, आगरा, फतहपुर, अहमदाबाद और गुजरात के शाही कारखाने हस्त-कौशल की अनेक उत्कृष्ट वस्तुएँ तैयार करते हैं और आकार एवं आदर्श तथा तागों के काम से तैयार उस समय प्रचलित विभिन्न प्रकार के फैशन यात्रियों को चकित कर देते हैं।···इनके सम्बन्ध में विशेष सावधानी बरतने के कारण इस देश के बुद्धिमान कारीगर शीघ्र ही उन्नति कर जाते हैं।···शाही कारखानों में वे सभी वस्तुएँ तैयार होती हैं जो दूसरे देशों में बनायी जाती हैं। सुन्दर वस्तुओं के प्रति साधारण लोग रुचि रखने लगे हैं। दावतों के अवसर पर प्रयुक्त कपड़े वर्णनातीत हैं।" **[आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० ८७-८८]**

गोलकुण्डा राज्य में बहुत दिनों तक मसलीपट्टम छपाई के काम में दक्ष अनेक कारीगरों का केन्द्र था। दकन के तत्कालीन बाइसराय औरंगजेब के बहुत-से पत्र उपलब्ध हैं जिनमें उसने इन कारीगरों में से कुछ को दिल्ली और आगरा के राज्य कारखानों में कार्य करने को भेज देने की शाहंशाह से सिफारिश की थी। वस्तुतः यह बेगार थी।

श्रमिकों का भाग्य न तो अच्छा ही था और न देश के आर्थिक विकास के अनुकूल उन्हें उचित प्रोत्साहन ही मिलता था। राजधानी देश के समस्त नगरों से विशाल एवं सम्पन्न नगर था। किन्तु यहाँ पर न तो कोई निजी कारखाना था और न कुशल कारीगरों की ओर से चलायी हुई उनकी कोई निजी उद्योगशाला ही थी। बर्नियर ने उचित ही लिखा है कि "यदि कलाकारों तथा कारीगरों को प्रोत्साहन दिया जाता तो लाभप्रद एवं ललित कला की उन्नति हुई होती। किन्तु ये अभागे तिरस्कृत हैं। इनके साथ कठोरता का व्यवहार किया जाता है और इन्हें इनके परिश्रम के लिए पर्याप्त मजदूरी भी नहीं दी जाती। धनीमानी लोगों को प्रत्येक वस्तु सस्ते मूल्य पर मिल जाती है। जब कभी भी एक अमीर अथवा मनसबदार को एक कारीगर की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है तो वह उसको बाजार से पकड़ बुलाता है और बलपूर्वक उस गरीब आदमी से काम करवाता है। कार्य समाप्त हो जाने पर वह क्रूर स्वामी

उसकी मजदूरी उसे उसके परिश्रम के अनुसार न देकर अपनी इच्छा से देता है। इसके विपरीत, एक कारीगर अपने परिश्रम के बदले कोड़े की सजा न मिलने में ही अपना भाग्य मानकर दी हुई मजदूरी से सन्तोष कर लेता था। ऐसी परिस्थिति में प्रतियोगिता की किसी प्रकार की भावना किसी कलाकार अथवा कारीगर को कैसे उत्तेजित करती ? अतः वे ही कलाकार ख्याति प्राप्त कर पाये हैं और उन्हीं की गणना जो बादशाह अथवा किसी शक्तिशाली अमीर के यहाँ नौकर हैं और जो केवल अपने स्वामी के लिए ही कार्य करते हैं।" [बर्नियर, ट्रैवल्स, पृ० २५५-२५६]

५. कारखानों की वर्गीकृत सूची

जवाबिते आलमगीरी के अनुसार मुग़ल कारखानों को छह वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(क) जानवरों के लिए—

(१) अश्वशाला (पागा अथवा अस्तबलखाना) [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० १३२]।

(२) हस्तिशाला (फील-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ११७, तथा मराठी]

(३) गौशाला (गौ-खाना) [आईने अकबरी, पृ० १४८, तथा मराठी]

(४) उष्ट्रशाला (शुतर-खाना) [आईने अकबरी, पृ० १४३, तथा मराठी]

(५) खच्चरशाला (अश्तर-खाना) [आईने अकबरी, पृ० १५२] तारीखे फीरोजशाही तथा जवाबिते आलमगीरी में इसकी वर्तिनी (spelling) अशुद्ध दी हुई है और शेरखाना लिखा हुआ है। मराठी में 'शेरी' है।

(६) मृगोद्यान (आहु-खाना) [आईने अकबरी, पृ० २२१]

(७) पालतू शिकारी जानवरों को रखने का स्थान (शिकार-खाना) [आईने अकबरी, पृ० २८६-२९४, तथा मराठी]। जवाबिते आलमगीरी में इसका उल्लेख नहीं है।

(८) शिकारी चीतों (चीता-खाना) को रखने का स्थान [आईने अकबरी, पृ० २८५]

(९) श्येन (बाज) को पालने के लिए निर्मित गृह (कुश-खाना) [आईने अकबरी, पृ० २९३]

(ख) गोदाम, जहाँ पर दूसरे स्थान पर बनी हुई वस्तुओं का संग्रह मात्र था—

(१०) राजकीय अधिकार-चिह्न (कुर-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ५०]

(११) आयुधागार (सिलह-खाना) [आईने अकबरी, पृ० १०६, तथा मराठी]

(१२) पालकी-खाना [मराठी]

(१३) चौडोल-खाना अथवा डोली-खाना

(१४) रथ-खाना अथवा गाड़ी-खाना [मराठी]

(१५) वहनीय सिंहासन अथवा तख्ते-रवाँ

(१६) मोमबत्तियाँ तथा दीपक (शमा और चिराग) [आईने अकबरी, पृ० ४८]

(१७) मशाल

(१८) पुस्तकालय (किताब-खाना) [मराठी]

(१९) चीनी-मिट्टी की वस्तुएँ (चीनी-खाना)

(२०) खिलअत-खाना अथवा वितरण के निमित्त प्रतिष्ठा की वर्दी का गोदाम।

(ग) कारखाने और गोदाम—

(२१) दरियाँ (फर्शि-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ५३, तथा मराठी]

(२२) वस्त्र रखने की आलमारी अथवा तोशक-खाना [आईने अकबरी, पृ० ८७] फिरोज के इतिहास तथा मराठी में जमादार-खाना का उल्लेख है।

(२३) घोड़े का साज, उसकी जीन और लगाम (जीन-खाना)

(२४) किरकिराकी-खाना। आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० ८७न में ब्लौकमन ने सर्वप्रथम वस्त्र रखने की आलमारी के अर्थ में इसकी व्याख्या की थी; किन्तु अपने छह सौ सोलहवें परिशिष्ट में उसने 'स्प्लेक्स के रोएँ' (Fur of the supplex) के अर्थ में तुर्की भाषा में 'कुर्क' तथा 'यार्क' शब्दों से इसकी उत्पत्ति बतलायी है। बेवेरिज [तुजुके जहाँगीरी, जिल्द १, पृ० ४५] ने इसी अर्थ को स्वीकार किया है। शेख सुलेमान उफेन्दी कृत चगताई ओस्मानली वोर्टरबुच (कुनोस द्वारा सम्पादित) में किर्कू का अनुवाद "गौरैया का शिकार करने वाला पक्षी" किया गया है। फोर्ब्स ने हिन्दुस्तानी डिक्शनरी के ५४४वें पृष्ठ पर 'किरकिरा' शब्द का अर्थ एक प्रकार का सारस बतलाया है। किन्तु मुग़ल-शासन के प्रान्तीय दीवान के पद पर जीवनपर्यंत काम करने का अनुभवी मीराते अहमदी का लेखक स्पष्ट रूप से 'किरकिराक' का अर्थ "अपनी पोशाक के लिए सम्राट् जो कुछ भी आदेश देता है तथा चिकनदोजी, नक्काशी आदि" बतलाता है। [मीराते अहमदी, जिल्द २, पृ० १८४] इसलिए हमें यही अन्तिम अर्थ स्वीकार करना चाहिए।

जवाविते आलमगीरी (पृ० ११४अ) में रकावी और तश्तरी विभाग की एक शाखा के अर्थ में किरकिराकी शव्द का उल्लेख हुआ है। जयपुर के प्रासादीय कागजों में इसे रत्नजटित पात्रों के विभाग में सम्मिलित किया गया है।

(२५) सम्राट् की यात्रा के लिए विस्तर तथा अग्रिम शिविर (विस्तर-खाना और पेश-खाना)

(२६) वच्चों के वस्त्र (रखवात—रख्त का अशुद्ध वहुवचन)

(२७) खवासों के वस्त्र। किन्तु जवाविते आलमगीरी (पृ० १४अ) के दूसरे स्थानों पर इसका प्रयोग (क) तेंदुओं, (ख) हाथियों, (ग) हवेली, तथा (घ) वारिश-खाना अथवा वर्षा-गृह के साज के अर्थ में हुआ है।

(२८) सोनारों का विभाग (जरगर-खाना) [आईने अकवरी, पृ०१८]

(२९) लोहारगीरी (आहंगर-खाना)

(३०) रत्नगृह (जवाहिर-खाना) [आइने अकवरी, तथा मराठी]

(३१) स्वर्ण-भांड (तिला-आलात)

(३२) रजत-भांड (नुकरा-आलात)

(३३) रत्नजटित-भांड (मुरस्सा-आलात)

(३४) ताम्र-भांड तथा डेग

(३५) सोने की तारकशी (जरदोज-खाना)

(३६) हाथी दाँत का काम (दन्दाने-फील)

(३७) खातमवन्दी-खाना

(३८) खुशवू-खाना [आईने अकवरी, पृ० ७३]

(३९) गुलावजल-विभाग (गुलाव-खाना)

[यदि साधारण खुशवू-खाने में गुलावजल को सम्मिलित कर लिया जाय तो इसे "कलावत-खाना" अथवा राज्य-गायक-विभाग पढ़ने के लिए विवश हूँ। फिर भी औरंगजेव ने जवाविते आलमगीरी के अन्तिम रूप में लिखे जाने के कुछ वर्ष पहले ही इसे तोड़ दिया था।]

(४०) तेल अथवा घी (रोगन)

(४१) टकसाल (दारुल-जर्व) [आईने अकवरी, पृ० १०६, तथा मराठी]

(४२) चित्र (नक्काश-खाना अथवा तस्वीर-खाना) [आईने अकवरी, पृ० १०७]

(४३) औपधालय (दवाखाना अथवा शफाखाना) [मराठी]

(४४) शाल [आईने अकवरी, पृ० ६१]

(४५) गुलूवन्द बुनना (चीराबाफी-खाना)

(४६) इलाकावन्दी-खाना (ऐसे कारखाने जहाँ रेशम के फीते आदि तैयार किये जाते हैं।)

(४७) वस्त्रों का गोदाम (कोठा अथवा कोठिये-पर्चा) [मराठी]

मीराते अहमदी (सप्लीमेण्ट, पृ० १७६) में गुजरात के राज्य-आय के एक स्रोत के रूप में उल्लिखित कथराये-पर्चा के महाल से यह बिलकुल भिन्न था। इसका तात्पर्य कपड़े की चुंगी से था और यह अर्थ स्पष्ट रूप से इसकी 'महाले-सदपंज' अथवा पाँच प्रतिशत के भाग से निकलता है क्योंकि औरंगजेब के शासनकाल में बेचे हुए माल पर हिन्दुओं से पाँच प्रतिशत, ईसाइयों से साढ़े तीन प्रतिशत तथा मुसलिम व्यापारियों से अढ़ाई प्रतिशत की दर से चुंगी ली जाती थी। आगे चलकर इनसे (मुसलिम व्यापारियों से) कुछ भी चुंगी नहीं ली जाती थी।

(घ) शासन अथवा न्याय-विभाग के कार्यालय—

(४८) बाजों का कमरा (नक्कार-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ४७, तथा मराठी]

(४९) तोपखाना। इसमें सभी श्रेणी के आग्नेयास्त्र एवं युद्ध-सामग्री सम्मिलित थी। मराठों के पास बारुद के लिए एक पृथक् गोदाम था जिसे वे दारु-खाना कहते थे।

(५०) निर्माण-विभाग (इमारत-खाना) [आईने अकबरी, पृ० २२२, तथा मराठी]

(५१) दफ्तर-खाना [मराठी]

(५२) सम्राट् का चैत्यालय (जा-नमाजखाना अथवा तसबीह-खाना)

(५३) लावारिस सम्पत्ति का गोदाम (कोठये-बैतुलमाल)

(५४) क्रय-विभाग (इब्तिया-खाना) (इसी का नाम मराठों के यहाँ सौदागरी कोश था।)

(५५) मुफ्त भोजनालय (बुलगुर-खाना, अथवा और अधिक प्रचलित नाम लंगर-खाना)

(५६) स्कूल (तालीम-खाना)। फीरोजशाह के समय में इसे इल्म-खाना कहते थे। एक मराठी इतिहासवेत्ता तालीम-खाना का अनुवाद कुश्ती का स्कूल करता है।

(५७) किराया और मजदूरी का विभाग (किराया वा आजूरा)

(५८) खेल (चौगान, चौपड़ आदि) [आईने अकबरी, पृ० २९७-३०७]

(५९) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में एक विभाग था जिसे वेवा-खाना कहते थे। यह विभाग सम्राटों की विधवाओं के भरण-पोषण के लिए था जो दिल्ली के उपनगर सोहागपुरा[२] में रहती थीं।

(च) सम्राट् की निजी सेवा के लिए—

(६०) भोजनालय (मतवख अथवा बावर्ची-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ५७, तथा मराठी]

(६१) शराब एवं तत्सम्बन्धी पात्रों का भण्डार (आबदार-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ५५, तथा मराठी]। कुछ फारसी ग्रन्थों में 'शरबत-खाना' पढ़ा जाता है किन्तु अन्तिम शब्द का अर्थ 'मद्य-भण्डार' नहीं हो सकता है। मराठी इतिहासों में "शरबत-खाना और शराबी-खाना" का भी उल्लेख है।

(६२) फल (मेव-खाना) [आईने अकबरी, पृ० ६४]

(६३) भाण्ड-खाना (मिट्टी के बड़े पात्र)

(६४) साहत-खाना (पाखाना)

(६५) कौड़ियों का गोदाम (सबसे छोटे सिक्कों के रूप में प्रयोग करने के लिए), खर-मुहरखाना।

(६६) चर्खीखाना (आग्नेय चर्खियों का गोदाम)। इसके लिए 'खर्चखाना' के सम्भव पाठ को मैं अस्वीकार करता हूँ।

(६७) मजमुआ-खाना (? विविध प्रकार की वस्तुओं का गृह)

जवाविते आलमगीरी में उपर्युक्त पाँच का उल्लेख है जिसमें इनके अतिरिक्त ९ और कारखानों के अस्पष्ट नाम हैं। मराठी इतिहासों में तीन और कारखानों का नाम है, जो इस प्रकार हैं :

(६८) अम्बर-खाना अथवा अन्न-भण्डार

(६९) जरायत अथवा जिन्स-खाना (यह जिन्स-खाना मुग़ल-साम्राज्य के अजनास विभाग के समकक्ष है। अर्थात् वह गोदाम जहाँ से मनसबदारों को आंशिक भुगतान के रूप में वस्तुएँ दी जाती थीं।)

(७०) नाटक-खाना। साहत-खाना अथवा शरबत-खाना के अतिरिक्त पहले ही दूसरे शीर्षकों के अन्तर्गत इस पर विचार किया गया है। अफीफ कृत तारीखे फीरोजशाही का मुद्रित फारसी पाठ शक्र-खाना और जराद-खाना (जिसे मैं

---

[२] ब्रिटिश म्युजियम, फारसी पाण्डुलिपि, ६५९८, फोलियो ५५अ। इरविन कृत 'लेटर मुग़ल्स', जिल्द १, पृ० २५४एन।

क्रमशः नुक़्र और ज़रदोज के रूप में शुद्ध करता हूँ) तथा रिकाब-ख़ाना और तश्तदार-ख़ाना के अतिरिक्त कोई नया नाम नहीं देता है। तश्तदार-ख़ाना[3] का तात्पर्य रकाबियों और बड़े बर्तनों के गोदाम से है जिसे ज़वाबित्ते आलमगीरी द्वारा बावर्ची-ख़ाने में शामिल किया गया है। अख़बाराते-दरबार-ए-मुअल्ला में तीन दूसरे नामों का भी उल्लेख है जो इस प्रकार है :—(१) शोरा-ख़ाना,[४] (२) बुलबुली-ख़ाना (गाने वाली चिड़ियों का विभाग),[५] और (३) 'इलुर-ख़ाना'। 'युज-ख़ाना' (तेंदुओं अथवा कुत्तों का विभाग) उपर्युक्त संख्या ८ का अशुद्ध रूप हो सकता है।

---

3 तश्तदार उस नौकर को कहते हैं जो हाथ धोते समय हाथों पर पानी डालता है। इसे बड़ा बर्तन पकड़ने वाला और आफताब्ची भी कहते हैं।

४ शोरा (पेय वस्तुओं को ठण्डा करने वाला क्षार)।

५ दिल्ली के उस भाग को जहाँ पर राजकीय गाने वाली चिड़ियों को रखा जाता था तथा जहाँ पर सुलताना रजिया की क़ब्र है, आज भी बुलबुली-ख़ाना कहते हैं।

अध्याय १२

औरंगजेब के मालगुजारी सम्बन्धी नियम

१०७९ हिजरी सन् (१६६९ ई०) में गुजरात के दीवान मुहम्मद हाशिम के नाम जारी किया गया औरंगजेब का फरमान

वर्तमान तथा भविष्य के अधिकारियों एवं भारतीय साम्राज्य के कोने-कोने के कर-संग्रह करने वालों (आमिल) को शुभ्र विधि (luminous law) एवं देदीप्यमान धर्म के अनुकूल निश्चित ढंग से तथा निश्चित अनुपात में और विशुद्ध एवं विश्वसनीय परम्पराओं का पालन करते हुए इस धार्मिक आदेश द्वारा स्वीकृत तथा मान्य बातों के अनुसार महालों से मालगुजारी तथा दूसरी देय (dues) वस्तुएँ संग्रह करनी चाहिए। उन्हें प्रति वर्ष नये आदेशों की माँग नहीं करनी चाहिए अपितु विलम्ब एवं उल्लंघन को अपनी ऐहिक तथा पारलौकिक लज्जा (पृ० ११३ब)[1] का कारण समझना चाहिए।

पहला—उन्हें किसानों पर कृपा करनी चाहिए, उनसे उनका कुशलक्षेम पूछना चाहिए और स्वयं न्यायपूर्वक एवं बुद्धिमत्ता से इस बात का प्रयास करना चाहिए कि वे आनन्दपूर्वक तथा हृदय से खेती की उन्नति करने का यत्न कर सकें और प्रत्येक कृषि-योग्य भूमि में खेती की जा सके।

[टीका, पृ० ११३ब हाशिया—पहली धारा में उल्लिखित बातों से सम्बन्धित सम्राट् की इच्छा है कि "मित्रता और सुप्रबन्ध का प्रदर्शन करो। ये

---

[1] कोष्ठबद्ध पृष्ठ बर्लिन स्टेट लाइब्रेरी की पाण्डुलिपि के हैं (पर्ट्स द्वारा तैयार की गयी पुस्तकों की सूची में संख्या १५ (९), जुज ११२ब-१२५अ, तथा १५ (२३), जुज २६७अ-२७२अ)। केवल इसी में ऐतिहासिक घटना का धारावाहिक टीका सहित वर्णन है। (यह भी सन्देहवर्द्धक है।) मीराते अहमदी, जिल्द १, पृ० २६८-२७२ में हाशिम को दिये गये फरमान का मूल पाठ मुद्रित है। दूसरा फरमान भी बिब० नाट० (Bib. Nat.) पेरिस पाण्डुलिपि सप्लीमेण्ट, ४७६ (फोलियो १३फ) तथा आई० ओ० एल० लन्दन पाण्डुलिपि में उपलब्ध है।

ही खेती की वृद्धि के कारण हैं और मित्रता इसी में निहित है कि तुम किसी भी नाम अथवा प्रथा के बहाने निश्चित धन और दर से अधिक एक दाम अथवा दरहम न लो। कोई भी व्यक्ति न तो प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट दे और न उसे सताये। स्थानीय प्रबन्धकों को अधिकारों का रक्षक एवं (इन आदेशों का पालन करने में) ईमानदार होना चाहिए।"]

दूसरा—वर्ष के आरम्भ में, यथासम्भव, प्रत्येक किसान की दशा से परिचित हो जाओ और यह जान लो कि वह खेती करने में व्यस्त है अथवा नहीं। यदि वे खेती कर सकते हैं तो उन्हें प्रलोभन तथा दया का आश्वासन देकर खेती के काम में लगाओ और यदि वे इस कार्य में कोई सहायता चाहते हों तो उन्हें वह सहायता दे दो। किन्तु यदि [illegible] के पश्चात् तुम्हें यह ज्ञात हो जाय कि कृषि-कर्म करने के योग्य होने तथा वर्षा होने पर वे खेती नहीं करते हैं तो तुम्हें उन्हें इसके लिए प्रेरित करना चाहिए, उन्हें [illegible]काना चाहिए और शक्ति का प्रयोग करना चाहिए तथा पीटना भी चाहिए। ज[illegible] पर एक निर्देशित भू-भाग (खराजे-मुअज्जफ) के लिए अपरिवर्तनीय (unalte[illegible]ble) दर से मालगुजारी निश्चित है, वहाँ के किसानों को सूचित कर दो कि (पृ० ११५अ) यह उनसे अवश्य ली जायगी, चाहे वे खेती करें अथवा न करें। यदि तुम्हें यह ज्ञात हो कि किसान खेती के उपकरणों को प्राप्त करने मे असमर्थ हैं तो आवश्यक जमानत लेकर तकावी के रूप में राज्य की ओर से उन्हें अग्रिम धन (advance) दे दो।

[टीका, पृ० ११४अ—द्वितीय धारा से यह सिद्ध होता है कि किसानों का एकमात्र कार्य खेती करना और इस प्रकार राज्य को मालगुजारी देना तथा उपज का अपना भाग लेना था। यदि उनके पास खेती के साधनों का अभाव है तो उन्हें शासन से तकावी मिलनी चाहिए क्योंकि बादशाह ही भू-स्वामी है अतः यह उचित है कि जब किसान लाचार हो जायें तो उन्हें कृषि-सामग्री अवश्य दी जानी चाहिए। सम्राट् की इच्छा सर्वोपरि है। धमकी देने, मारने तथा सुधारने के लिए आदेश इसी दृष्टि से दिया जाता है क्योंकि बादशाह ही स्वामी है और वह सदैव दया एवं न्याय करना चाहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रजा, अपने ढंग से, खेती की वृद्धि करने में घोर परिश्रम करे जिससे नित्यप्रति इसकी उन्नति हो सके। इसमें राज्य और प्रजा दोनों का ही लाभ है।]

तीसरा—निश्चित नकद मालगुजारी से सम्बन्धित—यदि किसान इतना निर्धन है कि वह कृषि-यन्त्रों को एकत्र नहीं कर सकता है अथवा भूमि को परती

छोड़कर भाग जाता है तो उस भूमि को दूसरे किसान को पट्टा कर दो अथवा स्वेच्छा से आसामी के रूप में खेती के लिए दे दो। पट्टे की हालत में पट्टेदार से अथवा स्वयं खेती करने की स्थिति में मालिक के अंश में से मालगुजारी ले लो। यदि अतिरिक्त भाग शेष रह जाता है तो उसे मालिक को दे दो अथवा पहले मालिक के स्थान पर दूसरे मालिक को दे दो जिससे वह खेती करके मालगुजारी दे सके और उपज के आधिक्य का उपभोग कर सके। जब कभी भी पूर्ववर्ती मालिक पुनः खेती करने के योग्य हो जायँ तो उन्हें भूमि वापस कर दो। यदि कोई व्यक्ति (पृ० ११५व) भूमि को परती छोड़कर भाग जाता है तो चालू वर्ष के समाप्त होने पर इसे पट्टे पर दे दो।

[टीका, पृ० ११४ब—पट्टा करने, स्वयं खेती के लिए किसानों को सौंपने, (पट्टे की हालत में) पट्टेदार से और (स्वयं) खेती करने की दशा में मालिक के भाग से मालगुजारी लेने तथा मालिक (पहले किसान) को आधा देने के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसमें 'मालिक' शब्द का अर्थ 'भू-स्वामी' नहीं अपितु "खेत की उपज का स्वामी" है क्योंकि यदि 'मालिक' शब्द का अर्थ 'भू-स्वामी' होता तो वह दरिद्रता तथा कृषि-सामग्री के अभाव के कारण भाग नहीं जाता अपितु अपनी भूमि को बेच देता और निम्नलिखित दो तरीकों में से एक के द्वारा अपने कष्ट को दूर करने का यत्न करता—(१) क्रय करने वाले पर सरकारी मालगुजारी देने का भार सौंपता, अथवा (२) अपने स्वामित्व के अधिकार को बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता। जहाँ तक "पहले मालिक के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को स्थानापन्न करने" का सम्बन्ध है, एक मालिक का स्थानापन्न उसके उत्तराधिकारी के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता और यही स्वामित्व का विशिष्ट लक्षण है। इसलिए यहाँ पर प्रयुक्त 'स्थानापन्न' शब्द का अर्थ "उपज के मालिक का स्थानापन्न" है। किन्तु उस परिस्थिति में जबकि एक व्यक्ति अपना धन व्यय करके शासन से अनुमति प्राप्त कर लेने के पश्चात् एक बंजर भूमि में खेती करता है जिसकी पहले मालगुजारी नहीं दी गयी थी और इसकी अनुमानित मालगुजारी स्वीकार कर राज्य को देने लगता है तो ऐसा व्यक्ति उस भूमि पर आसामी का अधिकार रखता है क्योंकि वही उसे सुधारने का एजेण्ट है। वास्तविक मालिक वही है जो मालिक (अर्थात् बादशाह) के लिए स्थानापन्न उत्पन्न कर सकता है। यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि "जिसकी लाठी उसकी भैंस"। इस कथन अर्थात् "(उपज का) आधा मालिक को दे दो और एक साल के बाद किसी को भी खेत पट्टा न

पर खराजे-मुकासेमा न लगायी गयी हो और उसमें कोई फसल भी न होती हो तो मालिक को दसवें भाग अथवा मालगुजारी के लिए तंग न करो। किन्तु यदि मालिक दरिद्र हो तो उसे तकावी देकर खेती करने में लगाओ।

पाँचवाँ—जहाँ तक एक रेतीली भूमि (वादिया) का सम्बन्ध है, यदि मालिक ज्ञात है तो उसे उसके पास छोड़ दो; किसी दूसरे को इस पर कब्जा न करने दो (पृ० ११७ब)। यदि मालिक अज्ञात हो और उस भूमि में खनिज पदार्थों (औदात) की सम्भावना न हो तो, शासन की नीति के अनुसार, उस (भूमि) को किसी भी व्यक्ति को दे दो जिसे तुम उसकी देखभाल करने के योग्य समझते हो। जो कोई भी इसे कृषि-योग्य बनाये, उसे ही इस भूमि का मालिक मान लो और उससे भूमि न छीनो।[3] यदि उस भूमि में खनिज पदार्थ हो तो ऐसे प्रत्येक कार्य की मनाही कर दो जिससे खान खोदने में बाधा हो अर्थात् उस भूमि में लाभ प्राप्त करने के निमित्त खेती करने की आज्ञा न दो और इस पर न तो किसी को काबिज होने दो और न किसी को इसका मालिक ही मानो।

यदि बंजर भूमि का सम्पूर्ण (दरवस्त, अविभाजित) क्षेत्र किसी कारण-वश स्थानान्तरित कर दिया गया हो और किसी दूसरे कारणवश एक विपरीत परिस्थिति उत्पन्न हो जाती हो तो उस समय तक उसपर काबिज व्यक्ति को ही उस भूमि का मालिक समझो और किसी दूसरे व्यक्ति को उस पर कब्जा न करने दो।

छठा—उन स्थानों पर जहाँ पर काश्त की हुई भूमि पर न तो दसवाँ भाग ही और न मालगुजारी ही लगायी गयी हो, उन पर पवित्र विधि (Holy Law) के अनुसार जो कुछ भी निश्चित होना चाहिए, निश्चित कर दो। यदि मालगुजारी लगानी हो तो इसे उतनी ही लगाओ (पृ० ११९अ) जिसके भुगतान करने में किसान बरबाद न हो जायँ और किसी भी प्रकार वह आधी उपज से अधिक न हो, चाहे वह भूमि अधिक देने के योग्य ही क्यों न हो। जहाँ पर रकम निश्चित कर दी गयी हो, तो उसे स्वीकार कर लो। यदि वह भूमि 'खराज' हो तो सरकारी अंश आधे से अधिक न बढ़ने पाये और ऐसा न हो कि उसकी वसूली से किसान बरबाद हो जायँ। अन्यथा पहले खराज को कम कर दो और उतना ही निश्चित करो जिसे किसान सुविधापूर्वक दे सकें। यदि भूमि निश्चित रकम से अधिक देने के योग्य हो तो अधिक न लो।

---

[3] परती भूमि को उपजाऊ बनाने वाले काश्तकार (आसामी) के अधिकारों के सम्बन्ध में **एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम**, जिल्द २, पृ० ४५७ देखिए।

[टीका, पृ० ११८अ—छठी धारा में सम्राट् की यह इच्छा है कि मालगुजारी उतनी ही निश्चित की जानी चाहिए जिसके भुगतान करने में किसान तवाह न हो जायँ। भूमि बादशाह की है किन्तु इसकी काश्त किसानों पर निर्भर करती है। जब कभी भी किसान अपना स्थान छोड़कर चले जाते हैं और तबाह हो जाते हैं अर्थात् जब वे अधिक वसूली तथा अधिकारियों के अत्याचारों के कारण कुचल जाते हैं तो एक व्यक्ति साधारणतया सोच सकता है कि काश्त की क्या दशा होगी। यही कारण है कि इस धारा में आवश्यक आदेश निकाले गये हैं।]

सातवाँ—यदि किसान राजी हों तो तुम निश्चित मालगुजारी (मुअज्जफ) को उपज के अंश (मुकासेमा) में अथवा मुकासेमा को मुअज्जफ में बदल सकते हो। यदि वे राजी न हों तो तुम ऐसा नहीं कर सकते हो।

[टीका—किसानों की स्वेच्छा से एक प्रकार की मालगुजारी को दूसरी में बदलने का आदेश उनकी सुविधा के लिए है।]

आठवाँ—निश्चित मालगुजारी को वसूल करने का समय हर प्रकार के अनाज के काटने के बाद का समय है। इसलिए जब कोई फसल कटने योग्य हो जाती हो तो इसके लिए उचित मालगुजारी का हिस्सा वसूल कर लो।

[टीका—इसका तात्पर्य यह है कि जब कभी मालगुजारी फसल कटने के समय माँगी जाती है तो किसान, बिना किसी परेशानी के, मालगुजारी देने के लिए पर्याप्त उपज का अंश बेच सकते हैं और इस प्रकार राज्य को देय धन का भुगतान कर सकते हैं। किन्तु यदि इस समय के पूर्व ही माँग की जाती है तो इससे किसान परेशान, उद्विग्न और व्याकुल हो उठते हैं। इसलिए सम्राट् का यह आदेश उनकी सुविधा के लिए है।

नवाँ—निश्चित नकद मालगुजारी के योग्य आराजी भूमि में यदि बोये हुए खेत पर कोई दुर्निवारणीय (non-preventable) आपत्ति आये तो तुम सावधानी के साथ पूछताछ करो और सच्चाई तथा घटना की वास्तविकता के अनुकूल संकट की मात्रा तक छूट दे दो और शेष में से (पृ० ११६ब) पैदावार वसूल करते समय इस बात का ध्यान रखो कि किसानों के लिए कुल उपज का आधा भाग बाकी रह जाय।

दसवाँ—निश्चित नकद मालगुजारी वाली आराजी—यदि खेती करने की क्षमता रखने वाला कोई व्यक्ति किसी प्रकार की अड़चन के न उपस्थित होने पर भी अपने खेत को बिना खेती किये हुए छोड़ देता है तो (इसकी)

मालगुजारी (उसके कब्जे के) किसी दूसरे वेजे[४] (खेत) से लो। उन खेतों में जहाँ बाढ़ आ गयी हो, अथवा जहाँ पानी ही न बरसा हो, अथवा कटने के पहले ही फसल किसी अनिवारणीय तूफान के कारण नष्ट हो गयी हो जिसके फलस्वरूप किसान न तो कुछ पा ही सका हो और न उसके पास पर्याप्त समय ही हो कि वह दूसरा साल आरम्भ होने के पहले ही दूसरी फसल तैयार कर सके, तो ऐसी परिस्थिति में मालगुजारी अदा की हुई समझो। किन्तु यदि विपत्ति फसल कटने के पश्चात् आयी हो जो चाहे मवेशियों द्वारा खा जाने की भाँति यह निवारणीय हो अथवा उसके आने के पश्चात् दूसरी फसल तैयार करने के लिए पर्याप्त समय शेष रह जाता है, तो मालगुजारी वसूल कर लो।

[टीका—यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसी जमीन है जिस पर खराजे मुअज्जफ लगा दिया गया है और उसके पास इसे जोतने-बोने की क्षमता है तथा उसके जोतने-बोने में किसी प्रकार की अड़चन भी नहीं पड़ती है किन्तु फिर भी वह इसे बिना जोते-बोये छोड़ देता है तो उस व्यक्ति की किसी दूसरी जमीन से उस जमीन की मालगुजारी ले लो क्योंकि जोतने और बोने की क्षमता रखते हुए तथा ऐसा करने में बिना किसी अड़चन के होने पर भी उसने अपनी जमीन बेकार कर रखी है। यदि किसी व्यक्ति की किसी जमीन में बाढ़ आ गयी है अथवा उसमें बरसाती पानी रुका पड़ा है जिसके कारण फसल की सिंचाई नष्ट होने से फसल बरबाद हो गयी है अथवा उसकी फसल पर उसके पकने और कटने के पूर्व ही कोई अनिवारणीय विपत्ति आ गयी है जिसके फलस्वरूप न तो उसे उपज प्राप्त हुई है और न उसके पास उसी साल एक दूसरी फसल तैयार करने का समय ही रह गया है, तो ऐसी परिस्थिति में मालगुजारी न वसूल करो।]

ग्यारहवाँ—यदि निश्चित मालगुजारी वाली किसी जमीन का मालिक इस पर काश्त करता हो किन्तु वह उस साल की मालगुजारी अदा करने के पूर्व ही मर जाय और उसके वारिस को खेत (पृ० १२१अ) की पैदावार प्राप्त हो तो उससे मालगुजारी वसूल कर लो। किन्तु ऐसी परिस्थिति में कुछ भी न लो जबकि उपर्युक्त व्यक्ति जोतने-बोने के पहले ही मर जाय और (उस खेत को जोतने-बोने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के पास भी) उस वर्ष पर्याप्त समय नहीं रह जाय।

---

४ वेजे जमीन—विलसन: ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ६६ देखिए। "विभिन्न उपयोगों के लिए अलग की हुई कुछ जमीन अथवा वेजे जमीन।" [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० २७६]

[टीका, पृ० १२०अ—"जमीन के मालिक की मृत्यु, उसके उत्तराधिकारियों से मालगुजारी लेने और जोतने-वोने के पूर्व ही इसके मर जाने पर उसके उत्तराधिकारियों से मालगुजारी न माँगने" के सम्बन्ध में जो कुछ प्रकाशित किया गया है वह स्पष्ट रूप से ठीक है क्योंकि यदि जमीन का मालिक अर्थात् सही शब्दों में फसल का मालिक जोतने-वोने के पहले ही मर गया हो और यद्यपि उसके उत्तराधिकारियों को उससे वसीयतनामे के रूप में कुछ मिला भी हो, फिर भी उनसे मालगुजारी वसूल करना औचित्य के परे है। जमीन का (वास्तविक) मालिक तो वादशाह है और फसल के मालिक अर्थात् जोतने-वोने के पूर्व ही मर जाने वाले किसान और उसके उत्तराधिकारियों को न तो कोई वस्तु ही मिली है और न फसल ही, जो मालगुजारी माँगने का कारण हो सके अतः उनसे कुछ भी वसूल नहीं करना चाहिए।]

वारहवाँ—**निश्चित नकद प्राक्कलन से सम्बन्धित**—यदि मालिक अपनी जमीन पट्टे पर अथवा उधार देता है और पट्टेदार अथवा उधार लेने वाला इसमें काश्त करता है तो मालिक से मालगुजारी लो। यदि पट्टेदार उसमें वाग लगाता है तो उससे मालगुजारी लो। किन्तु यदि कोई व्यक्ति खराजी भूमि पर अधिकार कर लेने के पश्चात् इसे देने से इंकार करता है और मालिक इसके विरुद्ध गवाह दे सकता है, तो यदि जवरदस्ती अधिकार करने वाले ने इसमें काश्त की है तो उससे मालगुजारी लो किन्तु यदि उसने ऐसा नहीं किया है तो उनमें से किसी से भी मालगुजारी न लो। यदि वलपूर्वक अधिकार करने वाला वलपूर्वक अधिकार को अस्वीकार करता है और मालिक गवाह भी नहीं दे सकता है तो मालिक से मालगुजारी लो। वन्धक वाले मामलों में वलपूर्वक अधिकार सम्वन्धी लागू होने वाले आदेशों के अनुसार कार्य करो। यदि वह व्यक्ति जिसके पास भूमि वन्धक रखी गयी है, वन्धक रखने वाले की आज्ञा के विना ही उसमें काश्त करने लगता है (पृ० १२१व) तो पहले वाले व्यक्ति से मालगुजारी लो।

[टीका, पृ० १२०व—इस आदेश की निम्नलिखित दो प्रकार से व्याख्या की जा सकती है, अन्यथा इसका कोई अर्थ न होगा। "यदि निश्चित मालगुजारी वाली जमीन का मालिक अपनी जमीन को पट्टे पर अथवा उधार देता है और पट्टेदार अथवा उधार लेने वाला इसमें काश्त करता है तो मालिक से मालगुजारी वसूल करो। यदि पट्टेदार आदि ने इसमें वाग लगाया है तो उससे मालगुजारी लो क्योंकि उसने वाग लगाया है। यदि कोई व्यक्ति खराजी जमीन पर अधिकार कर लेने के पश्चात् इसे अस्वीकार करता है और मालिक के पास

गवाह हैं तो बलात् अधिकार करने वाले द्वारा इसमें काश्त किये जाने की दशा में उससे मालगुजारी लो; किन्तु यदि उसने ऐसा नहीं किया है तो उनमें से किसी से भी मालगुजारी न लो। यदि बलात् अधिकार करने वाला बलपूर्वक अधिकार को अस्वीकार करता है और (१) मालिक के पास गवाह नहीं है तो मालिक से मालगुजारी लो।" यह तो एक प्रकार की व्याख्या है। दूसरे प्रकार की व्याख्या इस तरह है—(२) "यदि मालिक के पास गवाह हैं, तो मालिक से मालगुजारी लो", अर्थात् बलपूर्वक अधिकार करने वाला बलपूर्वक अधिकार को अस्वीकार करता है और मालिक अपनी निजी काश्त सिद्ध करने के लिए गवाह देता है तो मालिक को ही मालगुजारी देनी चाहिए।

"बन्धक की दशा में बलपूर्वक अधिकार के सम्बन्ध में दिये गये आदेशों के अनुसार कार्य करो। यदि वह व्यक्ति जिसके यहाँ बन्धक रखा गया है बन्धक रखने वाले की आज्ञा के बिना ही काश्त कर लेता है, (तो पहले वाले व्यक्ति से ही मालगुजारी माँगो)" क्योंकि यदि वह व्यक्ति जिसके यहाँ बन्धक रखा गया है, बन्धक रखने वाले की अनुमति से काश्त करता तो बन्धक रखने वाले को ही मालगुजारी देनी पड़ती, क्योंकि (यहाँ पर) काश्त करने का अधिकार बन्धक में सम्मिलित है। किन्तु यदि वह बन्धक रखने वाले की अनुमति के बिना ही काश्त करने लगता है तो उसे ही मालगुजारी देनी चाहिए क्योंकि वस्तुतः काश्त करने का अधिकार बन्धक न रखकर केवल भूमि ही बन्धक रखी गयी है।]

तेरहवाँ—**निश्चित नकद मालगुजारी के अन्तर्गत आने वाली भूमि से सम्बन्धित**—यदि कोई व्यक्ति अपनी ऐसी खराजी भूमि को बेच देता है जो कि साल भर काश्त करने के योग्य है तो यदि साल में उससे एक ही फसल होती है और उस पर अधिकार कर लेने के पश्चात् क्रय करने वाले को साल के शेष भाग में इसमें काश्त करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है और उसे कोई रोकने वाला नहीं है, तो इससे मालगुजारी वसूल करो अन्यथा बेचने वाले से मालगुजारी लो। यदि इसमें दो फसलें होती हैं और क्रय करने वाले ने पहली तथा बेचने वाले ने दूसरी फसल काट ली है तो कुल मालगुजारी को दोनों में बाँट दो। किन्तु यदि (विक्रय के समय) जमीन में फसल पककर तैयार हो तो बेचने वाले से ही मालगुजारी लो।

[टीका, पृ० १२२अ—यदि कोई व्यक्ति अपनी जमीन अर्थात् अपनी जमीन की फसल बेचना चाहता है और क्रय करने वाले को साल के भीतर ही इसमें काश्त करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है, तो क्रय करने वाले से ही

मालगुजारी लो। यदि इसमें दो फसलें होती हैं जिसमें से एक को बेचने वाले ने काट लिया है और दूसरी को क्रय करने वाले ने, तो मालगुजारी बांट दो और दोनों से वसूल कर लो। यदि खेत में फसल पककर तैयार हो तो बेचने वाले से मालगुजारी लो क्योंकि यदि फसल पक गयी है और बेचने वाले ने इसे जान-बूझकर बेच दिया है तो यह भी निश्चित है कि उसने पके हुए अनाज का मूल्य अवश्य ले लिया होगा, अतः बेचने वाले को ही मालगुजारी देनी चाहिए।]

चौदहवाँ—निश्चित नकद मालगुजारी के अन्तर्गत आने वाली भूमि से सम्बन्धित—यदि कोई व्यक्ति अपनी जमीन में एक मकान बनाता है तो उसे उस भूमि पर पहले का निश्चित लगान देना चाहिए; और यदि वह उस जमीन में ऐसे पेड़ लगाता है जिनमें फल नहीं आते हैं तो भी उसे वही लगान देना पड़ेगा। यदि वह ऐसी भूमि को जिस पर उसे कृषि-योग्य मानकर निश्चित लगान लगा दिया गया है, बाग (पृ० १२३अ) लगाने के लिए तैयार करता है और सारी जमीन में खेती करने के योग्य स्थान छोड़े बिना ही फलदार वृक्ष लगाता है तो यद्यपि उसमें अभी फल न लगते हों फिर भी उससे पौने तीन रुपये ले लो जो कि बागों के लिए अधिकतम लगान है। किन्तु अंगूरों तथा बादामों के पेड़ लगाने पर उनमें फल न आने तक उससे केवल साधारण लगान लो और जब उनमें फल लगने लगें तो उस हालत में पौने तीन रुपये ले लो, चाहे एक बीघे (शाहजहाँ द्वारा प्रचलित गजों के अनुसार ४५×४५ व धार्मिक गजों के अनुसार ६०×६०) की उपज साढ़े पाँच रुपये अथवा उससे अधिक हो। ऐसा न होने पर (वृक्षों की) वास्तविक उपज का केवल आधा ही लो। यदि उपज का मूल्य चौथाई रुपये से कम हो जैसा कि उस दशा में सम्भव है जबकि अनाज एक रुपये का पाँच शाहजहांनी सेर मिलता हो और उपज का राजकीय भाग केवल एक सेर हो[५] (?), तो तुम्हें इस (चौथाई रुपये) से कम लगान नहीं लेना चाहिए।

यदि कोई नास्तिक अपनी जमीन को किसी मुसलमान के हाथ बेचता है तो उसके मुसलमान होने पर भी उससे मालगुजारी माँगो।

[टीका, पृ० १२२ब—यदि किसी व्यक्ति के पास निश्चित लगान के अन्तर्गत

---

[५] क्या उसी बात को इस तरह घुमा-फिराकर नहीं कहा गया है कि जबकि जिन्स के रूप में मालगुजारी का मूल्य केवल $\frac{1}{5}$ रुपया हो, तो कम से कम प्राक्कलन के रूप में एक-चौथाई रुपया मानना चाहिए ? ओ० पी० एल० पाण्डुलिपि में "उस धन से कम लो" पाठ का उल्लेख है।

की भूमि हो और वह उसमें मकान बनाता है अथवा फल न देने वाले वृक्षों का बाग लगाता है, तो उसकी मालगुजारी में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए और पूर्व-निश्चित मालगुजारी ही लेनी चाहिए। यदि काश्त की जाने वाली भूमि में बाग लगाया जाता है और उस पर काश्त के योग्य भूमि की मालगुजारी लगायी गयी है तथा फलदार वृक्ष इतने पास-पास लगाये गये हैं कि काश्त के लिए स्थान नहीं बचा है तो वृक्षों में फल न लगने पर भी पौने तीन रुपये ले लो जो कि बाग का (हासिल) देय धन है। किन्तु अंगूर और बादाम के वृक्षों के लगाने पर उनमें फल लगाना न आरम्भ होने पर भी साधारण मालगुजारी ले ली जाती है और जब उनमें फल लगना आरम्भ हो जाता है तो बाग का (हासिल) देय धन लिया जाता है जो कि उस जमीन पर पौने तीन रुपये की दर से निश्चित है, चाहे मालिक के हिस्से सहित एक बीघे की पैदावार साढ़े पाँच रुपये तक पहुँच जाती हो। किन्तु यदि बाग का उक्त देय धन इसके बराबर नहीं होता है तो वास्तविक उपज का आधा ही मालगुजारी[६] के रूप में ले लो। किन्तु यदि उपज के इस आधे भाग का मूल्य चार आने से कम हो—जैसा कि उस दशा में सम्भव है जबकि अनाज का मूल्य एक रुपये का पाँच शाहजहाँनी सेर (?) हो और उपज का राजकीय भाग केवल एक सेर हो—तो (चार आने से) कम मत लो। यदि कोई नास्तिक अपनी जमीन को एक मुसलमान के हाथ बेचता है, तो मुसलमान से ही मालगुजारी वसूल करो क्योंकि वस्तुतः यह उसका अधिकार नहीं था।]

पन्द्रहवाँ—यदि कोई व्यक्ति अपनी जमीन में कब्रिस्तान (पृ० १२३अ) अथवा (वक्फ) दान में सराय बनवाता है तो उसकी मालगुजारी को माफ समझो।

[टीका, पृ० १२४ब—चूँकि कब्रिस्तान तथा सराय बनवाना एक पवित्र कार्य है।

---

६ फसल की बटाई के द्वारा अनाज की कृषि पर सरकार कुल उपज का केवल एक-तिहाई मालगुजारी के रूप में लिया करती थी किन्तु अफीम, ईख, शराब, केला और रुई होने पर एक-चौथाई से लेकर आठवाँ भाग तक लिया करती थी [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० १७६]
मुकासम अथवा बटाई द्वारा भूमि-कर की व्यवस्था पहले के अब्बासी खलीफों द्वारा लागू की गयी थी। मुकासम नामक कर केवल मुख्य फसलों—गेहूँ तथा जौ—पर लगाया गया था। इससे कम महत्त्व की फसलों, फलदार वृक्षों अथवा खजूर पर यह नहीं लगाया गया था। इन पर नकद रुपया लिया जाता था। [**एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, सप्लीमेण्ट, पृ० १५४**]

इसलिए सम्राट् (जनता की) भलाई करने तथा उसे लाभ पहुँचाने के कारण उनसे मालगुजारी वसूल करने के लिए मना करता है। (ऐसी भूमि से) मालगुजारी नहीं ली जानी चाहिए।]

सोलहवाँ—फसल की बटाई (खराजे मुकासेमा) के द्वारा ली गयी मालगुजारी से सम्बन्धित—यदि किसी व्यक्ति के पास—चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान—मालगुजारी वाली भूमि नहीं है किन्तु उसने उसे खरीदा है अथवा बन्धक में रखा है तो उसे उसमें पैदा हुई प्रत्येक वस्तु से लाभ प्राप्त करना चाहिए। उससे मालगुजारी के रूप में उचित अंश वसूल कर लो, किन्तु वह अंश समूची फसल के आधे से न तो अधिक हो और न उसके एक-तिहाई से कम हो। यदि एक-तिहाई कम हो तो इसे बढ़ा दो (और यदि आधे से अधिक हो तो कम कर दो), जो उचित समझो वही करो।

[टीका—यदि कोई व्यक्ति मुकासेमा जमीन का असली मालिक नहीं है किन्तु उसने उसे (खरीद) लिया है अथवा गिरवी रख लिया है, तो उसे उस जमीन में उत्पन्न अनाज को प्राप्त करना चाहिए; चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान। किन्तु इसके साथ यह शर्त है कि रेहन होने पर उसने रेहन करने वाले से उस भूमि पर काश्त करने के लिए अनुमति प्राप्त कर ली हो। इसलिए उस जमीन पर प्राक्कलन के रूप में (पहले से ही) निश्चित अंश उससे वसूल कर लो। किन्तु यह अंश न तो आधे से अधिक हो और न एक-तिहाई से कम। यदि आधे से अधिक हो तो इसे एक उचित अंश तक कम कर दो और यदि एक-तिहाई से कम हो तो इसे एक उचित अंश तक बढ़ा दो।]

सत्रहवाँ—यदि किसी मुकासेमा जमीन का मालिक लावारिस मर जाता है तो इसे पट्टे पर अथवा सीधे स्वयं खेती के लिए देने में मुअज्जफ भूमि के सम्बन्ध में (ऊपर) दिये गये अध्यादेशों के अनुसार कार्य करो।

[टीका—यदि कोई काश्तकार लावारिस मर जाता है तो उस भूमि का प्रबन्ध करने वाले व्यक्ति को उसे पट्टे पर अथवा स्वयं खेती करने के लिए देने में खराजे मुअज्जफ के सम्बन्ध में तीसरे अनुच्छेद में दी गयी विधि के अनुसार कार्य करना चाहिए।]

अठारहवाँ—मुकासेमा जमीन की फसल पर यदि कोई आपदा आये तो मालगुजारी को क्षति के बराबर ही माफ कर दो किन्तु यदि अनाज कटने के पश्चात् अथवा इसके पहले ही आपदा आये तो बचे हुए अंश पर मालगुजारी वसूल करो।

[टीका—सम्राट् प्रजा के सुख का ध्यान रखता है अतएव वह कड़ाई के साथ आदेश देता है कि नष्ट अंश पर किसी प्रकार की मालगुजारी नहीं माँगनी चाहिए; वह केवल अवशिष्ट अंश पर ही वसूल की जानी चाहिए।]

जदुनाथ सरकार की टिप्पणी—उपर्युक्त नियमों को भलीभाँति समझने के लिए अबू यूसुफ के किताबुलखराज के निम्नलिखित अंशों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसमें पूर्ववर्ती खलीफाओं के सिद्धान्तों एवं नियमों का उल्लेख है।

"जहाँ तक सैनिक कार्यों एवं सेवा के उपलक्ष में मिली हुई भूमि (कितै) का प्रश्न है, इनमें से जो प्राकृतिक रूप से सींची जाती हैं, उन्हें दसवाँ, तथा जो बाल्टियों, चमड़े के डोल अथवा चर्खी वाले कुओं से सींची जाती हैं, उन्हें बीसवें भाग से अधिक सिंचाई का मूल्य नहीं देना चाहिए।" **[एम० फैगनन कृत फ्रांसीसी अनुवाद, पृ० ७६]**

"वे सभी लोग, जो बहुत-से देवी-देवताओं के उपासक हैं और जिनके साथ इस्लाम ने इन शर्तों पर सन्धि कर ली है कि वे लोग उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं, अपनी जमीन के बँटवारे के लिए स्वयं तैयार रहते हैं और खराज देते हैं। वे लोग कर देने वाले वर्ग के हैं और जिस भूमि पर उनका अधिकार है, वह खराज की भूमि कहलाती है। वह सभी भूमि जिस पर खलीफा (इमाम) ने बलपूर्वक अधिकार कर लिया है, जीतने वाले (सभी मुसलमानों) में बाँटी जा सकती है और तब वह 'तिथे' (tithe) की भूमि होती है।" **[एम० फगनन कृत फ्रांसीसी अनुवाद, पृ० ६५]**

"विजित देशों में बिना काश्त की हुई परती भूमि, जिन पर न तो कोई मकान है और न किसी का अधिकार ही है, "मृतभूमि" कहलाती है।...... अबू हनीफा का कथन है कि 'वह व्यक्ति जो मृतभूमि में काश्त करने का दावा करता है, तो इमाम (खलीफा) द्वारा इसकी अनुमति दिये जाने पर वह इस भूमि का स्वामी बन जाता है......यदि उसने इमाम के अधिकार-पत्र के बिना ही इस पर काश्त कर ली है तो इमाम स्वेच्छापूर्वक उसे पट्टे पर अथवा जागीर आदि के रूप में......दे सकते हैं अथवा वह जो उन्हें उचित जान पड़े, करें।" **[एम० फैगनन कृत फ्रांसीसी अनुवाद, पृ० ६६]**

"वह व्यक्ति जो मृतभूमि में काश्त करने का दावा करता है...... उसका स्वामी हो जाता है......। वह दसवाँ भाग देने वाली भूमि होने पर दसवाँ भाग अथवा खराज की भूमि होने पर खराज देता है।" **[एम० फैगनन कृत फ्रांसीसी अनुवाद, पृ० ६८]**

"इमाम द्वारा जीते हुए तथा विजित लोगों के हाथ में छोड़े हुए उन स्थानों को जहाँ पर अरब-निवासियों के अतिरिक्त दूसरे लोग बस गये हैं, खराज की भूमि कहते हैं; किन्तु यदि यह भूमि (मुसलमान) विजेताओं के बीच उसके द्वारा वितरित कर दी गयी हो तो दशमांश वाली भूमि होगी।" [एम० फंगनन कृत फ्रांसीसी अनुवाद, पृ० १०४]

एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द ४, पृ० १०५०-१०५१ भूमि-कर सम्बन्धी नियमों का अत्यन्त स्पष्ट विवेचन नहीं करता है।

मालगुजारी-प्रदर्शिका के रूप में रसिकदास करोड़ी को दिया गया सम्राट् औरंगजेब का फरमान

(पृ० २६७अ) मितव्ययी एवं इस्लाम का भक्त रसिकदास राजकीय अनुकम्पा की आशा करता है और जानता है कि—

सम्राट् की सभी इच्छाएँ एवं उद्देश्य कृषि की उन्नति और किसानों तथा सर्वसाधारण की भलाई की ओर ही केन्द्रित हैं। यह ईश्वर की एक अद्भुत सृष्टि एवं उसकी एक धरोहर है।

राजकीय भू-भाग के परगनों तथा जागीरदारों को सैनिक कार्य एवं सेवा के बदले में मिली हुई जागीरों के कार्यालयों में पूछताछ करने के पश्चात् शाही दरबार के एजेण्टों ने रिपोर्ट की है कि चालू वर्ष के आरम्भ में शाही इलाके के परगनों के अमीन गत वर्ष तथा उसके पहले वर्ष की उपज (हासिल) को ध्यान में रखकर मालगुजारी, खेती करने के योग्य भूमि, किसानों की दशा एवं उनकी योग्यता और दूसरी अन्य बातें निश्चित करते हैं। यदि किसी गाँव के किसान इस कार्यवाही से सहमत नहीं होते हैं तो वे फसल कटने के समय पैमाइश कर अथवा फसल[७] के अनुमानित मूल्य के आधार पर मालगुजारी निश्चित करते हैं। कुछ गाँवों में, जहाँ के किसान दुखी अथवा जिनकी पूंजी कम जान पड़ती है, वे आधा, तिहाई, दो-पँचई अथवा उससे कम और अधिक की दर से फसल की बटाई (गल्ला बख्शी) प्रथा का अनुसरण करते हैं। वर्ष के अन्त में वे अपनी तस्दीक, करोड़ी की स्वीकृति (पृ० ५६७ब) तथा चौधरी और कानूनगो के हस्ताक्षर के पश्चात्, नियम और प्रथा के अनुसार, नकद माल-

---

७ कनकूत—"पके हुए अनाज के अनुमान को 'कूत', कहते हैं।" [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० २१६; आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० ४७]

गुजारी की लेखापंजिका (तुमार[८]) को शाही रिकार्ड के कार्यालय में भेज देते हैं। किन्तु वे वहाँ पर काश्त तथा रबी और खरीफ की फसलों में होने वाली वस्तुओं के ब्यौरे के साथ प्रत्येक परगने की भूमि के रिकार्ड को नहीं भेजते हैं। इस प्रकार यह दिखलाने के लिए कि गत वर्ष फसल का कौनसा भाग वसूल किया गया, कितना भाग बाकी था, गत वर्ष और इस वर्ष में कितना अन्तर था, कमी थी, अथवा अधिकता थी और प्रत्येक मौजे के किसानों—पट्टेदार, काश्तकार तथा दूसरे लोग—की क्या संख्या थी, इस सम्बन्ध में कोई रिकार्ड नहीं भेजते हैं। ऐसे कागज प्रत्येक महाल की स्थिति तथा वहाँ कार्य करने वाले अधिकारियों का सच्चा विवरण प्रस्तुत करते जो महाल की वसूली में कमी होने पर, उसकी मालगुजारी का अनुमान कर लिये जाने के पश्चात् वर्षा की कमी होने, ओला पड़ने, अनाज का अभाव होने आदि बातें बनाकर असली मालगुजारी में से बहुत बड़ा भाग कम कर देते हैं।

यदि वे प्रत्येक गाँव के काश्तकारों तथा फसलों की जाँच कर लेने के पश्चात् मितव्ययता से (अथवा सूक्ष्म बातों पर ध्यान देकर) कार्य करते और कृषि-योग्य सभी भूमि में खेती कराने तथा खेती और कुल मालगुजारी में वृद्धि का स्वयं यत्न करते जिससे परगनों में काश्त होती और वे आबाद होते, लोग सम्पन्न होते तथा मालगुजारी में वृद्धि होती, तो किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर भी काश्त की अधिकता मालगुजारी में होने वाली किसी भी कमी को दूर कर देती।

अतएव सम्राट् आदेश देता है कि—

तुम्हें अपने दीवानों और अमीनों के अधीनस्थ परगनों के प्रत्येक गाँव की वास्तविक स्थिति—अर्थात् इसमें कितनी भूमि कृषि-योग्य है (पृ० २६८अ), कुल भूमि के कितने भाग में खेती होती है और कितने भाग में खेती नहीं होती है, प्रति वर्ष कितनी फसल होती है और बिना खेती के पड़ी हुई भूमि का क्या कारण है—की जाँच कर लेनी चाहिए।

तुम्हें यह भी ज्ञात करना चाहिए कि सम्राट् अकबर के साम्राज्य में टोडरमल के दीवानी शासन के अन्तर्गत मालगुजारी वसूल करने की क्या प्रथा थी ? क्या नियमानुसार लगाये गये सायर-कर (sair-cess) का धन उतना ही है अथवा बादशाह सलामत के सिंहासनारूढ़ होने पर इसमें वृद्धि हो गयी है ?

---

८ तुमार=लगान का रजिस्टर।

किश्तों को वसूल करने के लिए करोड़ियों को प्रेरित करो और तुम उनकी वसूली से सम्बन्धित प्रबन्ध के विषय में स्वयं पूर्ण रूप से परिचित रहो जिससे आमिलों की धूर्तता अथवा लापरवाही से वसूली न रुक जाय।

छठवाँ—जब कभी भी तुम किसी गाँव में परगनों की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने के लिए जाओ, तो फसलों की दशा और उनके प्राकृतिक रूप, किसानों की क्षमता तथा मालगुजारी की मात्रा पर दृष्टिपात कर लो। यदि गाँव वालों के बीच कुल मालगुजारी का ठीक-ठीक बँटवारा करने में प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्याय किया गया है तो अच्छा है। किन्तु यदि चौधरी, मुकादम अथवा पटवारी ने उनके साथ अन्यायपूर्ण कार्य किया है तो किसानों को सांत्वना दो (पृ० २६६अ) और उन्हें उनका देय धन दे दो। हड़पने वालों के हाथों से अवैधानिक रूप से काम में ली गयी भूमि (गुंजाइश) को छीन लो। संक्षेप में सम्पत्ति के विभाजन तथा वर्तमान वर्ष की दशा को निश्चित करने में ईमानदारी तथा अत्यन्त ध्यान से लगे रहने के पश्चात् विस्तारपूर्वक सम्राट् के पास लिखो जिससे बादशाह सलामत अमीनों की सच्ची सेवा और इस वजीर (रसिकदास) के प्रशंसनीय शासन को जान जायँ।

सातवाँ—राज-भूमि के प्रबन्ध के लिए, विभाग की प्रथा के अनुसार, लगान-मुक्त भू-स्वामित्व, नानकार और इनआम[११] की इज्जत करो। यह जान लो कि सरकारी आमिलों ने क्या वृद्धि की है (?), अर्थात् जागीर के अनुदान के आरम्भ से उन लोगों ने कितना बकाया छोड़ रखा है और (फसल की) कमी तथा (दैवी) आपत्ति के बहाने कितना अंश कम कर दिया है। इन बातों को ध्यान में रखकर (अवैधानिक रूप से बढ़ी हुई) अतीत की (लगान-मुक्त भूमि) को वापस ले लो और भविष्य के लिए उन्हें मना कर दो जिससे वे परगनों को पुनः अपनी ठीक दशा में ला सकें। सत्य बात सम्राट् से कही जायगी तो सब के साथ उनकी भक्ति के अनुसार अनुग्रह प्रदर्शित किया जायगा।

आठवाँ—खजांची के कार्यालय (फोतखाना) में फोतदारों को केवल आलमगीरी सिक्कों को स्वीकार करने का आदेश दो। किन्तु यदि ये उपलब्ध

---

[११] इनाम—फकीरों तथा साधारण गायकों को दिया हुआ अत्यन्त तुच्छ तथा अति साधारण भूमि-उपहार। [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० १८६] नानकार—एक व्यक्ति के पोषण के निमित्त दिया गया भूमि-उपहार [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० १४८]

न हों तो बाजार में प्रचलित शाहजहाँनी रुपये को बट्टे (आबवाब) के साथ ले लो। कम तोल वाले किसी भी सिक्के को फौतखाने में न लो क्योंकि वह बाजार में नहीं चलेगा। किन्तु यदि यह ज्ञात हो कि खराब सिक्के लौटाने से वसूली रुक जायगी, तो उन्हें प्रचलित सिक्कों में बदलने के लिए किसानों से ठीक और उचित बट्टा ले लो और उनके सामने ही उन्हें बदल दो।

नवाँ—(ईश्वर न करे ऐसा हो) यदि पृथ्वी अथवा आकाश से महल पर कोई आपत्ति (पृ० २७०ब) आती है तो अमीनों और आमिलों को अत्यन्त सावधानी और ईमानदारी से खड़ी फसल की निगरानी करने के लिए कड़ाई के साथ प्रेरित करो। बोये हुए खेतों की जाँच कर लेने के पश्चात् वे वर्तमान और विगत वर्षों की पैदावार (हस्त-ओ-बूद)[12] के तुलनात्मक विवरण के आधार पर हानि का सावधानी के साथ अन्दाजा लगा लें। तुम्हें किसी ऐसी सरवस्ता[13] आपदा को कभी भी सही नहीं मानना चाहिए जिनका निर्णय केवल चौधरियों, कानूनगोओं, मुकादमों और पटवारियों की रिपोर्टों पर निर्भर है। इससे किसान अपने अधिकारों को पा सकते हैं, दुर्भाग्य तथा हानि से बचायें जा सकते हैं और अपहरण करने वाले दूसरे के अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकते हैं।

दसवाँ—अमीनों, आमिलों, चौधरियों, कानूनगोओं तथा मुतसद्दियों को बालिया (Balia), अतिरिक्त मालगुजारी (अखराजात) की बलपूर्वक वसूली तथा निषिद्ध आबवाबों की वसूली को समाप्त करने के लिए कठोरता के साथ प्रेरित करो। ये सब किसानों के कल्याण में बाधा डालते हैं। उनसे जमानत ले लो कि वे कभी भी बलपूर्वक "बालिया" अथवा बादशाह सलामत द्वारा निषिद्ध और हटाये गये आबवाब वसूल नहीं करेंगे। तुम्हें स्वयं इस बात की निरन्तर सूचना मिलती रहनी चाहिए और यदि तुम्हें कोई व्यक्ति ऐसा करते हुए तथा तुम्हारे निषेध और तुम्हारी धमकी पर ध्यान न देते हुए मिल जाय

---

[12] हस्तबूद जामा—"भूमि के बढ़े हुए निर्धारित मूल्य का योग, क्षति द्वारा उत्पन्न कमी और अधिकता, नये उपयोगों आदि को दिखलाते हुए मालगुजारी के वास्तविक एवं पूर्ववर्ती साधनों के विवरण की तुलना।" [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० २२०]

[13] सरवस्ती—भुगतान करने से छूट। इस कारण पाठ में इस शब्द का अर्थ है मालगुजारी की माफी का हकदार। भेद के अर्थ में सरवस्ता इतना अच्छा अर्थ नहीं देता है।

तो तथ्य की बादशाह से रिपोर्ट कर दो जिससे वह नौकरी से निकाल दिया जाय और उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति नियुक्त किया जाय।

ग्यारहवाँ—हिन्दी कागजों को फारसी में अनुवाद करने के लिए भाव के योग्य प्राक्कलन तथा मालगुजारी (बाछ-ओ-बेहरी)[१४] के भाग तथा अखराजात और रसूमात[१५] के बारे में प्रत्येक के नाम से पूछताछ कर लो। प्रजा से किसी भी कारण वसूल किये गये किसी भी धन और फीलखाने में जमा भुगतान (वासिलात) पर पूर्ण ध्यान देते हुए उसके अन्तर को "अमीन, आमिल, जमींदार तथा दूसरों द्वारा अपने नाम के लिए प्रयुक्त" लिख देना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो (पृ० २७०ब) परगनों के सभी गाँवों के कच्चे कागजों (कागजे-खाम) को एकत्र कर लो और उनका अनुवाद कर डालो। यदि पटवारी की अनुपस्थिति अथवा किसी दूसरे कारण से किसी गाँव के कागज नहीं मिल पाते हैं तो गाँव की कुल पैदावार में से इसके अंश का अनुमान कर लो और इसे 'तूमार' में दर्ज कर लो। 'तूमार' के तैयार हो जाने के पश्चात् यदि वह निश्चित ढंग से लिखा गया है तो दीवान को इसे अपने पास रख लेना चाहिए। उसे आमिलों, चौधरियों, कानूनगोओं, मुकादमों और पटवारियों से कुल लाभ के उस अंश को लौटाने की माँग करनी चाहिए जिसे उन लोगों ने अपने निश्चित रसूमों (रसूमे-मुकर्रर) के रूप में अधिक वसूल कर लिया है।

बारहवाँ—जागीरदारों के उन अमीनों और करोड़ियों का नाम दो जिन्होंने ईमानदारी और लगन से काम किया हो और हर कार्य में प्रतिष्ठापित नियमों का अनुसरण कर अपने को अच्छा अधिकारी सिद्ध कर दिया हो, जिसके फलस्वरूप राज्य के प्रति उनकी निष्ठा एवं ईमानदारी के अनुसार उन्हें पुरस्कृत किया जा सके। किन्तु यदि किसी ने इसके विपरीत कार्य किया हो तो तथ्य की सम्राट् से रिपोर्ट कर दो जिससे कि वे नौकरी से अलग कर दिये जायें अथवा अपने बचाव के लिए तथा अपने आचरण के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण दें और नियम-विरुद्ध कार्यों को करने के लिए दण्ड पायें।

---

[१४] बाछ—बहुत-से लोगों के बीच एक धन का वितरण—[विलसन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ४२ब]। बेहरी—अनुपातानुसार दर [विलसन, ग्लौसरी ऑव रेवेन्यू टर्म्स, पृ० ७०ब]। बालिया ?=मलवा।

[१५] रसूमात—बहिःशुल्क अथवा 'कमीशन' [ब्रिटिश इण्डिया ऐनेलाइज्ड, पृ० १४९]।

तेरहवाँ—दृढ़तापूर्वक ठीक समय पर 'रिकार्ड' के कागजों को एकत्र कर लो। प्रत्येक गाँव के अधिकारियों से मालगुजारी, कर-संग्रह तथा प्रचलित मूल्य का दैनिक लेखा, परगनों से मालगुजारी-संग्रह तथा नकद धन (मौजूदान) का पाक्षिक लेखा, फौतदारों से उनके खजानों में शेष धन (पृ० २७१अ) और जमा वासिल वाकी का मासिक लेखा, कुल मालगुजारी के तूमार, जमाबन्दी (वार्षिक मालगुजारी का बन्दोवस्त) और खजानों के आय-व्यय के यथा-कालीन लेखे नियमानुसार क्रमपूर्वक प्राप्त कर लो। इन कागजों के निरीक्षण के पश्चात् तत्सम्बन्धित अधिकारियों से उस राशि को लौटाने का आग्रह करो जो उन्होंने बिना किसी स्पष्ट कारण व जमा-खर्च के खर्च कर दी है, और तत्पश्चात् इन सब कागजों को शाही लेखा-कार्यालय (रिकार्ड ऑफिस) में भेज दो। वसन्तकालीन फसलों के कागजों को शरदकालीन फसल तक असंग्रहीत मत छोड़ो।

(पृ० २७१ब) चौदहवाँ—जब कभी भी कोई अमीन, आमिल अथवा फौतदार नौकरी से निकाला जाय तो तत्परता के साथ उसके कागजों को उससे माँग लो और उन्हें भलीभाँति समझ लो। दीवान के विभागीय नियमों के अनुसार ऐसे कानूनबद्ध आववावों की पुनर्प्राप्ति का विवरण लिख लो जो अंकेक्षण (ऑडिटिंग) के फलस्वरूप फिर से लिये जाने योग्य हों। नौकरी से निकाले हुए आमिलों से प्राप्त आववावों के लेखों (रिकार्डों) के साथ-साथ इन कागजों को शाही कचहरी में भेज दो जिससे उनके कागजों का अंकेक्षण (ऑडिटिंग) समाप्त हो जाय।

पन्द्रहवाँ—प्रतिष्ठापित नियमों के आधार पर यथाकाल दीवानी कागजों को तैयार कर लो, उन पर अपनी मुहर लगा दो तथा प्रमाणित करने का उल्लेख कर दो और उन्हें शाही लेखा-कार्यालय (रिकार्ड ऑफिस) में भेज दो।

अध्याय १२

जल और थल सेना

१. बख्शी के कार्य—सम्राट् सेना का एकमात्र सेनापति

मुग़ल-साम्राज्य का सैन्य-विभाग एक ऐसे अधिकारी की अध्यक्षता में था जिसे बख्शी-उल-ममालिक अथवा साधारणतया मीर बख्शी कहते थे। साम्राज्य-विस्तार एवं औरंगजेब के अधीन सेना-विस्तार के कारण उसके साथ द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के तीन और बख्शी उसके सहायक के रूप में लगे हुए थे। (१) सैनिकों को भरती करना, (२) उनकी उपस्थिति तथा वेतन का हिसाब रखना और उनके वेतन-पावना-पत्रों (salary-bills) को मंजूर करना, तथा (३) एक बड़े युद्ध की तैयारी के अवसर पर सेना के अग्रभाग, केन्द्र, दोनों पक्षों तथा उसके पिछले भाग में विभिन्न सेनानायकों की स्थिति को निश्चित करना और सम्राट् के समक्ष युद्ध के दिन प्रातःकाल ही लड़ाकू पंक्ति के प्रत्येक दल के प्रत्येक सेनानायक के अधीन लोगों की ठीक-ठीक संख्या देते हुए एक सैनिक नामावलि प्रस्तुत करना, आदि बख्शी के मुख्य कार्य थे। [**इरविन, आरमी ऑव दि इण्डियन मुग़ल्स, पृ० ३८**]

भारत के एक फ्रांसीसी कप्तान ने 'मीर बख्शी' शब्द का "इन्सपेक्टर जनरल ऑव दि फोर्सेज" अनुवाद किया है क्योंकि वेतनाध्यक्ष ('बख्शी' का शाब्दिक अर्थ) शब्द उसके कार्यों को ठीक-ठीक नहीं व्यक्त करता है। वह सेनापति नहीं था। सिद्धान्ततः प्रत्येक स्वतन्त्र मुसलमान सम्राट् अपने देश की सेना का सेनापति था। वह पद खलीफा का था और प्रत्येक मुसलमान सम्राट् एक और केवल एक खलीफा होने का दावा करता था। वे कुस्तुन्तुनिया के उसमान्ली टर्की सुलतान अथवा किसी दूसरे विदेशी को कभी भी मुसलिम-जगत् का खलीफा नहीं स्वीकार करते थे। टर्की के सुलतान के पास शाहजहाँ द्वारा लिखा गया अरबी भाषा का एक पत्र सुरक्षित है। इसमें पाण्डुलिपि के एक पृष्ठ की पाँच लम्बी पंक्तियों में सुलतान की उपाधियों का उल्लेख है। उसे (पूर्वी) रोम का सीजर, खुन्दकार आदि कहा जाता है किन्तु एक बार भी

'खलीफा' नहीं कहा गया है। अत्यन्त धर्मपरायण भारतीय मुसलमान शासक औरंगजेब ने भी टर्की के सुलतान को 'पैगम्बर' का वैधानिक उत्तराधिकारी मानने से इन्कार किया है। शिया-जगत् ने कभी भी एक बार भी इस सिद्धान्त को नहीं माना है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि समस्त मुसलिम-जगत् के ऊपर टर्की की खिलाफत का वर्तमान दावा केवल एक राजनीतिक कल्पित कथा है।

"यूरोपीय इतिहासवेत्ताओं द्वारा साधारणतया स्वीकृत उस्मानी सुलतान सलीम को अन्तिम मिस्री अब्बासी अलमुतवक्किल द्वारा खिलाफत के विधिपूर्वक स्थानान्तरण का सिद्धान्त आधाररहित है और बर्थोल्ड द्वारा यह निश्चयपूर्वक काल्पनिक कथाओं के क्षेत्र में रख दिया गया है। [मीर इस्लाम, सेंट पीटर्स-बर्ग, १९१२, जिल्द १, पृ० २०३-२२६ तथा ३४५-४००] यह अपने प्रसार के लिए एक आर्मीनियन (ईसाई) सी० एम० डी'ओसन का ऋणी है जिसने इसे सन् १७८८[1] में "टैबल्यु जेनरल" (Tableau General) में प्रकाशित किया था।"

इस प्रकार दिल्ली का प्रत्येक पादशाह केवल आधुनिक खलीफा—खलीफत-उज़-जमानी, जिल्ल-ए-सुभानी—होने का दावा करता था। इसलिए वह 'मुसलमानों का नायक' होने के नाते अपने पद के कारण अपनी सेना का सर्वोच्च प्रधान हुआ करता था (अमीर-उल-मोमेनीन खलीफा का पर्यायवाची है।) किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब सम्राटों ने समरभूमि में जाना बन्द कर दिया (इनमें अन्तिम सम्राट् फर्रुखसियर था जो १७१३ ई० में लड़ा था) तो किसी नवयुवक और चैतन्य वजीर की अनुपस्थिति में मीर बख्शी पर ही धीरे-धीरे युद्ध-क्षेत्र की सेना के संचालन का भार आ पड़ा। अठारहवीं शताब्दी में मीर बख्शी के पद के साथ 'अमीर-उल-उमरा' की उपाधि भी जोड़ दी गयी। इसका अर्थ 'मुसलमानों का नायक' (खलीफा) न होकर 'मुख्य अमीर' है। सत्रहवीं शताब्दी में शाइस्ताखाँ ने इसे प्रतिष्ठा की उपाधि के रूप में, बख्शी पद के बिना ही, धारण किया था। अकबर की विभागीय सेना का प्रधान सिपहसालार कहलाता था जो कि एक प्रधान सेनापति न होकर एक सूबे का केवल सैनिक गवर्नर होता था।

---

[1] एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० ८८३ तथा सप्लीमेंट १। इसके लिए लेखक कृत हिस्ट्री ऑव औरंगजब, जिल्द ३, अध्याय २९, अनुच्छेद ६ भी देखिए।

इस प्रकार सैनिकों की भरती करना, उन्हें एकत्र करना तथा उनके वेतन-पावना-पत्रों को स्वीकृत करना बख्शी के कार्य थे। साम्राज्य की प्रत्येक प्रान्तीय सेना का प्रधान, प्रत्येक अमीर और अधीनस्थ अमीर अपना निजी बख्शी रखता था। हेदायेतुल कवायद के बाईसवें पृष्ठ पर बख्शी के पद को संभालने वाले एक नवागन्तुक को दिये गये आदेशों से बख्शी के प्रमुख कर्तव्यों का स्पष्ट आभास होता है—

"सैनिकों को भरती करने के समय केवल ऐसे ही व्यक्तियों को चुनो जो कुलीन और अनुभवी हों। इस वर्ग के लोगों के साथ नम्रतापूर्वक एवं स्नेहपूर्वक व्यवहार करो जिससे वे युद्ध के समय अपने प्राणों को उत्सर्ग करने में संकोच न करें। उनकी नामावलि तथा (उनकी उपस्थिति के आधार पर) उनका वेतन-बिल तैयार करो। अपने स्वामी के समक्ष रखने अथवा वाद-विवाद के अवसर पर प्रस्तुत करने के निमित्त इनकी एक प्रति अपने पास भी रखो और दूसरी प्रति को अपने कार्यालय के 'रिकार्ड-क्लर्क' के पास जमा कर दो।''' अपने क्लर्कों को सैनिकों के कार्य में देरी न करने के लिए आदेश दो। वे देर करने के अभ्यस्त हैं और इस सम्बन्ध में यह कहावत है कि "सैनिकों को भरती करने के दस दिन के काम में बख्शी दो महीने व्यतीत करता है।" कूच करने तथा गश्त करने में सैनिकों को उपस्थित रखो। युद्ध के दिन अपने प्रभावपूर्ण भाषण द्वारा उन्हें वीरत्व-प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित करो।"

२. मनसबदारी प्रथा

मुग़ल-साम्राज्य की सेना विशेष रूप से अमीरों अथवा सरदारों द्वारा भरती किये गये आदेशित तथा वेतनभोगी सैनिकों से बनी हुई थी। सम्राट् ने इनमें से प्रत्येक को निश्चित सैनिक टुकड़ियों को रखने का अधिकार दिया था। इन्हें इन सैनिकों के लिए एक बार धन दे दिया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक सैनिक केवल अपने ही सरदार को जानता था और उसी के हाथों से अपना वेतन पाता था, यद्यपि उसे सम्राट् के लिए ही और उसी के आदेश के अनुसार सदैव कार्य करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त कुछ थोड़े-से किन्तु चुने हुए लोगों को अमीरों की सेना के सैनिकों की अपेक्षा अधिक वेतन तथा ऊँचे पद पर सम्राट् स्वयं भरती करता था। इन्हें 'अहदीस' अर्थात् व्यक्तिगत सिपाही कहा जाता था किन्तु इस शब्द का उत्तम अनुवाद 'कुलीन घुड़-सवार' है।

सैन्य-अधिकारी (तथा अमीर एवं अधीनस्थ राजकुमार) दस सैनिकों

(मीरदह) से लेकर सात हजार सैनिकों तक के सेनानायक मनसव कहलाने वाले पद पर क्रमश: नियुक्त थे। आगे चलकर यह पद दस सैनिकों की वजाय वीस सैनिकों (विस्सी) के सेनानायक को दिया जाने लगा था। राजकुमारों के लिए दस हजार (दाह-हजारी) किन्तु बाद के पतनोन्मुख मुग़लों के समय में पचास हजार तक भी सीमा निर्धारित थी।

इन पदों को धारण करने वाले लोगों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया था—वीस से लेकर चार सौ व्यक्तियों के सेनानायकों को मनसवदार, पाँच सौ से लेकर अढ़ाई हजार तक के सेनानायकों को उमरा, और तीन हजार से अधिक व्यक्तियों के सेनानायकों को उमरा-ए-आजम अथवा साधारणतया उम्दातुल मुल्क कहते थे।

एक मनसवदार का वेतन सर्वप्रथम उसके नाम सम्वन्धी पद अर्थात् उसकी ज़ात (वुनियादी) सेना की संख्या, जैसे हजारी ज़ात, के आधार पर निश्चित किया जाता था। दूसरे, वहुत-से अधिकारियों के सम्वन्ध में अन्य विभेद के चिह्नों का प्रयोग किया जाता था, और वह एक हजारी ज़ात, दो सद (अथवा तीन सौ आदि) सवार हो जाता था और इसी के अनुसार उसका वेतन वढ़ जाता था। किन्तु हमें दरवार के फारसी अभिलेखों में इन घुड़सवारों की वढ़ी-चढ़ी संख्या से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। 'ज़ात' अथवा 'सवार' के पद से ही हमें यह नहीं समझना चाहिए कि अमुक अधिकारी सचमुच शासन से पाये हुए वेतन के वदले में उस संख्या में घुड़सवार रखने के लिए वाध्य थे। जव कभी एक अभियान की तैयारी की जाती थी,—जैसे वल्ख पर शाहजहाँ का आक्रमण अथवा कन्धार का घेरा—तो इस कार्य के लिए चुने हुए मनसवदारों को आदेश दे दिया जाता था कि वे अपने नाम सम्वन्धी पद की सेना की केवल एक-चौथाई अथवा एक-पँचई सेना तैयार करें। यहाँ हमें इस सत्य को नहीं भूलना चाहिए कि औरंगजेव के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में मुग़ल सेना की वास्तविक संख्या उसके समस्त अधिकारियों की नाम सम्वन्धी सेना का केवल दशमांश थी।

एक मनसवदार को दिया जाने वाला वेतन सदैव अच्छे घोड़ों पर सवार अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित व्यक्तियों की उस संख्या पर निर्भर करता था जो वख्शी द्वारा तैयार किये गये रजिस्टर के अनुसार वह ला सकता था। उस अवसर पर घोड़ों का निरीक्षण होता था और वे दागे जाते थे तथा सैनिक अपनी शारीरिक विचित्रताओं के विवरण के आधार पर पहचाने जाते थे। यह

विवरण उनकी पहली वार भरती (चेहरा) के समय उनके कार्ड पर लिखा हुआ होता था। एक दारोगा के अधीन प्रमाणित करने का यह कार्य 'दाग वा ताशीहा' कहलाता था। अपने सैनिकों की वास्तविक संख्या के आधार पर प्राप्त इस वेतन के अतिरिक्त एक मनसबदार को एक अमीर के तरीकों को कायम रखने के लिए राजकीय उपहार के रूप में प्रायः कुछ मुफ्त भत्ता भी मिल जाया करता था।

ज़ात और सवार के पदों की विशिष्टता के अतिरिक्त अधिकारी (विभिन्न वेतन-क्रम में) तीन श्रेणियों में विभक्त थे। यह विभाजन इस पर निर्भर करता था कि प्रत्येक अधिकारी के 'सवार' की संख्या उसके 'ज़ात' की संख्या के (अ) वरावर, (व) आधी से अधिक, अथवा (स) आधी से कम थी। इन जटिल भेदों का पूर्ण विवरण जवाविते आलमगीरी में दिया हुआ है।

३. सशस्त्र सेना के अंग

साम्राज्य की सशस्त्र सेना की पाँच शाखाएँ थीं—पैदल सेना, अश्वारोहियों की सेना, आग्नेयास्त्रधारी सेना (जिसमें तोपची और वन्दूकची दोनों सम्मिलित थे), हस्ति-सेना तथा युद्ध-नौकाएँ (अथवा नववारा)।

(अ) पैदल सेना—इसे अहशाम कहते थे (यह हश्म का वहुवचन है और इसका अर्थ नौकर है)। साधारण बोलचाल में इसे प्यादा कहते थे। ये लोग सबसे बाद की अर्द्ध-यूरोपीय शिक्षित पल्टन से भिन्न देशीय मुग़ल सेना में कम वेतन वाले, फटे कपड़े पहनने वाले, घृणित तथा फौज के लिए आगे चलकर पथ-प्रदर्शन करने वालों से मुश्किल से अच्छे लोग थे। अहशाम का वर्णन करते समय हमें पदातियों की आधुनिक पलटन के सभी विचारों को अपने मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए और उन्हें फौजी शिक्षा प्राप्त तथा देश के भीतर ही काम पर लगाये गये व्यक्तियों (मिलीशिया), सशस्त्र पुलिस, और (अवसर पड़ने पर) तलवार अथवा छोटा भाला धारण करने वाले नौकरों की वनी हुई सेना समझना चाहिए। युद्ध करने की दृष्टि से उनका कुछ भी मूल्य न था; वे केवल पहरेदारों का कार्य करते थे।

अहशाम से भी निम्न श्रेणी का सेहवन्दी दल था जिसमें साधारण रूप से ज़िद्दी किसानों से मालगुजारी वसूल करने में किसी तहसीलदार की सहायता करने के लिए उसके द्वारा कुछ समय के लिए वेकार, आलसी व्यक्ति भरती किये जाते थे, जिन्हें हथियार और वेतन दिया जाता था। वे सेना के अंग न

थे। यद्यपि स्थानीय संगठित लुटेरों के विरुद्ध उन्हें नियुक्त किया जाता था और अस्त्र-शस्त्र भी दिये जाते थे किन्तु उन्हें सिविल पुलिस ही समझा जाता था।

(ब) **अश्वारोही सेना** दो प्रकार की थी—(१) राज्य द्वारा सुसज्जित एवं घोड़े पर सवार व्यक्ति। इन्हें 'बारगीर' अथवा मराठी में 'पागा' कहा जाता था। राज्य द्वारा ही इनकी साजसज्जा के कारण इन्हें बहुत कम वेतन मिलता था। (२) घुड़सवार, जो अपने निजी घोड़े और हथियार लाते थे। ये 'सिलहदार' कहलाते थे और स्वभावत: बारगीरों के वेतन का दूना अथवा तिगुना वेतन पाते थे क्योंकि इन्हें अपने घोड़ों को खिलाना पड़ता था और उनके मर जाने पर अपनी पूंजी से हाथ भी धो बैठना पड़ता था।

(स) **आग्नेयास्त्रधारी सेना**—इस विभाग में तोपचियों (अथवा तोपधारी) के अतिरिक्त बन्दूकची भी सम्मिलित थे। इन पैदल बन्दूकचियों को साधारण पदातियों (अहशाम) से, जिनके पास अग्नि-अस्त्र नहीं होते थे, अलग रखा जाता था। ये दोनों विभाग एक ही प्रधान, जिसे मीर आतिश अथवा दारोगा-ए-तोपखाना कहते थे, के अधीन थे और एक ही विभाग से अपनी युद्ध-सामग्री लिया करते थे।

जब कभी भी यूरोप-निवासी अथवा कम से कम पुर्तगाली और फ्रांसीसी मिलते थे, तो उन्हें मुग़ल तोपखाने के लिए बड़ी उत्सुकता से ढूंढ़ा जाता था और ऊँचे वेतन पर रख लिया जाता था क्योंकि वे बन्दूक चलाने तथा निशाना लगाने में अपनी कुशलता के लिए विख्यात थे। तोपखाने के प्रत्येक दल का संचालन 'हजारी' (अथवा हजार व्यक्तियों का नायक) नामक एक अधिकारी करता था। यह शब्द तुर्की-उपाधि 'मिंग-बाशी' का भारतीय अनुवाद था; किन्तु आधुनिक अरब देशों में मिंग-बाशी लेफ्टिनेण्ट (कायम मकाम) के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

तोपखाना दो भागों में विभक्त था—एक को 'जिन्सी' तथा दूसरे को 'दस्ती' कहते थे। इनका अर्थ क्रमश: भारी और हलके हथियार था। (दस्ती में बन्दूकें तथा कुन्देदार बन्दूकें यथा जम्बूराक्स, जिजैल्स आदि सम्मिलित होती थीं।) दोनों विभाग एक ही छावनी, यथा दिल्ली, में अलग-अलग अपने-अपने शस्त्रागार और दारोगा रखते थे।

(द) **हस्ति-सेना**—किसी विशिष्ट ऊँचाई से समस्त युद्ध-क्षेत्र को स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ होने के लिए सेनानायक हाथियों पर चढ़ते थे। इनका आक्रमण प्राय: आग्नेयास्त्र धारण न करने वाली पैदल सेना को भंग कर देता था और अश्वारोहियों में भगदड़ मचा देता था। लोहे की चादरों से

उनके सिरों को आच्छादित कर उन्हें किलों के फाटकों को तोड़ने के लिए लगा दिया जाता था। किन्तु तोपखानों की बढ़ी हुई शक्ति के कारण हाथी अपने पक्ष के सहायक होने की अपेक्षा उसके लिए भयंकर हो गये थे। इसीलिए अठारहवीं शताब्दी के मध्य से इन्हें हम केवल बोझा ढोने वाले जानवर के रूप में कार्य करते हुए पाते हैं।

(य) **नौ-सेना**—पश्चिमी समुद्र-तट पर मुग़ल-सम्राटों ने नौ-रक्षा के कार्य को जंजीरा के (सिद्दी) हब्शी शासकों को सौंप दिया था और इन्हें 'एडमिरल' की उपाधि दे रखी थी। किन्तु निचले बंगाल में शासन ने तोपों को ले जाने वाली विभिन्न प्रकार की युद्ध-नौकाओं का एक छोटा-सा बेड़ा स्थापित किया था। चौदह लाख रुपया वार्षिक मालगुजारी की भूमि बंगाल के जहाजी बेड़े के जहाजों के रख-रखाव तथा माँझियों के भरण-पोषण के लिए दी गयी थी। इस विभाग को 'नववारा' कहते थे और इसका प्रधान 'दारोगा' कहलाता था। किन्तु युद्ध-पोतों का संचालन स्थल-सेना के ही अधिकारी करते थे क्योंकि जहाजों पर माँझियों के अतिरिक्त सभी सिपाही स्थल-सेना के होते थे जो तनिक से भी बुरे मौसम में 'समुद्र में' होने का अनुभव करते थे। इसलिए मुग़ल सेना में नियुक्त पुर्तगाली बन्दूकचियों (फिरंगियों) द्वारा ही युद्ध किया जाता था और मुग़ल नौ-सैनिक केवल समुद्र-तट पर उतरने के पश्चात् ही लड़ते थे। पूर्वी बंगाल की बड़ी नदियों में 'नववारा' चलते थे और इन्होंने १६६१-६२ ई० में आसाम पर मीर जुमला के आक्रमण के समय अपनी अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन किया था। [पूर्ण विवरण के लिए **स्टडीज इन औरंगजेब्स रेन, अध्याय १३, तथा हिस्ट्री ऑव औरंगजेब, तृतीय जिल्द, अध्याय ३१** देखिए]

एक और भी अधिकारी था जिसे 'मीर बहर' कहते थे (जो कि एडमिरल की उपाधि का प्रसिद्ध स्रोत है; एडमिरल=अमीर-अल-बहर)। ये आगरा, इलाहाबाद आदि जैसे सभी महत्त्वपूर्ण नदियों के तटों पर नियुक्त थे। आवश्यकतानुसार शासन द्वारा माँग की जाने पर उसे सेनाओं को नदियों के पार करने अथवा सम्राट् के निमित्त नदियों पर नावों का पुल बनाने हेतु नावें देनी पड़ती थीं। यह कार्य व्यक्तिगत माँझियों की नावों को किराये पर लेकर किया जाता था, क्योंकि एक स्थायी विभाग के रूप में कभी भी शासन के पास कोई नावें नहीं थीं।

४. अनुशासन, युक्ति तथा युद्ध-साधन के रूप में वास्तविक मूल्य

मुग़ल-साम्राज्य की सेना (रेजिमेण्टों) पलटनों में विभक्त न थी। अपने से

कुछ थोड़े-से धनी लोगों की छत्रछाया में केवल घुड़सवार फौज में भरती किये जाते थे। ये छोटे नायक पुनः अपने से बड़े सेनानायकों से मिल जाते थे...और इस प्रकार धीरे-धीरे एक बड़े अमीर की सेना तैयारी हो जाती थी। [इरविन, **आरमी ऑव दि इण्डियन मुग़ल्स, पृ० ५७**]

शाहजहाँ "नौ लाख घुड़सवारों का स्वामी" होने की शेखी मारता था किन्तु उसका दरबारी इतिहासवेत्ता उसकी कुल सेना का योग केवल दो लाख बतलाता है। इन दो लाख व्यक्तियों को भी ठीक समय पर वेतन नहीं दिया जा पाता था। पेशवा और सिन्धिया की मराठी सेनाओं की भाँति मुग़ल सिपाहियों का भी कई महीनों का वेतन बकाया रहता था। कभी-कभी तो तीन साल तक का वेतन शेष रहता था। इस बीच वे अपनी छावनी के अनाज व्यापारी से उधार लेकर अथवा अपने घोड़ों, अस्त्र-शस्त्रों तथा पोशाकों को बेचकर जीवन-निर्वाह करते थे। जब किसी अभियान के लिए आदेश दिया जाता था तो सैनिक व्यापारियों से लिये गये ऋण को चुकाये बिना तथा अपनी अनुपस्थिति में अपनी पत्नियों को उनके भरण-पोषण के लिए कुछ नकद धन छोड़े बिना अपनी छावनी को छोड़ नहीं सकते थे। बहुतों को अपने पिछले अभियान में मृत अथवा बूढ़े घोड़ों के स्थान पर नये घोड़े भी खरीदने पड़ते थे।

मुग़लों ऐसी दिवालिया सरकार, विशेष रूप से एक वृहत् सेना के साथ औरंगजेब अपनी वृद्धावस्था में, जबकि जन-कोष निरन्तर चलने वाले युद्धों के कारण खाली हो गया था और मालगुजारी युद्ध में नष्ट भू-प्रदेशों से प्राप्त सामान्य मालगुजारी की दसवाँ भाग रह गयी थी, उसके शीघ्र प्रस्थान अथवा बहुत समय तक वेतन न पाये हुए भूखे सैनिकों द्वारा हार्दिक प्रयत्न की आशा नहीं कर सकता था। इस प्रकार 'महान् मुग़लों' की सेना उनके दरबार की चकाचौंध करने वाली तड़क-भड़क तथा उनके राजप्रासादों के बहुमूल्य ठाट-बाट के अपेक्षाकृत सचमुच एक अत्यन्त निर्बल तथा निरर्थक साधन थी।

टर्की-वंश की शक्ति, जिसने दिल्ली के मुग़ल-साम्राज्य की नींव हिला दी थी, उनकी विशाल अश्वारोही सेना में निहित थी। यह सेना कवच धारण करती थी तथा अरबी अथवा खुरासानी नस्ल के उत्तम घोड़ों पर चढ़ती थी। वे घोड़ों की पीठ पर से ही बाण अथवा छोटा भाला फेंकते थे तथा अपनी चंचल गति और अप्रत्याशित दिशाओं से अपने आक्रमणों द्वारा अपने स्थायी शत्रुओं को व्याकुल कर देते थे और तब तेज अश्वारोहियों के अपने निजीपक्षीय सैनिकों को आगे बढ़ाते थे। इस प्रकार आगे-पीछे से वे अपने शत्रु को घेर लेते थे और शत्रु

बुरी तरह से खदेड़ दिया जाता था। गिब्बन ने अपनी मनोहर शब्दावली में उनके द्वारा शत्रु को घेरने की इस अवस्था को "अर्द्ध-चन्द्र के दोनों किनारों का परस्पर मिल जाना" कहा है; किन्तु भारतीय भूमि पर, विशेष रूप से राजपूताना और महाराष्ट्र के पर्वतीय क्षेत्रों में, मुग़लों की विशाल अश्वारोही सेना अपनी गतिशीलता को खो देती थी। तोपखानों के जुड़ जाने से सेना इतनी भारी हो जाती थी कि वह तेजी से नहीं चल सकती थी और शिविरों की लम्बी कतार तथा भारवाहक नौकरों के कारण उनकी खाद्य-सामग्री शीघ्र ही समाप्त हो जाती थी। इस प्रकार बाबर के एक शताब्दी पश्चात् पादशाह की सेना चंचल मराठों की और दो शताब्दी पश्चात् अनुशासित यूरोपियन-संचालित सैनिक दल की शिकार बन गयी।

युद्ध राष्ट्रीय क्षमता की अन्तिम कसौटी है और मुग़ल-साम्राज्य की सैनिक पराजय ने निश्चय ही उसके प्रशासन की असफलता को सिद्ध कर दिया।

अध्याय १३

नगर प्रशासन

१. किस प्रकार के नगर थे ?

अति सामान्य गाँवों को 'कोरिया' कहते थे। इनमें पूर्ण रूप से काश्तकार ही बसे हुए थे। कभी-कभी भंगियों के परिवार को छोड़कर इनमें कोई अन्य व्यवसायी न होता था। कस्बों के पास के गाँवों में मछुए और चिड़ीमार रहते थे। कुछ में गड़रिये आबाद थे। उनमें कोई बाजार न था किन्तु बारी-बारी से प्रत्येक गाँव में प्रति सप्ताह एक निश्चित दिन पर एक हाट लगा करती थी। ऐसे प्रत्येक गाँव में कोई सम्पन्न व्यक्ति अनाज, तम्बाकू तथा नमक का एक छोटा-सा ढेर अपने घर में अपने पड़ोसियों के हाथ किसी अचानक आवश्यकता के पड़ने पर बेचने के लिए साधारणतः रख लिया करता था।

आबादी की इससे बड़ी इकाई कस्बा थी जिसे एक बड़ा गाँव अथवा एक छोटा 'टाउन' कहा जा सकता है। एक स्थायी बाजार, विभिन्न प्रकार के व्यवसायियों के घर तथा निम्न श्रेणी के कुछ सरकारी अधिकारियों का होना ही इसकी विशेषता थी। किन्तु यहाँ के कम से कम आधे लोग खेती पर ही निर्वाह करते थे। एक कस्बे को बिना किसी शंका के एक टाउन तभी कहा जाता था जबकि उसकी अधिकांश जनता कृषि के अतिरिक्त दूसरे व्यवसायों पर अपना जीवन व्यतीत करती थी, और यदि वहाँ पर प्रशासकीय अधिकारियों की एक इकाई नियुक्त होती थी तो इसे शहर कहा जाता था। पुस्तकों में राजधानी को (चाहे वह प्रान्त की हो अथवा साम्राज्य की) 'बाल्दा' कहा गया था, यद्यपि साधारण जनता इसे सदैव 'शहर' ही कहा करती थी। (अरबी एकवचन संज्ञा शब्द 'बलद' का अर्थ 'देश' और टाउन दोनों है।)

सबसे बड़े नगर साधारणतया बहुत-से मुहल्लों में विभक्त थे। प्रत्येक मुहल्ला आत्म-निर्भर और विशेष रूप से एक ही व्यवसाय अथवा जाति के लोगों से आबाद था। नगर के बाहर छोटे-छोटे उपनगर होते थे जिनमें से प्रत्येक किसी एक विशेष जाति अथवा किसी एक विशेष अमीर परिवार तथा

उसके अनुयायियों के लिए सुरक्षित होता था। इस प्रकार शाहजहाँ के नये नगर की दीवालों के बाहर वकीलपुरा (जहाँ विदेशी राजदूत राजधानी में प्रवेश करने तथा सम्राट् के समक्ष प्रस्तुत होने के शुभ दिन की प्रतीक्षा करने के लिए ठहरते थे), मुग़लपुरा (जहाँ मध्य एशिया के नवागन्तुकों को उनकी जाति के लोग ठहराया करते थे), जयसिंहपुरा और जसवन्तपुरा नामक उपनगर थे। (अन्तिम दोनों जयपुर और जोधपुर के राजाओं के शिविर थे। इनके अतिरिक्त प्रादेशिक क्षेत्र भी था।) मुग़ल दकन की राजधानी औरंगाबाद के बाहर इसी प्रकार का जयसिंह का एक निजी 'पुरा' और भी था। लाहौर नगर के पास एक समय छत्तीस गुजार अथवा क्वार्टर्स थे जिनमें से सत्ताईस "आधुनिक नगर की परिधि के बाहर" थे। उनमें से बहुतों के नाम अब भी उनकी उत्पत्ति का हमें स्मरण कराते हैं, यथा कूचये आहंगरान (लोहार), कूचये रंगरेजान (कपड़ा रंगने वाले), गूजरे लंगरखाना आदि। अत्यन्त प्राचीन जुन्नार नगर बाहन-पेठ जुन्नार (अथवा बावन वार्डों का नगर) का गर्वपूर्ण नाम धारण किये था।

२. आधुनिक नगर-जीवन की सुविधाएँ कहाँ तक उपलब्ध थीं ?

एक आधुनिक राजधानी अथवा एक बहुत बड़े नगर में हम एक नगर-परिषद् (म्युनिसिपल कॉरपोरेशन) के साथ निम्नलिखित बातों की आशा करते हैं :

(१) एक प्रधान, यथा मेयर, के अधीन समस्त क्षेत्र का एक केन्द्रित शासन।

(२) नगर प्रशासन के व्यय का भार उठाने के लिए मकानों, व्यापार तथा आयात पर करारोपण।

(३) पीने के पानी की व्यवस्था।

(४) जल-निस्सारण तथा गृह मल-मूत्रालय।

(५) सड़कें।

(६) सड़कों पर प्रकाश।

(७) बाजार।

(८) जन-स्वास्थ्य तथा निर्धनों की सहायता। (उन दिनों अधिकारिक एजेन्सियों द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था।)

(९) आन्तरिक सुरक्षा अथवा पुलिस।

इन नौ चीजों में से केवल चार—अर्थात् कर, बाजार-नियन्त्रण, आन्तरिक सुरक्षा तथा प्रधान सड़कों—से ही मुग़ल सरकार सम्बन्ध रखती थी, जबकि

छोटी-छोटी सड़कें तथा गलियाँ, प्रकाश (यदि कोई था), पेय जल-प्रदाय (सप्लाई), संरक्षण (मुख्य सड़कों के बाहर सम्राट् द्वारा प्रयुक्त) तथा निर्धनों की सहायता बिलकुल व्यक्तिगत कार्य समझे जाते थे और ये केवल नागरिकों पर छोड़ दिये गये थे।

किन्तु इससे व्याकुलता अथवा उपेक्षा नहीं होती थी क्योंकि नगर-जीवन में व्याप्त विकेन्द्रीकरण के कारण निवासी आत्म-निर्भर स्वशासित वार्डों में बँटे हुए थे जहाँ पर लोग साधारणतः व्यवसाय के सादृश अथवा एक ही रक्षक की संरक्षता के कारण परस्पर आवद्ध थे। ऐसे रक्षक अमीर अथवा फकीर होते थे जिनके भवन अथवा मकवरे के चारों ओर वे लोग एकत्र रहते थे। मुग़ल शक्ति के पतन के पश्चात् की अराजकता में प्रत्येक वार्ड अथवा गली को अपने दोनों सिरों पर सुरक्षात्मक फाटक बनाकर अपनी किलेबन्दी करनी पड़ती थी। ये फाटक रात्रि, किसी आक्रमण की पहली खतरे की घंटी अथवा दंगे के समय वन्द कर लिये जाते थे। इस प्रथा को कूचा-वन्दी कहते थे और यह 'सैनिक विद्रोह' तक प्रचलित थी।

जो सम्राट् नगर की नींव डालते थे, वे प्रधान सड़कें बनवाने तथा गन्दे पानी को बाहर ले जाने वाली मुख्य नालियों को खुदवाने से ही सन्तुष्ट हो जाते थे। ये नालियाँ 'क्लोका मैक्सिमा' अथवा प्राचीन रोम की वड़ी नालियों से मिलती-जुलती थीं। दिल्ली और कुछ दूसरे मुग़लकालीन नगरों के इनके अवशेष अब भी गन्दे नालों के नाम से इंगित किये जाते हैं।

कभी-कभी जव एक नगर किसी नदी अथवा झील से दूर स्थित होता था और बंगाल की भाँति इसमें तालाव नहीं होते थे, तो इसकी नींव डालने वाला राजकुमार दूरस्थ किसी वड़े जलाशय से पीने योग्य पानी लाने के लिए ईंट और चूने अथवा पत्थर और चूने का एक पक्का जलमार्ग बनवाता था। इसके सबसे अच्छे चित्र दक्षिण में औरंगाबाद में तथा जयपुर के सवाई जयसिंह नगर में पाये जाते हैं। किन्तु सामान्य रूप से प्रत्येक वार्ड पीने का जल निजी कुओं, विशेष रूप से पानी के किनारे तक जाने वाली सीढ़ियों वाले पक्के कुओं या वावली (जिन्हें मराठी में वाव कहते थे) से लेता था। एक कुएँ का स्वामी किसी प्यासे व्यक्ति को जल पीने से मना करना पाप समझता था।

प्रधान सड़कों पर सरकार की ओर से पत्थर के वड़े-वड़े टुकड़े विछवाये जाते थे क्योंकि उस युग में छोटे-छोटे पत्थरों को बिछाकर तथा उन्हें कूटकर कठोर और समतल करने की प्रथा से लोग अनभिज्ञ थे। इसलिए इनका धरातल

समतल नहीं होता था। छोटी-छोटी सड़कों और गलियों में जबकि उनकी स्वाभाविक कच्ची दशा अधिक विकृत हो जाती थी, तो उनके किनारे पर रहने वाले किसी धनी अमीर अथवा सौदागर द्वारा अपनी निजी सुविधा के लिए पत्थर बिछवा दिया जाता था। जब ईंटें पत्थरों से सस्ती होती थीं तो इन सड़कों पर खड़ी ईंटें बिछायी जाती थीं। इनके उदाहरण रामपुर (रुहेलखण्ड) तथा पुराने जयपुर में कुछ दिनों पहले तक भी देखे जा सकते थे।

जहाँ तक सड़कों के प्रकाश का प्रश्न था, रात्रि में केवल राजप्रासाद के फाटक, पुलिस कार्यालय के चबूतरे तथा एक या दो सरकारी इमारतों पर प्रकाश होता था। दूसरी जगह अमीरों के भवनों के फाटकों पर सन्त्रियों की चौकियों पर थोड़े-से तेल के दीपक अथवा मशाल टिमटिमाते थे।

मल-मूत्र के लिए प्रत्येक घर वालों को भंगियों का अपना निजी प्रबन्ध करना पड़ता था। मकान के नजदीक की खुली नाली में अथवा रात्रि को सड़क पर मूत्र त्यागने की साधारण प्रथा थी। (मध्यकालीन पेरिस नगर में भी यही प्रथा थी जहाँ पर पैदल चलने वालों पर मकान की छत पर से 'गार लेऊ' (पानी से सावधान रहो) की आवाज के साथ रात्रि में आक्रमण कर दिया जाता था। यदि वह बुद्धिमान व्यक्ति होता था तो फौरन कूद कर अलग हो जाता था।) अधिक ठोस मल (पयखाने) को घास से बँधे हुए मिट्टी के बरतनों में प्रत्येक घर में इकट्ठा कर लिया जाता था और सप्ताह में एक बार भंगियों द्वारा फिकवा दिया जाता था। कुछ नगरों में, जहाँ की मिट्टी ऐसी होती थी, प्रत्येक घर में एक गहरा कुआँनुमा पायखाना होता था जिसको साफ नहीं किया जाता था। १८६३ ई० तक लाहौर के बाहर ब्रिटिश छावनी में भी यह प्रथा कायम थी।

आधुनिक ढंग के जन-उद्यान के अभाव की पूर्ति यत्र-तत्र बेकार पड़े हुए भू-भागों अथवा नदी-तटों और राजा अथवा अमीरों के पार्कों द्वारा होती थी। इनमें बहुत कम जनता अथवा कुछ चुने हुए व्यक्ति ही आते-जाते थे। प्रत्येक कस्बे में फकीरों की कब्रों की अधिकता थी। साधारणतया इनके चारों ओर हरे वृक्ष अथवा घास के मैदान होते थे जहाँ पर इनके भक्तों को आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। फकीर की मृत्यु की वर्षगाँठ (उर्स) तथा वर्ष के एक या दो दूसरे पवित्र अवसरों पर यहाँ एक बड़ा जनसमूह एकत्र होता था और वहाँ उनके घेरों में मेला लगता था। ये साधारणतया नगर की दीवारों के ठीक बाहर होती थीं।

दातव्य औषधालयों, सहायतार्थ भोजनालयों अथवा अनाजों की भिक्षा और प्रारम्भिक शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत लोगों से था; नगर प्रशासन का यह कर्तव्य न था। किन्तु इनके लिए साधारणतया व्यक्तिगत दान की कमी न थी।

३. नगरों में करारोपण

स्थानीय करारोपण के अति महत्वपूर्ण विषय के प्रश्न पर मुग़ल सरकार आधुनिक नगरपालिकाओं के प्रसिद्ध करों को अर्थात् गृह-कर, जल-कर, प्रकाश-कर अथवा कूड़े-करकट की सफाई सम्बन्धी कर नहीं लगाती थी क्योंकि मध्यकालीन नगर प्रशासन इस प्रकार की कोई सेवा नहीं करता था। जब कभी भी गृह-कर (खान-शुमारी) और प्रति व्यक्ति पर कर लगाया जाता था तो सम्राट् बाद में इन्हें अवैधानिक (आबवाब) घोषित कर देते थे। मार्ग में सामानों पर सीमा-शुल्क (राहदारी) तथा चुंगी अथवा खपत के स्थानों में सामानों के प्रवेश पर लगाया गया कर भी आबवाब (कुरान की विधि के अनुसार निषिद्ध) घोषित थे; किन्तु यह सब होते हुए भी जागीरदार तथा स्थानीय अधिकारी अपने क्षेत्र में इन्हें लगा देते थे।

बाजार-कर अथवा बाजार में दुकानों के स्थान का किराया एक अत्यन्त उचित कर था और यह प्रायः लगाया जाता था किन्तु इसकी आमदनी भू-स्वामी (सम्राट् अथवा किसी अमीर जागीरदार) की होती थी। इससे नगर प्रशासन को कोई आय न होती थी। नगर की आय का अत्यन्त लाभकारी स्रोत अनाज के बाजार तथा नमक के बाजार (मंडवी) पर लगाया गया कर था। इसमें अहमदाबाद तथा गुजरात के कुछ दूसरे बड़े नगरों के वस्त्र-बाजार (कटरा-ए-पार्चा) विशेष उल्लेखनीय हैं। इसकी वसूली का भार एक शाही अधिकारी (अथवा अमीर के एजेण्ट) पर था। इसे गंज का करोड़ी कहते थे। एक बड़े नगर के भोजन-प्रदाय (सप्लाई) में कभी असफल न होने वाली जिम्मेदारी से युक्त उसके अधिकार और उसकी प्रतिष्ठा अधिक थी। उसका विभाग वस्तुतः सीमा-शुल्क का अंग था न कि चुंगी का।

४. पुलिस और न्याय

नगर बाजार की नाप और तोल जन-आचार विवाचक (मुहतसिब) की देखरेख में थी। वह सशस्त्र सैनिकों के दल के साथ शराब, भांग आदि के क्रय तथा सेवन, जुआ खेलने तथा इस्लाम के विरुद्ध अन्य प्रथाओं को दूर करने और तोल तथा नाप की जाँच करने के लिए इधर-उधर गश्त किया करता

था। किन्तु औरंगजेब के शासनकाल के पश्चात् विवाचक (सेन्सर) के पद का पतन हो गया था और कोतवाल को व्यवस्था बनाये रखने के अतिरिक्त इस कार्य को भी करना पड़ता था। अठारहवीं शताब्दी में दिल्ली में घरों में सेंध लगाकर चोरी करने का कार्य अत्यन्त व्यापक था।

जब सम्राट् अथवा कोई बड़ा सूबेदार अपने निवास-स्थान पर (अर्थात् राजधानी में) नहीं होता था तो कोतवाल ही वहाँ पर शासन करता था। एक क्रूर अथवा धृष्ट सम्राट् के अधीन भी नागरिकों को इस पुलिस अधिनायक के ही आतंक में रहना पड़ता था। छोटे-छोटे अपराधों से सम्बन्धित सभी अभियोगों की संक्षिप्त कार्यवाही द्वारा वही जाँच-पड़ताल किया करता था और उसे न्यायिक दण्ड देने का भी अधिकार था। भारत के बाहर के मुसलमानी देशों में कोतवाल शब्द का प्रयोग एक क्रूर अत्याचारी के लिए किया जाता था।[1] दिल्ली में यह पद साधारणतया अबीसीनियों अथवा नीग्रों को दिया जाता था जो अपनी पाषाण-हृदयता तथा यातना देने में कठोरता के लिए कुख्यात थे। चौथे अध्याय के पाँचवें अनुच्छेद में उल्लिखित इस कार्यालय के लिए निर्धारित सैद्धान्तिक योग्यता केवल आदर्श मात्र थी; उसकी पूर्ति कभी नहीं हुई। वह राज-प्रिय होता था क्योंकि नगर में सरकारी जासूसी संगठन का वही प्रधान होता था।

[1] वे लोग जो 'साहब-अल-शूर्ता' के पद पर नियुक्त थे, अपनी क्रूरता तथा विवेकशून्य आचरण के लिए कुख्यात थे। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, सप्लीमेण्ट, पृ० २०७; इब्नकुतैबा का उद्धरण]

अध्याय १४

सरकारी पत्र और मोहरें

१. सचिवों की पत्र-संग्रह करने की विधि

मुग़ल सम्राटों के पास एक अत्यन्त विस्तृत सचिवालय अथवा पत्रों का विभाग (दारुल-इंशा) था और इस विभाग के कागज-पत्र, जो इस समय उपलब्ध हैं, मुग़ल इतिहास के आधुनिक छात्रों के लिए इतने उपयोगी हैं कि उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। सम्राट् के दरबार अथवा शिविर से, सामन्त राजकुमारों अथवा प्रान्तीय वायसरायों के पास, उसके दरबार में उनके रोके हुए एजेण्टों द्वारा भेजे गये अखबार अथवा किसी घटना के सम्बन्ध में संक्षिप्त मुद्रित विवरण पत्र तथा औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल के सुरक्षित बहुत-से पत्र इतिहासवेत्ताओं के लिए निस्सन्देह बड़े महत्त्व के हैं। किन्तु औरंगजेब से सम्बन्धित ऐतिहासिक सूचनाओं का मुख्य भण्डार समकालीन पत्रों में निहित है जो उपर्युक्त अखबारों के साथ-साथ उसके शासनकाल के इतिहास के लिए अत्यन्त कच्ची सामग्री अथवा अत्यन्त प्रामाणिक स्रोत हैं। इन पत्रों को सुरक्षित रखने के लिए हम तत्कालीन सम्राटों के आदेशों अथवा उस समय प्रचलित तत्सम्बन्धित प्रथा के प्रति ऋणी न होकर उन सचिवों (मुंशियों) के साहित्यिक अभिमान के आभारी हैं जो इन्हें लिखा करते थे। इनमें से प्रत्येक अपने पास उन पत्रों की प्रतियाँ रख लेता था जिन्हें वह अपने स्वामी की ओर से लिखा करता था। इसके पश्चात् वह एक औपचारिक भूमिका तथा अन्त में नाम, पता और तिथि के साथ एक पुस्तक के रूप में उनका संग्रह कर लेता था और उसे संसार के समक्ष प्रस्तुत कर देता था। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार वह दूसरों को उन्हें पढ़ने तथा नकल करने की अनुमति दे देता था क्योंकि उन दिनों लोग भारत में मुद्रण नहीं जानते थे। कभी-कभी तो मृत सचिव की विद्वता के सबसे अच्छे साहित्यिक स्मारक के रूप में इस 'पत्र-पुस्तक' का प्रकाशन उसके पुत्र अथवा उसके अनुरक्त मित्र की पवित्र देखरेख का फल होता था। एक बार पुस्तक के

प्रकाशित हो जाने पर इसके चुने हुए विषय विविध प्रकार के पत्रों के संग्रह तथा पत्र लेखन-कला की पाठ्य पुस्तकों में (उदाहरणस्वरूप) सम्मिलित कर लिये जाते थे। इस प्रकार के कुछ पत्र सुरक्षित हैं यद्यपि वे पुस्तकें जिनके वे मूल रूप में अंग थे, नष्ट हो चुकी हैं। ऐतिहासिक महत्त्व के बहुत-से एकलित पत्र, जो (उसी व्यक्ति द्वारा न लिखे हुए होने अथवा एक पुस्तक के लिए पर्याप्त संख्या में न होने के कारण) किसी संग्रह में कभी भी सम्मिलित नहीं किये गये थे, चुने हुए पत्रों के साधारण संग्रहों में सम्मिलित किये जाने के कारण नष्ट होने से बच गये हैं।

ये पत्र-पुस्तकें ऐतिहासिक उद्देश्यों के लिए नहीं अपितु साहित्यिक उद्देश्यों के लिए एकत्र और प्रकाशित की गयी थीं। इन मुंशियों के मस्तिष्क में मुग़ल-साम्राज्य के भावी ऐतिहासिक नहीं वरन् उस समय का शिष्ट समाज था। भावी सन्तानों के लिए ऐतिहासिक सामग्री छोड़ना उनका उद्देश्य न था; उनका उद्देश्य तो साहित्य शास्त्र तथा पत्र सम्बन्धी भाषा के विद्यार्थियों के समक्ष रचना के आदर्शों को उपस्थित करना तथा (पत्र-लेखन) शैली पर अपने निजी अधिकार का प्रदर्शन करना था। कुछ लिपिकों ने वंशानुगत व्यवसाय में अपने पुत्र-पौत्रों को दीक्षित करने के लिए स्वरचित सरकारी तथा निजी पत्रों को सुरक्षित एवं उनका संग्रह कर लिया था। मुंशियों में से प्रत्येक फारसी पद्य अथवा चुटकुले लिख सकता था। जिस प्रकार 'अबजद' के नियमों के अनुसार गणना की जाती है, उसी प्रकार गणना करने पर एक महत्त्वपूर्ण मुहावरे अथवा वाक्य में आये हुए अरबी अक्षरों के सांख्यिक मूल्य के योग द्वारा एक घटना की तिथि निकल आती थी।

बाद के कुछ संग्रह लेखक की कला का उदाहरण प्रस्तुत करने वाली स्वीकृत पाठ्य-पुस्तकें हैं। ये पद्य अथवा सुसज्जित गद्य में कलम अथवा पत्र-लेखन (इंशा) कला की प्रशंसा के साथ आरम्भ होती हैं। इसके पश्चात् अक्षर की कल्पित उत्पत्ति तथा विकास के सम्बन्ध में एक वार्ता, लेखन-कार्य की विभिन्न ज्ञात शैलियों और उनके प्रवर्तकों का वर्णन होता है। तदनन्तर उदाहरणार्थ पत्रों का उल्लेख रहता है। फिर भी ये पत्र-पुस्तकें मुग़ल-साम्राज्य के पतनोन्मुखकाल की हैं जबकि दरबार ने इतिहास का निर्माण बन्द कर दिया था।

२. हिन्दू मुंशी और उनके कार्य

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के बाद के अधिकांश मुंशी हिन्दू थे और उनकी

संख्या द्रुत गति से बढ़ी। टोडरमल (अकबर के माल-मन्त्री) के समय से बहुत पहले से ही, सम्भवतः भारत में मुस्लिम शासन के उदय से, माल-विभाग (दीवानी) के छोटे पदों पर हिन्दुओं का एकाधिकार था। शेरशाह के समय में राज्य के समस्त कागजों की एक प्रति को फारसी में तथा दूसरी प्रति को हिन्दी में तैयार करने के विरुद्ध टोडरमल द्वारा अपने विभाग के सभी कागजों को फारसी में लिखने के आदेश ने राज्य के हिन्दू अधिकारियों को फारसी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए विवश किया और इस परिवर्तन का प्रभाव अगली शताब्दी में उस समय स्पष्ट हो गया जबकि राज्य का लेखा-विभाग हिन्दुओं से भर गया और हिन्दू विभिन्न विभागों के प्रधानों के सहायक तथा वैयक्तिक सहायक (नायब और पेशदस्त) भी हो गये। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में अधिकांश अमीरों तथा राजकुमारों ने भी अपने फारसी पत्रों को लिखने के लिए हिन्दू मुंशियों को नियुक्त किया था। दक्ष, संयमी, परिश्रमी तथा चतुर हिन्दुओं ने इस कार्य को सुचारु रूप से तथा कम मूल्य पर किया था। ईरान में पैदा हुआ अथवा वहाँ का शिक्षित मुसलमान क्लर्क अधिक चतुर होता था और अधिक शुद्ध मुहावरों का प्रयोग करता था, किन्तु वह इतना महँगा था कि भारत में उसे नियुक्त करना कठिन था। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में उस देश की राजनीतिक अव्यवस्था के कारण ईरान से ऐसे व्यक्तियों का आना बन्द हो गया। लिपिकों के कार्य के लिए, नियमानुसार, भारतीय मुसलमान सन्तोषप्रद न थे।

हरकरन इतवारखानी (१६२४ ई०) के बाद दूसरा प्रसिद्ध हिन्दू मुंशी चन्द्रभान था जो साहित्य-जगत् में 'ब्राह्मण' उपनाम से विख्यात था। वह शाहजहाँ के वजीर सादुल्लाखाँ का आश्रित था। उसके ऐतिहासिक महत्त्व के पत्रों के अतिरिक्त ललित गद्य तथा रूढ़िगत पद्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के पश्चात् अधिकांश अमीरों के अधीन हिन्दू क्लर्कों की संख्या द्रुत गति से बढ़ती गयी, यहाँ तक कि अठारहवीं शताब्दी में सम्राट् मुहम्मदशाह का सचिव (मीर मुंशी) भी एक हिन्दू ही हुआ। इसका नाम आनन्दराम था जिसका उपनाम 'मुखलिस' था।

जैसा कि भीमसेन के संस्मरणों से हमें ज्ञात होता है, मुगल-साम्राज्य के हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति के क्लर्कों तथा कार्यालय के दूसरे सहायकों में परस्पर भ्रातृत्व था। वे अत्यन्त घनिष्ठता के साथ रहते और परस्पर एक-दूसरे की सहायता करते थे। वे एक-दूसरे की दावतों एवं उत्सवों में भी सम्मिलित होते थे। एक ही विभाग की नौकरी के बन्धन के अतिरिक्त वे सूफी

दर्शन के अपने प्रेम के कारण भी भ्रातृत्व के सूत्र में बँधे हुए थे। सत्रहवीं शताब्दी में और विशेष रूप से अठारहवीं शताब्दी में भारत के ईरानी सभ्यता वाले अधिकारी-वर्ग का यह मिलन-स्थान बन गया था। उनकी पत्र-पुस्तकें प्रायः मुंशियों की निजी रचनाओं अथवा उनके प्रिय लेखकों के सूफी मत सम्बन्धी पद्यों के संग्रह के साथ समाप्त होती हैं।

३. सरकारी पत्रों की शैली एवं उन पर मोहर लगाने का कार्य

जहाँ तक सरकारी पत्रव्यवहार अर्थात् सम्राट् द्वारा भेजे गये अथवा उसके यहाँ आये हुए सरकारी पत्रों तथा प्रार्थनापत्रों की शैली का सम्बन्ध है, वह अत्यन्त सुसज्जित, विस्तृत, एक वैधानिक दस्तावेज की भांति व्यर्थ और सर्वोत्कृष्ट उपाधियों से युक्त थी। अकबर की ओर से अबुल फजल द्वारा लिखे गये पत्रों में प्रयुक्त दोषपूर्ण शैली को अपनाने के लिए वे विवश थे। इस दोषपूर्ण प्रणाली को अपनाने के साथ-साथ मुंशी सरकाण प्रथा द्वारा भी आबद्ध थे। इसके अनुसार राजकुमारों तथा उच्च अधिकारियों की उपाधियां पहले से ही निश्चित रहती थीं। कभी-कभी तो एक शासक और मन्त्री की उपाधियों का विवरण ८$\frac{1}{8}$" चौड़े कागज की क्रमशः छः और तीन पंक्तियों तक का होता था। सभी सरकारी पत्रों के आरम्भ और अन्त में, यथा, आजकल की भांति "I beg most respectfully to state"—मैं अत्यन्त सम्मानपूर्वक निवेदन करने के लिए प्रार्थना करता हूँ—तथा "I have the honour to be your most obedient servant"—मैं आपका अत्यन्त आज्ञापालक भृत्य होने की प्रतिष्ठा रखता हूँ—और विशेष विषय आरम्भ करने अथवा किसी विशेष प्रकार के आदेश देने में एक निश्चित शैली का अनुसरण करना पड़ता था। इस प्रकार विधिवत् लिखे गये पत्र की नकल करना अत्यन्त कष्टकारक था। इसे संक्षिप्त करने के लिए 'सम्पादक' अथवा प्रतिलिपि तैयार करने वाले (नकल-नवीस) ने कुछ पाण्डुलिपियों में लम्बी तथा व्यर्थ की बातों को छोड़ दिया है और 'मी-रसानद के' अथवा 'निवेदन है कि' के साथ आरम्भ किया है।

सत्रहवीं शताब्दी में सरकारी उपाधियाँ अत्यन्त औपचारिक होती थीं। सम्राट् से लेकर मामूली कप्तानों और छोटे-छोटे सिविल अधिकारियों तक को सम्बोधित करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न उपाधियाँ पहले से ही निश्चित थीं और सरकारी रजिस्टर (दस्तूरुल अम्ल) में दर्ज थीं। विशिष्ट आदेश द्वारा क्लर्कों को सूचना दिये जाने पर इनमें समय-समय पर परिवर्तन हो जाया

करता था। 'ईश्वर की छाया' (सम्राट्) अथवा उसके पुत्रों[1] को नाम लेकर पुकारना महान् अनौचित्य माना जाता था। मुग़ल-साम्राज्य के पतनोन्मुख काल में यही नियम प्रधान वजीर तक के लिए लागू होता था। उनमें से प्रत्येक अपने जीवन काल में खलीफा और 'ईश्वर की छाया' तथा मरने के पश्चात् एक 'पृथक् उपाधि' के नाम से पुकारा जाता था, जिनकी व्याख्या की आगे चलकर आवश्यकता पड़ती थी। इस प्रकार बाबर, हुमायूं, अकबर जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा बहादुरशाह प्रथम क्रमशः फिरदौस मकानी, जन्नत-आशयानी, अर्श-आशयानी, जन्नत मकानी, आला हजरत फिर-दौस आशयानी, खुल्द-मकान तथा खुल्द-मंजिल के नाम से याद किये जाते थे। इन सभी शब्दों का अर्थ 'स्वर्ग में अवस्थित' है। जीवित राजकुमार भी इसी प्रकार की रूढ़िगत किन्तु विशेष उपाधियों के नाम से पुकारे जाते थे, जैसे दारा-शिकोह को 'शाहेबुलन्द-इकबाल', शाहआलम को 'मिहिर-पुरे-खिलाफत', मुहम्मद आजम को 'शाहे अलीजाह' आदि कहा जाता था। जहाँनआरा का उल्लेख उसकी मृत्यु के पश्चात् केवल "तत्कालीन आध्यात्मिक मालकिन" के नाम से किया जाता था। शाहजादे मुहम्मद अकबर के विद्रोह तथा साम्राज्य के शत्रुओं के पास उसके भाग जाने के पश्चात् सम्राट् द्वारा आदेश दिया गया था कि उसे दरबार तथा सभी सरकारी कागजों में 'विद्रोही' (बाग़ी) और कभी-कभी 'अकबरे अब्तर' कहा जाय (अकबर का अर्थ 'सबसे महान्' तथा अब्तर का अर्थ 'अति नीच' है)।

किसी भी सरकारी पत्र पर, चाहे वह सम्राट् के लिए लिखा गया हो अथवा एक राजकुमार के पास लिखा गया हो, अथवा उनके पास से भेजा गया हो, हस्ताक्षर नहीं किये जाते थे। सभी पत्रों पर मोहर लगायी जाती थी चाहे वे पत्र निम्नतम कोटि के अधिकारी द्वारा ही लिखे गये हों।

---

[1] जहाँ तक सम्राट् की पुत्रियों और पत्नियों का प्रश्न था, वे स्वर्गीय विभूतियाँ केवल अत्यन्त संशयात्मक ढंग से 'पवित्रता के घूँघट के अन्तर्गत गुप्त', 'समय की रबिया', 'वैभव तथा बादशाह के पर्दे के पीछे वाली' के रूप में इंगित की जा सकती हैं।

औरंगजेब के दरबार के समाचारपत्रों (अखबारात) में बराबर दिये जाने वाले आदेशों का उल्लेख है कि किस प्रकार सरकारी पत्र-व्यवहार में किसी अधिकारी को सम्बोधित किया जाना चाहिए। आदाबे-आलमगीरी में उसके शासनकाल के प्रथम भाग की उपाधियों की एक लम्बी सूची दी हुई है। [ओ० पी० एल० पाण्डुलिपि, फोलियो २०९ब-२१३अ]

फरमान के एक सिरे पर शाही मोहर लगाने के अतिरिक्त उसके नीचे वजीर की मोहर लगायी जाती थी, और भू-अनुदान, सन्धि, अथवा विशेष अनुग्रह (वाले पत्रों) पर सम्राट् के सिन्दूरी रंग में डूबे हुए पंजे की छाप लगा दी जाती थी। (वह अपने पंजे की एक रबड़ की आकृति अपनी दाहिनी कांख के नीचे कोट के थैले में रखा करता था।) राजकुमार भी ऐसा ही करते थे, जबकि वे प्रान्तीय गवर्नर के पद पर कार्य करते थे। जब एक पत्र अथवा आदेश की शुद्ध प्रति को सम्राट् (अथवा राजकुमार) स्वीकृत करता था तो वह अन्तिम पंक्ति के अन्तिम शब्द के पश्चात् (अथवा इसके जरा-सा नीचे) अपनी स्वीकृति के लिखित प्रमाणस्वरूप सद[2] अक्षर लिख दिया करता था ('सद' सही अथवा ठीक का संक्षिप्त रूप है)। प्रायः सम्राट् (अथवा राजकुमार) पत्र के सिरे पर उसकी सत्यता के प्रमाणस्वरूप अथवा सम्बोधित व्यक्ति की प्रतिष्ठा के विशेष चिह्नस्वरूप अपने हाथ से कुछ पंक्तियां जोड़ दिया करते थे। इनमें कुछ सामान्य बातें अथवा आदेश को तत्परता से पालन करने के लिए निर्देश होता था; किन्तु वास्तविक सन्देश पत्र में ही होता था जिसकी रचना मुंशी ही करता था और सचिवालय का एक सुन्दर लेखक (खुशनवीस) उसकी नकल करता था। सम्राट् द्वारा जोड़ी जाने वाली ऐसी बातों का आदाबे-आलमगीरी में अलग से उल्लेख है।

सरकारी पत्रों में सम्राट् (अथवा राजकुमार) का नाम (अर्थात् उनकी रूढ़िगत उपाधियां) पत्र के ढांचे में से प्रसंग के बाहर निकाल लिया जाता था और कागज के सिरे पर प्रतिष्ठा के चिह्नस्वरूप ठीक उसी प्रकार लिख दिया जाता था जिस प्रकार हिन्दू एक देवता अथवा देवी के नाम को उसकी पूजा के लिए निमन्त्रण-पत्र भेजते समय लिखते हैं। पत्र के ढांचे में एक खाली स्थान छोड़कर वाक्य में 'उन्नत' शब्द की ठीक स्थिति का संकेत किया जाता था।

---

[2] कुछ फरमानों में, जिन्हें मैंने देखा है, 'सद' काफी स्पष्ट है किन्तु साधारणतया वह पूरा नहीं किया गया है क्योंकि 'अक्षर' के प्रथम भाग को बनाने वाला केवल अण्डवृत्त (ص) ही दिया हुआ है किन्तु इसकी पूंछ बनाने वाला अर्द्धवृत्त (ر) नहीं दिया हुआ है। सम्राट् की अन्तिम स्वीकृति के लिए सरकारी कथन था कि "पत्र अथवा आदेश 'सद' पहुँचा"। आजकल के बंगाल के जमींदार भी अपने एजेण्टों तथा असामियों को लिखे गये अपने पत्रों पर अपना नाम न लिखकर केवल 'श्री-सही' शब्द लिख देते हैं। इसके पश्चात् एक सर्प की पूंछ की भाँति कलम से एक सुसज्जित चित्र बना दिया जाता था। यह प्रथा मुग़ल-साम्राज्य की ही देन है।

जब कोई सरकारी पत्र पाने वाले के पास पहुँचता था तो उसका सचिव (मुंशी) उसकी पीठ पर 'अर्ज दीदा शुद' शब्दों के साथ उसके पहुँचने और उसके पढ़ने की तिथि लिख देता था। भूमि अथवा अनुग्रह स्वीकार करने वाले फरमान सदैव सम्राट् को प्रभावित करने के निमित्त किसी मन्त्री अथवा दरबार के किसी प्रियजन द्वारा दिये गये प्रार्थनापत्र के फलस्वरूप निकाले जाते थे और ऐसे मध्यस्थों का नाम फरमान की पीठ पर 'रसालातुन' (माध्यम द्वारा) शब्द के द्वारा दर्ज कर दिया जाता था। इस सम्बन्ध में यहाँ भू-दान सम्बन्धी प्राचीन हिन्दू अभिलेखों की समान प्रथा का अवश्य उल्लेख करना चाहिए जिनके अन्त में मध्यस्थ (दूतक) का नाम दिया होता था।

शाही फरमान को लेने के लिए प्रापक एक उत्सव की आयोजना करता था, किन्तु यहाँ उसकी विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। प्रापक शाही फरमान का स्वागत करने के लिए कई मील आगे से आता था, तदनन्तर फरमान को अपने सिर पर रखता था और अपनी आँखों से लगाता था।[3]

४. पत्रों के भेद और उनके नाम

मुग़ल-साम्राज्य के सरकारी पत्र कई प्रकार के थे और उनमें से प्रत्येक का अपना अलग-अलग नाम था। उनके नाम निम्नलिखित हैं:

(१) **फरमान, शुक्का, अह्काम (एकवचन के स्थान पर बहुवचन का गलत प्रयोग; यह आदरसूचक शब्द था?) और औरंगजेब के पत्रों के बाद के एक संग्रह में, रम्ज-व-इशारा**—इन नामों का तात्पर्य किसी भी ऐसे पत्र से था जो सम्राट् द्वारा स्वयं अथवा व्यक्तिगत रूप से किसी दूसरे व्यक्ति के पास लिखा गया था चाहे वह उसके वंश का राजकुमार, प्रजा अथवा विदेशी शासक हो। (रुक्का एक भद्दा आधुनिक नाम है जिसका सरकारी तौर पर कभी भी प्रयोग नहीं किया गया था।)

(२) **निशान**—किसी शाहजादे द्वारा, सम्राट् को छोड़कर, किसी को भी लिखा गया पत्र।

(३) **अर्जदाश्त (संक्षिप्त रूप, अर्जी)**—सम्राट् अथवा किसी शाहजादे को

---

[3] मुग़ल-साम्राज्य के कुछ अधीनस्थ राजाओं ने (विशेष रूप से दकन में) अपनी राजधानी से छह अथवा आठ मील दूर पर फरमान-बाड़ी कही जाने वाली एक इमारत का निर्माण करवाया था जहाँ पर वे फरमानों को लेने के लिए जाया करते थे।

प्रजा द्वारा तथा सम्राट् को किसी शाहजादे द्वारा लिखा गया पत्र। विजय-पत्र को पारिभाषिक रूप से 'फतहनामा' कहते थे।

(४) हश-उल-हुक्म (अर्थात् आज्ञा से)—सम्राट् के संकेत पर उसके आदेशों के सूचनार्थ किसी मन्त्री द्वारा व्यक्तिगत रूप से लिखा गया पत्र।

(५) अहकाम तथा रम्ज (बहुवचन रुमूज़)—इन शब्दों को आशय की बातों तथा काल्पनिक और धार्मिक पुस्तकों से सम्बन्धित उद्धरणों तक ही सीमित रखना चाहिए जिन्हें सम्राट् अपने सचिव को, सरकारी पत्रों की सामग्री के निमित्त, बोल दिया करता था और जिन्हें बाद में रूढ़िगत विधियों के अनुसार पूर्ण रूप से लिख लिया जाता था। औरंगजेब के अन्तिम वर्षों के ये लेख तो सुरक्षित हैं किन्तु पूर्ण पत्र सुरक्षित नहीं हैं।

(६) सनद (नियुक्ति-पत्र)—किन्तु वायसरायों को नियुक्त करने में फरमान शब्द का प्रयोग किया जाता था।

(७) परवाना—किसी अधीनस्थ अधिकारी के लिए एक शासकीय आज्ञा अथवा निर्णय, साधारणतया कचहरी के किसी मुकदमे का परिणाम।

(८) दस्तक—विशेष रूप से सामान को लाने और ले जाने अथवा शिविर या दरबार में किसी व्यक्ति के प्रवेश के लिए एक छोटा-सा सरकारी आज्ञापत्र (पास) अथवा अनुमति-पत्र (परमिट)।

(९) रुक्का—एक व्यक्तिगत पत्र, अथवा दो मित्रों के बीच का पत्र।

[महज़रनामे को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि यह केवल एक कानूनी प्रतिवेदन (लॉ रिपोर्ट) था। इसमें भूमि सम्बन्धी झगड़ों अथवा अपराधों के सम्बन्ध में स्थानीय जाँच-पड़ताल का परिणाम दिया जाता था। इसके साथ ही साथ उसमें उपस्थित लोगों (पंचों और साक्षियों) का नाम तथा प्रमाण का संक्षिप्त विवरण भी दिया जाता था। महाराष्ट्र के, इसके बहुत-से, उदाहरण मुद्रित हैं।]

५. फरमानों को लिखने तथा उन पर हस्ताक्षर करने की सरकारी विधि

शाहजहाँ के सरकारी इतिहास-लेखक अब्दुल हमीद लाहौरी ने (आईने अकबरी, पृ० १४८) उसकी शैली का इस प्रकार वर्णन किया है :

"दीवाने-खास में सम्राट् स्वयं अपने हाथों से कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रों का उत्तर लिखा करता था। अमीरों के दरबारी एजेण्टों (वकीलों), वजीरों अथवा सूबेदारों के पत्रों को पढ़ने के लिए नियुक्त अधिकारियों (अरीज़ाख्वाँ) द्वारा

सम्राट् को दिये गये दूसरे पत्रों के उत्तर में वह मौखिक रूप से अपनी इच्छा प्रकट कर देता था और उसी के अनुसार सचिव लोग फरमान लिखते थे। इसके पश्चात् उनके लेखों (मसौदों) को उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता था जिन्हें वह शुद्ध करता और उनकी भाषा और अर्थ को सुधारता था।

"वह शाहजादा, जिसे 'रिसाल' (मध्यस्थता) का अधिकार दिया गया था फरमान के पीछे अपना 'रसालतून' लिखा करता था और इस पर अपनी मोहर से सील लगाया करता था। रिसाल के नीचे दीवान अपना मारफत अथवा तथ्य के सम्बन्ध में अपना नोट लिखता था कि फरमान उसी के हाथों से भिजवाया गया था। (इस नोट के बिना फरमान व्यर्थ होता था, जैसा कि औरंगजेब के शासनकाल में सूरत के अंग्रेज व्यापारियों को निराशा हुई थी।) इसके पश्चात् फरमान को 'औज़क' मोहर से सीलबन्द करने के लिए अन्तःपुर में भेज दिया जाता था। सम्राज्ञी इस मोहर की रक्षा करती थी।"

जैसा कि औरंगजेब के दरबार के इतिहास (आलमगीरनामा, पृष्ठ ११०१) से हमें ज्ञात है, उसका क्रम भी ऐसा ही था। इसमें निम्नलिखित बातें अधिक थीं :

"पत्र पाने वालों की मर्यादा को बढ़ाने तथा उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए अथवा आदेश की आवश्यकता तथा लिखित बात की महत्ता पर बल देने के लिए······अथवा पत्रों की यथार्थता के सम्बन्ध में सभी शंकाओं को दूर करने के लिए, बड़े अमीरों को लिखे गये कुछ पत्रों का आरम्भ सम्राट् स्वयं अपने हाथों से करता था।

स्वर्ण-रेणु छिड़के हुए कागज पर बड़े-बड़े और सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई फरमान की शुद्ध प्रति पर मोहर लगायी जाती थी। तदुपरान्त उसे लपेट कर सोने के बेलबूटे कढ़े हुए कपड़े के एक लम्बे तथा पतले थैले में रखा जाता था। इस थैले का मुँह रंगीन डोरियों से बाँधा जाता था और इस पर वजीर की मोहर से चपड़ा लगाकर सील लगा दी जाती थी। ऐसे थैलों को 'खरीता' कहते थे। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० २६४; पर्चे, जिल्द ६, पृ० ५०] इनमें से बहुत-से अब भी जयपुर के प्रासाद में सुरक्षित हैं।

मोहरें—केवल सम्राट् का नाम धारण करने वाली एक छोटी-सी गोल मोहर को औज़क कहते थे और यह 'फरमाने सिब्ती' (अर्थात् उच्च कार्यालयों को भेजे जाने वाले पत्रों तथा जागीर, सयुर्घल और दैनिक भत्ते की स्वीकृति से सम्बन्धित पत्रों) के लिए प्रयोग में लायी जाती थी। [आईने अकबरी, जिल्द १,

पृ० २६०] इसके अलावा एक बड़ी गोल मोहर और थी। इसके केन्द्र में एक वृत्त में सम्राट् का नाम होता था तथा केन्द्र के चारों ओर घेरों में तैमूर तक के उसके पूर्वजों का नाम अंकित होता था। प्रारम्भ में इसका प्रयोग केवल विदेशी राजाओं के यहाँ भेजे जाने वाले पत्रों के लिए किया जाता था किन्तु बाद में यह सभी प्रकार के फरमानों पर लगायी जाने लगी थी। [आईने अकबरी, जिल्द १, पृ० ५२] अत्यावश्यक अथवा गोपनीय आदेशों पर केवल शाही मोहर लगायी जाती थी। ऐसे आदेशों को फरमाने-बयाजी कहते थे। दूसरे सभी फरमानों, परवानों तथा बरातों पर वजीर के नीचे के अधिकारियों का एक दल मोहर लगाता था। [आईने अकबरी, पृ० २६३-२६४]

६. एक राजकुमार (शाहजादे) अथवा अमीर के सचिव (मुंशी) की पत्र-पुस्तक की विषय-सूची

एक राजकुमार अथवा शाहजादे के सचिव (मुंशी) की पत्र पुस्तक में पत्र निम्नलिखित ढंग से व्यवस्थित होते थे :

(१) उसके स्वामी के यहाँ से सम्राट्[४] को लिखे गये पत्र। (किसी-किसी में उसके उत्तर भी होते थे।)

(२) उसके स्वामी के यहाँ से राजकुमारों को लिखे गये पत्र।

(३) उसके स्वामी के यहाँ से मन्त्रियों, दूसरे उच्च अधिकारियों तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को लिखे गये पत्र।

(४) उसके स्वामी के यहाँ से अपने मित्रों, सम्बन्धियों, राज्य के एजेण्टों तथा दरबार के वकीलों को लिखे गये पत्र।

(५) मुंशी के यहाँ से उपर्युक्त चार वर्गों के लोगों के पास लिखे गये पत्र—

(क) अपने स्वामी की ओर से अर्थात् हस्व-उल-हुक्म के ढंग के पत्र (किन्तु इन पत्रों की शैली हस्व-उल-हुक्म की शैली से भिन्न होती थी।)

(ख) अपनी (मुंशी की) ओर से।

(६) मुंशी के यहाँ से उसके निजी सम्बन्धियों को लिखे गये पत्र। (इनमें अधिकांश पत्र व्यर्थ हैं।)

(७) मुंशी के यहाँ से दूसरे मुंशियों तथा कवियों के पास लिखे गये पत्र। ये सुसज्जित गद्य अथवा पद्य में होते थे। इनमें कम से कम भाव और

---

[४] कुछ पत्र सिकर में (जिसे फारसी में मुरमूज तथा हिन्दी में अंक-पल्लवी कहते हैं) लिखे गये थे। इनके (भाषान्तरित) उदाहरण आदाबे-आलमगीरी तथा हफ्त अंजुमन में दिये हुए हैं।

तथ्य की बातें तथा अधिक से अधिक शब्द (शब्द-जाल) होते थे। शैली तथा अलंकार शास्त्र (मुंशियाने) पर अपना अधिकार दिखाना इनका एकमात्र उद्देश्य होता था।

अठारहवीं शताब्दी के पतनोन्मुख काल के बहुत-से पत्र-संग्रहों के अन्त में विशेष अवसरों के लिए उपयुक्त 'आदेश-पत्र' एवं 'रिक्त-प्रपत्र' दिये हुए हैं—यथा, सम्राट् अथवा नवाब के राज्यारोहण, जन्मदिवस, विजय, पुत्र-जन्मदिवस अथवा ईद के अवसर पर बधाई देने वाले पत्र अथवा किसी व्यक्ति के पास उसकी किसी पद पर नियुक्ति अथवा पदोन्नति, विजय, उसके पुत्र के जन्मदिवस अथवा विवाह पर लिखे गये पत्र, ईद के अवसर पर बधाई पत्र, किसी प्रिय की मृत्यु पर शोक-पत्र आदि। (इनमें बीच-बीच में परिचित पद्यों के उद्धरण दिये रहते थे। इनका प्रयोग करते समय केवल रिक्त स्थानों में दूल्हा अथवा मृत व्यक्ति का नाम और सम्बन्ध अंकित कर देना होता था।) विभिन्न पदों से सम्बन्धित नियुक्ति-पत्रों के रिक्त-प्रपत्र (फार्म) भी इनमें दिये हुए हैं। इनमें इन पदों से सम्बन्धित कर्तव्यों का भी उल्लेख रहता है। निगार नाम-ए-मुंशी और इंशा-ए-हरकरन इस प्रकार के पत्रों के उदाहरण हैं। इनके अन्त में प्रायः उपाधियों तथा विभिन्न पदों और कार्यालयों के सम्बोधन के उचित प्रकारों की सूची दी हुई होती है।

जाता था। एक ही नाम, एक ही शुद्धता तथा एक ही उपाधि के सिक्कों के द्वारा सम्पूर्ण साम्राज्य में एक ही द्रव्य-स्तर व्याप्त था। इन सिक्कों में केवल टकसाल-नगरों के नामों का अन्तर होता था। सरकारी कर्मचारी एवं सैनिक एक सूबे से दूसरे सूबे को बहुधा स्थानान्तरित (transfer) होते रहते थे। इस प्रकार एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त में प्रायः स्वदेश का ही अनुभव करते थे; व्यापारी और यात्री एक नगर से दूसरे नगर तथा एक सूबे से दूसरे सूबे को सुविधापूर्वक जाते थे और सभी इस वृहत् देश की राजनीतिक एकता का अनुभव करते थे। इस पर भी, इस राजनीतिक एकता से राष्ट्रीयता नहीं प्राप्त हो सकी थी क्योंकि जनता को न तो नागरिक स्वतन्त्रता ही प्राप्त थी और न देश के शासन में उसका हाथ ही था। वह नागरिक नहीं अपितु एक साम्राज्य की केवल साधारण प्रजा थी।

भारत को मुसलमानों की दूसरी देन ऐतिहासिक साहित्य है। हिन्दुओं में काल-निरूपण सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त अपूर्ण रूप से विकसित हुआ था, क्योंकि शायद वेदान्ती होने के कारण उनका ध्यान नित्यता पर ही केन्द्रित था और उन लोगों ने इस क्षणभंगुर संसार को और इसकी क्षण भर में नष्ट होने वाली घटनाओं को तुच्छ समझा था। मुसलमानों के पूर्व के हिन्दुओं ने किसी सच्चे इतिहास की बिलकुल रचना नहीं की थी। संस्कृत में केवल चार राजनीतिक जीवन-चरित्र सुरक्षित हैं और उन सब में तथ्य अलंकार-शास्त्र, शैली के कौतुक तथा घुमा-फिराकर कहे हुए कथनों की पुष्पराशि से दबे हुए हैं। उनमें किसी में भी हमें तिथि नहीं मिलती है। उस समय भी जबकि हिन्दुओं ने फारसी सीखी और फारसी आदेशों का अनुकरण कर उस भाषा में अपने समय का इतिहास तथा संस्मरण लिखा, उनके ग्रन्थों में तिथियों का दुःखद अभाव था।

दूसरी ओर यहूदियों, फोनीसिया-वासियों तथा मध्य-पूर्व की अन्य जातियों की भाँति अरब-निवासियों की बुद्धि भी शुष्क, विधियुक्त तथा यथार्थ थी। उनमें सभी दस्तावेजों में समय के क्रम से सम्बन्धित भावना विद्यमान है और उनके सभी पत्रों में उनके लिखने की तिथि और महीने का सदैव उल्लेख है। मुसलमानों का ऐतिहासिक साहित्य चाहे कुछ भी छोड़ दे किन्तु वह तिथियों का उल्लेख करना कदाचित् ही भूलता है। इस प्रकार हमें अपने ऐतिहासिक अध्ययन के लिए एक ठोस आधार मिलता है। हजरत मुहम्मद की हिजरत के समय से आरम्भ होने वाले तथा चन्द्र वर्ष के अनुसार गणना किये जाने

वाले एक सन् (era) का प्रयोग मुसलमानों के लिए अत्यन्त सुविधाजनक था क्योंकि इसने मुसलिम प्रभुत्व के अधीन सम्पूर्ण संसार की घटनाओं के सम्बन्ध में तिथि डालने की एकसी पद्धति प्रदान की थी। इसमें तथा हिन्दू अभिलेखों एवं पुस्तकों में प्रयुक्त उलझनपूर्ण संवतों की विभिन्नता और महीनों तथा वर्षों की विभिन्न लम्बाइयों के कारण आश्चर्यजनक अन्तर है। उदाहरणार्थ हिन्दुओं का चन्द्र-सौर वर्ष, जिसमें प्रत्येक मास कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष (व़दी और सुदी) में विभक्त है, जहाँ तक उसके आरम्भ तथा मलमास का सम्बन्ध है, उत्तरी और दक्षिणी भारत में एकसा नहीं है। इसलिए सत्रहवीं शताब्दी के पुराने मराठी कागजों में दी हुई इस प्रकार की तिथियों को ईस्वी सन् में किसी निश्चित शुद्धता के साथ बदलना असम्भव है। मुसलिम तिथियाँ एक समान[२] और भलीभाँति ज्ञात पद्धति का अनुसरण करती हैं।

२. ब्राह्य जगत से स्थापित सम्बन्ध

तीसरे, मुग़ल-साम्राज्य और इसके कथित पठान पूर्वाधिकारियों ने भारत और वाह्य एशियायी जगत् के बीच पुनः सम्बन्ध स्थापित किया था जो कि बौद्ध धर्म के अपने जन्म-स्थान में ही पतन के साथ-साथ नष्ट हो चुका था। बुखारा तथा समरकन्द, वल्ख और खुरासान, ख्वारिज्म और ईरान से अफग़ानिस्तान के सीमान्त दर्रों से होकर भारत में जन और व्यापार की धारा शान्तिपूर्वक बहती रही, क्योंकि मुग़ल-साम्राज्य के लगभग अन्त तक अफग़ानिस्तान दिल्ली के शासकों के ही अधीन था। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में, जहाँगीर के शासनकाल में, प्रति वर्ष चौदह हजार ऊँट तथा व्यापार की वस्तुएँ बोलन दर्रे से होकर भारत से दक्षिणी अफग़ानिस्तान के कन्धार प्रदेश और फिर वहाँ से ईरान को जाया करती थीं। पश्चिमी घाट के हमारे बन्दरगाह—अर्थात् थट्टा, भड़ौंच, सूरत, चौल, राजापुर, गोआ (पुर्तगालियों के अधिकार में आने के पूर्व) तथा करवार—भारत और व्राह्य जगत् के बीच इतने दरवाजों का कार्य करते थे कि समुद्र के द्वारा अरब, ईरान, टर्की, मिस्र, बारबेरी, अबीसीनिया और जंजीबार तक भी पहुँचा जा सकता था। मछलीपट्टम के पूर्वी बन्दरगाह से, जो १६८७ ई० तक गोलकुण्डा के सुलतानों के अधीन तथा उसके पश्चात् मुग़लों के अधीन था, लंका, सुमात्रा, जावा,

---

[२] भारत तथा अन्य देशों में नये चाँद के दृष्टिगोचर होने में अन्तर होने के कारण कुछ महीनों के आरम्भ के समय में उनमें प्रायः एक दिन का अन्तर होता था।

स्याम और चीन को भी जहाज जाया करते थे। अरब के निवासी, अपने चचेरे भाई यहूदियों की भाँति, जन्मजात व्यापारी थे और वे समुद्री जीवन को सुखप्रद समझते थे। जैसा कि हमें "पेरिप्लस आॅव दी एरीथ्रोयिन सी" से ज्ञात है, भारत के पश्चिमी घाट के व्यापार पर ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में उनका एकाधिकार था। सम्पूर्ण अदूर-पूर्व (Near East) तथा मलय जगत् के सभी भागों सहित मध्य-पूर्व (Middle East) का उनके धर्म तथा उनकी पवित्र भाषा में परिवर्तन के कारण एशिया और अफ्रीका के समुद्री व्यापार में उन्हें बड़ी सुविधा मिली।

मुसलमानों ने जिसे आरम्भ किया था, उसे अंग्रेजों ने पूरा कर दिया। आज भारत का एकाकीपन दूर हो चुका है और उसमें सम्पूर्ण बाह्य जगत् की—आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक—धाराओं की लहर दौड़ गयी है।

३. इस्लाम के कारण भारत में धार्मिक परिवर्तन

चौथे, हण्टर तथा कुछ अन्य यूरोपियन लेखकों की यह धारणा है कि मध्यकाल में हिन्दुओं में अद्वैतवाद सम्बन्धी अथवा कम से कम ब्राह्मण और जाति विरोधी आन्दोलन इस्लाम के प्रभाव के कारण हुए थे। किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीनकाल से ही हिन्दुओं के सभी उच्चकोटि के विचारकों, धर्म-सुधारकों एवं भक्तों ने अद्वैतवाद ने सिद्धान्त की घोषणा की है और जनपूजा के असंख्य देवताओं के पीछे एक परमब्रह्म को माना है। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात सत्य नहीं है कि इस्लाम ने हिन्दुओं को अद्वैतवाद की शिक्षा दी। वास्तविकता तो यह थी कि मध्यकालीन भारत के हिन्दुओं के इन विवादास्पद आन्दोलनों को उनके अत्यन्त पड़ोस में मुसलमानों की उपस्थिति से बड़ी प्रेरणा मिली। मुसलिम समाज के उदाहरण से हिन्दुओं के अविवेकपूर्ण निर्णय को बल मिला।

बहुत-से सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई जिन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म को मिलाने तथा उनकी धार्मिक कर्म-पद्धतियों, उनके सिद्धान्तों और धर्म सम्बन्धी दूसरे बाह्य लक्षणों पर बल दिये बिना ही दोनों धर्मों के भक्तों के लिए एक मिलन-स्थान प्रस्तुत करने का यत्न किया। कबीर तथा दादू और नानक एवं चैतन्य का यही उद्देश्य था। उन लोगों ने स्वतन्त्रतापूर्वक हिन्दुओं और मुसलमानों का धर्म-परिवर्तन किया और समान रूप से जटिल ब्राह्मण और मुल्ला धर्मपरायणता को त्याग दिया।

इसी प्रकार, सूफी आन्दोलन ने भी हिन्दुओं और मुसलमानों में से अधिक

विद्वान् और धर्मनिष्ठ लोगों के लिए एक सार्वजनिक मंच प्रस्तुत किया। मध्यकालीन भारत के उपर्युक्त जन-धर्मों की भाँति सूफी धर्म का प्रसार कभी भी अपढ़ जनता तक नहीं हुआ। संकुचित विचारों से मुक्त दार्शनिकों, लेखकों तथा रहस्यवादियों के लिए सुरक्षित यह सार रूप में एक विशिष्ट धर्म—प्रायः एक बौद्धिक एवं भावनात्मक मनोरंजन—था। सूफी धर्म की पूर्वी शाखा मुख्य रूप से हिन्दू वेदान्त की ही एक शाखा है और अकबर के समय से भारत में इसका द्रुत गति से प्रसार एवं विकास हुआ।

हिन्दुओं ने फारसी भाषा में एक बहुत बड़े सूफी साहित्य को जन्म दिया। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से यह निम्नकोटि का था, फिर भी भारतीय जनता में, विशेष रूप से सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में, इस धर्म का व्यापक प्रसार हुआ। हो सकता है यह राजनीतिक व्यवस्था तथा मुग़ल-साम्राज्य के पतन के फलस्वरूप आर्थिक ह्रास से बचने के लिए एक शरण-स्थान के रूप में हो। ये जन-प्रिय धर्म तथा सूफी दर्शन शासक और शासित वर्ग को परस्पर निकट लाने को प्रस्तुत हुए।

४. समाज, भवन-निर्माण-कला एवं कला पर मुसलिम प्रभाव

पाँचवें, उत्तरी भारत में आधुनिक हिन्दू-समाज के शिष्टाचार की बहुत-सी बातें इस्लाम के प्रभाव के ही कारण विद्यमान हैं जिसने कुछ हद तक मध्यम श्रेणी के लोगों के पहनावे और जन-साहित्य में भी परिवर्तन कर दिया था। फिर भी जनसाधारण इससे प्रभावित न हुआ।

इसके अतिरिक्त आखेट, श्येन (बाज) को सिखलाने की कला और बहुत-से खेल पद्धति और पारिभाषिक नामों की दृष्टि से मुसलमानों जैसे हो गये। फारसी, अरबी और तुर्की शब्द अधिक संख्या में हिन्दी, बँगला और मराठी भाषा में भी प्रवेश कर गये। इसी प्रकार का प्रभाव अंग्रेजी जीवन और भाषा पर नॉर्मन विजय के फलस्वरूप हुआ था।

आंशिक रूप में तुर्की द्वारा तथा उससे कम अंश में ईरान द्वारा, यूरोप का अनुकरण कर, मुसलमानों ने युद्ध-कला का अत्यधिक विकास किया। हिन्दू-काल के राजा तुच्छ सेनाओं अथवा बहुत-से तुच्छ सैनिक-वर्गों के संगठन का नेतृत्व किया करते थे। किन्तु मुग़ल सम्राट् एक प्रधान के आदेशों का पालन करने वाली एक महती सेना रखते थे जिसका प्रबन्ध करने के लिए बहुत बड़ी संगठन-शक्ति और क्षमता की आवश्यकता थी। इसने, इस प्रकार, हिन्दू-काल में सम्भव अवसरों की अपेक्षा सेनापतित्व के प्रदर्शन का अधिक अवसर

प्रदान् किया। केवल संगठन की दृष्टि से (वास्तविक कार्यक्षमता से भिन्न, युद्ध साधन के रूप में), मध्यकालीन एशियायी स्तर के अनुसार, मुग़ल सेना का प्रत्येक विभाग प्रायः पूर्ण था।

सभ्यता की सामान्य प्रगति तथा तोपों के प्रचार के स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप भारत में मुसलमानों ने दुर्गीकरण की पद्धति में बड़ी उन्नति की थी।

मुसलिम शासन ने भवन-निर्माण-कला में भी स्पष्ट प्रगति की थी। हिन्दू राजाओं ने अपने धन तथा कौशल को मन्दिरों पर ही अधिक व्यय किया। उनके सभी प्रासाद नष्ट हो चुके हैं और यह प्रतीत होता है कि वे उच्च अथवा बहु-मूल्य ढाँचे वाले न थे। किन्तु मुसलमानों ने मसजिदों के अतिरिक्त प्रासादों और मकबरों का भी निर्माण करवाया था। अर्द्ध-वृत्तीय चमकदार मेहराब और मेहराबदार गुम्बद विशेष रूप से मुसलमानी हैं और इसी प्रकार के ज्यॉमितीय ढंग से प्रदर्शित उद्यान भी हैं।

ललित कला के क्षेत्र में मुसलमानों की बहुमूल्य देन चित्रकला की भारत-अरबी प्रणाली है। मुग़लों ने बुखारा और खुरासान के मार्ग द्वारा चीनी चित्र-कला को भी अपनाया था और अकबर के दरबार में यह कला देशी हिन्दू चित्र-कला से मिल गयी थी जिसकी परम्पराएँ उपेक्षा और निर्धनता के मध्य जीवित थीं। इस एकीकरण का फल यह हुआ कि चीनी लक्षणों का द्रुतगति से लोप हो गया और अस्वीकृत न किये जाने योग्य विदेशी कलायुक्त चित्रों को विशुद्ध भारतीय रूप दिया गया। [स्टडीज इन मुग़ल इण्डिया, पृ० २९०-२९१] इस प्रकार चित्रकला में एक सच्ची चेतना का प्रादुर्भाव हुआ और मुग़लकाल में इस क्षेत्र में हमारे कलाकारों ने उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रदर्शन किया। यह शैली 'भारतीय कला' अथवा 'मुग़ल चित्रकला' के नाम से अब भी विद्यमान है। तथाकथित राजपूत-प्रणाली केवल मुग़ल अथवा हिन्दू पौराणिक अथवा काव्य विषयों से युक्त भारत-अरबी प्रणाली है। इनकी 'बनावट' भिन्न थी, किन्तु कला अथवा शैली भिन्न न थी।

इस प्रकार साधारण रूप से मुसलिम शासन ने और विशेष रूप से मुग़ल-साम्राज्य ने मध्यकालीन भारत के लिए बहुत-सी महान् और सुन्दर चीजें उपलब्ध की थीं। फिर भी यह असफल क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर देने के निमित्त हम लोगों के लिए भारत में मुसलिम राज्य की सबलता और निर्बलता की जाँच कर लेना आवश्यक है।

५. भारत में मुसलिम-स्थिति की शक्ति के तत्त्व

भारत में मुसलमानों को सर्वप्रथम विजित तथा विदेशी लोगों के बीच समान भाषा, परम्परा, धर्म, उपदेशक, राजनीतिक स्तर रखने का लाभ प्राप्त था। जातिगत भेदों की अनुपस्थिति तथा इस्लाम की प्रजातन्त्रीय प्रवृत्ति ने विजयी सम्प्रदाय को भ्रातृत्व के सूत्र में बांध दिया और उन्हें एक कर दिया। यही कारण था कि मुसलिम भारत के राज्यों ने अठारहवीं शताब्दी में अपने अधःपतन के पूर्व, विदेशी आक्रमणों के समय, प्रायः एक अद्वितीय एकता का परिचय दिया था। भारत के मुसलिम शासकों की शक्ति का दूसरा स्रोत यह था कि उन्होंने प्राचीन ग्राम-शासन पद्धति तथा हिन्दुओं के समय की भूमि-कर वसूल करने की प्रणाली को कायम रखा और माल-विभाग में अधिकांश हिन्दू अधिकारियों को ही नियुक्त किया। इसका फल यह हुआ कि हमारे करोड़ों ग्रामीणों का जीवन, राजधानी में राजवंशीय परिवर्तनों के होने पर भी, स्थिर रहा और उनके पास अपने नये स्वामी से असन्तुष्ट होने तथा उनके विरुद्ध उठ खड़े होने का कोई कारण न रहा।

६. नवागन्तुक मुसलमानों का भारतीय हो जाना

किन्तु भारत में आक्रमण करने वाली मुसलिम जाति के ठहरने की लम्बी अवधि के कारण उनकी विदेशीयता नष्ट हो गयी और इससे उन पर एक विशुद्ध भारतीय छाप लगा दी और यहां तक कि सत्रहवीं शताब्दी के आगे भारतीय मुसलमानों को बुखारा, ईरान अथवा अरब के नवागन्तुकों को अपने समाज में प्रसन्नतापूर्वक खपाना उत्तरोत्तर कठिन हो गया। (यह परिवर्तन भारतीय जलवायु के प्रभाव से उनके डील-डौल और रंग में अपकर्ष (deterioration) आ जाने के कारण स्पष्ट था।) भारतीय मुसलमानों ने बहुत-सी भारतीय प्रथाओं, विचारों, खाद्य-पदार्थों (विशेष रूप से पान), वेष-भूषा और एक भारतीय भाषा अर्थात् हिन्दुस्तानी [ज़बाने हिन्दवी, भारतीय ज़बान] को भी अपना लिया था। इस भाषा का व्याकरण सम्बन्धी ढाँचा यद्यपि संस्कृत का सा है किन्तु इसकी शब्दावली हिन्दी शब्दों के अतिरिक्त फारसी और अरबी शब्दों से पूर्ण है। इस प्रकार शताब्दियों के क्रम में भारतीय मुसलमान बाह्य अरबी जगत् के अपने भाइयों से लगभग पूर्ण रूप से पृथक् हो गये। भारत में आये हुए बाद के मुसलमान स्थानीय जनों में मिल गये किन्तु यह केवल दो या तीन पीढ़ियों के समाप्त होने पर ही सम्भव हो सका। इस अवधि के भीतर उन

लोगों ने स्पष्ट रूप से भारतीय आचारों को अपनाकर और विदेशी विशेषताओं को त्याग दिया था।

विशाल रूप से अत्यधिक हिन्दू तत्त्वों और विशुद्ध भारतीय वातावरण के बीच इस देश में शताब्दियों तक निवास करने के कारण मुसलमान धीरे-धीरे कुछ बातों में देशी जनों के साथ घुल-मिल गये। भारतीय मुसलमानों ने अधिक संख्या में स्थानीय स्त्रियों के साथ विवाह किया और ऐसे असंख्य लोगों की सामाजिक समानता स्वीकार की जिन्होंने हिन्दू धर्म (अथवा पतित बौद्ध धर्म) को त्यागकर अपना धर्म-परिवर्तन कर लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी रक्त-विशुद्धता और उनके विशिष्ट जातीय लक्षण शीघ्र ही नष्ट हो गये। उन लोगों ने बहुत-सी हिन्दू प्रथाओं, विचारों और जीवन के तरीकों को भी अपना लिया। मध्यकालीन जनप्रिय धर्म, सूफी मत, उर्दू भाषा तथा भारत-अरबी कला विजित और विजेताओं की समान सम्पत्ति थी, और ये सब उन्हें सांस्कृतिक रूप से आत्मसात् करने के लिए (to blend) प्रस्तुत हुए किन्तु जाति-प्रथा की पत्थर सदृश कठोर दीवारों ने उन्हें पृथक् ही रखा। बहुत-से मुसलमान साधु (पीर) निम्न वर्ग के हिन्दुओं द्वारा पूजे गये और विख्यात मुसलिम संत शिवाजी तथा महादजी सिन्धिया जैसे हिन्दू धर्म-परायण नायकों द्वारा सम्मानित किये गये। बंगाल तथा दूसरे प्रदेशों की अनभिज्ञ मुसलमान जनता, जहाँ पर कोई जागरूक सुधारक मुल्ला न था, हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहारों तथा जनप्रिय ग्राम देवताओं के सम्मान में हुए उत्सवों में उसी प्रकार भाग लेती थी जिस प्रकार अभी हाल तक बिहार में निम्नजाति के हिन्दू मुसलमानों के साथ मुहर्रम के अवसर पर निकाले गये जुलूस में पूर्ण जोश के साथ भाग लिया करते थे।

इस प्रकार, जहाँ प्राचीन धर्म-पुस्तकें तथा कट्टर सिद्धान्त दोनों सम्प्रदायों को पृथक् रखते थे, वहाँ उसी भारतीय क्षितिज के अन्तर्गत एक समान लक्ष्य तथा जीवन की हिताहित की बातों ने, कट्टर सुल्तानों अथवा बादशाहों द्वारा समय-समय पर छेड़े गये (जिहाद) धार्मिक युद्धों के अतिरिक्त, उन्हें परस्पर निकट खींच लिया था।

अवध सिविल सर्विस के एक अनुभवी सदस्य श्री एच० सी० इरविन ने अपने सूक्ष्म विश्लेषण में स्पष्ट किया है—"कि विभेद की सबसे चौड़ी रेखा जो हिन्दू आचारों को मुसलमानों से पृथक् करती है...अन्ततोगत्वा इस आधार पर बनी हुई है कि हिन्दू मस्तिष्क, विचारों की प्रवृत्ति तथा जीवन का ढंग निराशात्मक

योग धर्म पर आश्रित है और उसी के साँचे में ढला हुआ है; जबकि मुसलमानों की ये बातें सुखान्तक आनन्दवाद के धर्म की प्रभुता से प्रभावित हैं।...हिन्दुओं के सदाचार का आदर्श विशेष रूप से संन्यास और काम एवं इच्छाओं के दमन तथा अप्रधान रूप से शुभ कर्म में निहित है...। उनका स्थायित्व किसी अच्छी वस्तु की आशाहीनता का फल है किन्तु मुसलमानों के सदाचार के आदर्श की उत्पत्ति किसी निश्चित स्तर तक के भौतिक सुख के सन्तोष तथा संकीर्ण विचारों से होता है जिसके ऊपर वह उठने का यत्न नहीं करता है।

"सज्जनता, दब्बूपन तथा शिकायत न करने वाली धीरता के साथ-साथ मस्तिष्क की असंगतता एवं उद्देश्य की अस्थिरता हिन्दुओं की मुख्य विशेषताएँ हैं।...इन गुणों में से प्रथम तीन गुणों का जो कुछ भी अंश मुसलमानों में विद्यमान है, उसको उन्होंने मुख्यतया अपने हिन्दू पड़ोसियों के लम्बे सम्पर्क... अथवा शायद मूल हिन्दू धर्म से प्राप्त किया है। अन्तिम दो गुणों का थोड़ा-सा अथवा कुछ भी अंश उसमें नहीं है क्योंकि वह व्यावहारिक, तर्कसंगत, तीक्ष्ण दृष्टि वाला तथा पर्याप्त दृढ़ है किन्तु सब का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित है। ...मुसलमानों के विचार कठोर और अपरिवर्तनीय होते हैं।"

"फिर भी, ये बातें पूर्ण रूप से अवध के मुसलमानों के एक छोटे-से वर्ग के लिए ही चरितार्थ होती हैं जो हिन्दू सम्पर्क के प्रभावों से लगभग पूर्णतः बच गया है।...(इस वर्ग में) मुख्य रूप से कुछ नगरों में रहने वाले पुराने तथा धनी लोगों के वंशज हैं। ग्रामीण तथा निम्न वंश के मुसलमान अधिक मात्रा में हिन्दुओं जैसे हो गये हैं। ब्रिटिश शासन की दबाने तथा परस्पर मिलाने वाली शक्ति के अन्तर्गत सम्मिश्रण का क्रम जारी है। [गार्डन ऑव इण्डिया (१८८०), पृ० ५८-६०]

७. राज्य के अन्तर्गत छिन्न-भिन्न करने वाली शक्तियाँ

भारत में मुसलिम साम्राज्य का प्रसार किसी संगठित केन्द्रीय शक्ति की प्रत्यक्ष कार्यवाही की अपेक्षा अकेले मुखियाओं एवं साहसी व्यक्तियों द्वारा हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ पर सैद्धान्तिक बादशाह के रूप में सदैव एक वैधानिक सुल्तान हुआ करता था; किन्तु उत्साही एवं उन्मादपूर्ण सेनानायक इस केन्द्रीय शासन के केवल नाममात्र के ऋणी थे, जिन्होंने सीमा के बाहर हिन्दू प्रान्तों को जीता था और जो सुल्तान के एक शब्द द्वारा हटाये जाने योग्य केवल वेतन-प्राप्त नौकर होने के स्थान पर साधारणतः अपनी सेना तथा अपने कोष के स्वामी थे। मेकॉले ने पोप के सम्बन्ध में लिखे अपने

प्रसिद्ध लेख में इस बात का वर्णन किया है कि किस प्रकार रोमन कैथोलिक चर्च नये लोगों का धर्म-परिवर्तन करने के लिए अपने सामान्य पादरी के पद को काम में लगाये बिना ही असम्बद्ध अथवा अस्वाभाविक धर्मोन्मत्तों के उत्साह का प्रयोग करता है और इन उत्साहियों के ऐच्छिक कार्यों से पूरा लाभ उठाता है। प्रसार और जीत के समय मुसलिम भारत के केन्द्रीय राजा की भी इसी प्रकार की नीति थी। उसने अपने धर्म के दुस्साहसी व्यक्तियों के साथ उत्तम सम्बन्ध स्थापित किया था और अपना निजी जन और धन व्यय किये बिना ही उनके साहसपूर्ण उपक्रमों तथा लवलीन प्रयासों से लाभ उठाया था। इसके साथ ही साथ उन्हें अपने अति अधीन करने अथवा उनके द्वारा विजित एवं शासित प्रान्तों पर अत्यन्त कठोर नियन्त्रण करने के लिए हठ न कर उन्हें प्रसन्न रखता था।

यह व्यवस्था उस समय तक सुचारु रूप से कार्य करती रही जिस समय तक नये प्रदेश जीतने के लिए शेष रहे। किन्तु जब मुसलमानों का प्रसार पूर्व और दक्षिण की ओर अपनी अत्यन्त दूरस्थ सम्भव सीमा तक पहुँच गया, तो विद्रोह, षड्यन्त्र, बादशाहों की हत्या तथा उत्तराधिकार के लिए अराजकतापूर्ण युद्ध साधारण बातें हो गयीं क्योंकि मुसलिम विजय की प्राचीन योजना ने स्थानीय स्वायत्त शासनाधिकार की दिशा में एक विघटनशील अथवा छिन्न-भिन्न करने की भावना को अपनी देन के रूप में छोड़ रखा था। राजवंशों के बार-बार होने वाले इन परिवर्तनों तथा भयानक गृह-युद्धों ने सभ्यता के विकास, देश की आर्थिक उन्नति तथा संस्थाओं के विकास में बाधा पहुँचाई। लैटिन भाषा की एक कहावत भी है कि "शस्त्रों के बीच विधि शान्त है।"

८. जनता का उत्तरोत्तर पतन

इस्लाम धर्म में वंशानुगत धनिक वर्ग न था क्योंकि निजी सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्राप्त न थी। प्रत्येक अमीर की भूमि एवं उसकी निजी सम्पत्ति उसकी मृत्यु के पश्चात् राज्य द्वारा जब्त कर ली जाती थी। इनका यदि कोई अंश उसके पुत्र को मिल जाता था तो यह बादशाह की केवल अनुकम्पा होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस नियम ने प्रयास को शिथिल कर दिया और इसके साथ-साथ इसने सभ्यता अर्थात् अतीत के धन-संग्रह को भविष्य के विकास के लिए प्रयोग करने के आधार को ही नष्ट कर दिया। ऐसे समाज में सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर थीं। एक अमीर द्वारा स्थापित आर्थिक उन्नति एवं स्थिति उसकी मृत्यु के पश्चात् धूल में मिल जाती थी और

उसके पुत्र को अपने पिता द्वारा की गयी उन्नति का लाभ उठाने योग्य हुए ही विना नये सिरे से एक साधारण व्यक्ति की भाँति अपना जीवन आरम्भ करना पड़ता था। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी एक मुसलिम देश के अत्यन्त छोटे से छोटे उद्भव से भाग्य बनाने तथा मृत्यु होने पर राज्य द्वारा मृत व्यक्ति की निजी सम्पत्ति की जब्ती से उसके जीवन भर की कमाई नष्ट होने और उसके पुत्रों को निर्धन व्यक्तियों की स्थिति में करने का क्रम जारी रहता था।

यह तो रही धनी वर्ग की वात। जहाँ तक साधारण जनता का प्रश्न था, मुसलिम राज्य ने राष्ट्र को शक्तिशाली वनाने, राष्ट्रीय चरित्र का विकास करने अथवा लोगों की आर्थिक उन्नति को निश्चित करने का यत्न नहीं किया था। विचारों की स्वतन्त्रता न थी और दरवार में निम्नकोटि की चाटुकारिता की आशा की जाती थी तथा उसे प्रोत्साहन दिया जाता था। यही कारण था कि भारतीय मुसलमानों में साहित्य तथा कला के क्षेत्र में कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति न उत्पन्न हुआ।

यदि हम सुदूर दक्षिण के कुछ मन्दिरों को पृथक् कर दें तो राजदरवार ही संस्कृति का एकमात्र केन्द्र तथा ललित कला का एकमात्र शिशुगृह था। किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र का इससे लाभ नहीं होता था और दरवार प्रश्रय (patronage) का रचनात्मक प्रतिभाओं (creative genius) पर वड़ा वुरा प्रभाव पड़ता था। इसीलिए मध्यकालीन भारत में हिन्दू और मुसलमान साहित्य एवं कला प्रजातान्त्रिक यूनान अथवा इंगलैण्ड के उत्पादन से वहुत पीछे रहा।

९. हिन्दुओं के स्वाभाविक विकास की अवरुद्धि

मुसलिम शासन ने हिन्दुओं के विकास को अवरुद्ध कर दिया। विजय के आरम्भ में हमारे मठ और वड़े-वड़े मन्दिर लूट लिये गये और इस प्रकार हिन्दुओं के विद्या-मन्दिर नष्ट कर डाले गये। किसी भी शक्तिशाली हिन्दू राजा को संस्कृत विद्वानों एवं लेखकों का संरक्षक वनाने के लिए नहीं छोड़ा गया। इसका फल यह हुआ कि संस्कृत विद्या मध्यकालीन भारत से स्वतः ही लुप्त-सी हो गयी। इसका जो कुछ भी अंश वच रहा, वह विशेष अनुपयोगी न था और इसमें तर्कशास्त्र की सूक्ष्मताओं, धार्मिक कृत्यों के विस्तार, धार्मिक विधियों के नये संस्करण, प्राचीन पुस्तकों की टीकाओं और टीकाओं की टीकाओं का संग्रह मात्र था। इस प्रकार उत्तरी भारत १२०० ई० से लेकर १५५० ई० तक वौद्धिक दृष्टिकोण से मरुस्थल ही रहा। केवल अकवर के

राज्यकाल में ही हिन्दी में तुलसीदास तथा बँगला में वैष्णव लेखकों के कारण एक महान् हिन्दू साहित्य पुनः रचा गया किन्तु वह केवल यहाँ की देशी भाषा में ही था। अकबर ने ही एक सच्चे राष्ट्रीय दरबार की स्थापना और उसी के अधीन भारतीय ज्ञान का महान् उत्थान हुआ।

१०. भारतीय मुसलमानों का अपकर्षण

मुग़लकालीन भारतीय इतिहास के सूक्ष्म अध्ययन से मुसलिम सामन्तशाही एवं भारत में बसे हुए मध्यम वर्ग के द्रुतगति से पतन का स्पष्ट आभास हो जाता है। इस पतन की तीव्रता एवं निश्चितता अंशतः हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान धर्म को अपनाने वाले लोगों एवं ईरान अथवा मध्य एशिया से आये हुए नवागन्तुकों की प्रतिभा तथा आचरण से आवृत्त थी। किन्तु यह और भी अधिक विचित्र बात है कि अन्तिम दोनों वर्गों के पौत्रों का भारतीय भूमि पर आशातीत पतन हुआ।

इस विचित्र बात का प्रधान कारण वर्णशंकरों की अनियन्त्रित और निम्न-कोटि की उत्पत्ति तथा सभी कुलों, जातियों तथा सभ्यताओं की स्त्रियों से पूर्ण अन्तःपुर का पोषण था। इनकी सन्तानें विशुद्ध हिन्दुओं, ईरानियों अथवा तुर्कों की अपेक्षा अत्यन्त निम्नकोटि की बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करती थीं।

मुग़ल-साम्राज्य द्वारा देश को प्रदत्त शान्ति और व्यवस्था के साथ-साथ अत्यधिक धन होने के कारण उच्च वर्ग के मुसलिम लोगों में विलासिता घर कर गयी थी और शासक वंश के होने के नाते उनकी स्थिति से उनमें दर्प और आलस्य भी आ गया था। वंशानुगत अमीरी की पतनोन्मुख होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और यह क्रम केवल सेना, व्यावहारिक प्रशासन तथा दूसरे प्रकार के स्वस्थ कार्यों में कठिन परिश्रम करते यथा एक प्रजातान्त्रिक देश के स्वतन्त्र जन-जीवन अथवा दुस्साहसिक एवं अनुसन्धानात्मक कार्यों में भाग लेने से ही रोका जा सकता है। किन्तु मुग़ल अमीरों के पुत्रों में इन सुधारात्मक बातों की कमी थी, जिन्हें सम्राट् उनके पिता की अर्जित सम्पत्ति का एक भाग सदैव छोड़ दिया करता था और उन्हें उनके वंश के कारण अच्छा ऊँचा पद दे दिया करता था।

भारतीय मुसलमान अपनी मातृ भाषा के रूप में फारसी अथवा तुर्की भाषा को कायम न रख सके और इस पर भी उन लोगों ने साहित्यिक उद्देश्यों के निमित्त किसी भारतीय भाषा को नहीं अपनाया। उन्हें जबाने-हिन्दवी (अर्थात् हिन्दुस्तानी) में लिखने में लज्जा होती थी जिसे वे अपने घरों, कार्या-

लयों, मुहल्लों तथा शिविरों में बोलते थे। जबकि हिन्दुस्तानी उसकी मातृभाषा थी, भारतीय मुसलमान सरकारी पत्रव्यवहार, गम्भीर एवं ललित साहित्य तथा शिष्ट व्यवहार में फारसी भाषा से चिपके रहने का तीव्र एवं नाशक यत्न लगभग १८७० ई० तक करते रहे। इस समय हिन्दुस्तानी उनकी साहित्यिक भाषा के रूप में स्पष्ट रूप से स्वीकृत थी। भाषा की यही कठिनाई भारतीय मुसलमानों की साहित्यिक वन्ध्यापन (barrenness) का कारण थी और इसने मुग़लकाल में वास्तविक शिक्षा के प्रसार की गति को बहुत धीमा कर दिया था।

भारत के और विशेष रूप से तुर्की और अफ़ग़ान नस्ल के मुसलमान सैन्य-वंश के थे किन्तु वे न तो अत्यन्त बुद्धिमान ही थे और न व्यवसायी ही थे। इसीलिए जब उनकी विजय अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँच गयी तो उनका पतन आरम्भ हो गया।

अमीरों के अन्तःपुर में स्त्रियों के अधःपतन के कारण उनके बच्चों का अधःपतन होना स्वाभाविक था। अरब और ईरान की अपेक्षा भारत में इस दोष ने अधिक निकृष्ट रूप धारण कर लिया था जहाँ पर केवल थोड़े-से ही लोग एक से अधिक पत्नी रखने की क्षमता रखते थे। ये पत्नियाँ प्रायः अपने पतियों के ही वंश की होती थीं।

११. प्रगति एवं आत्म-सुधार की भावना के अभाव के कारण मुग़ल-साम्राज्य का पतन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का विद्यार्थी इस तथ्य से चकित हुए बिना नहीं रह सकता है कि अठारहवीं शताब्दी में मुग़ल-साम्राज्य का निराशाजनक पतन हुआ यद्यपि इसके पास उत्तम से उत्तम साधन उपलब्ध थे और इसने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भारत के लिए बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था। अठारहवीं शताब्दी में मुग़ल सभ्यता एक नष्ट बन्दूक की गोली की भाँति थी और मुग़ल-साम्राज्य का पतन केवल समय की बात थी यद्यपि उस समय भारत में कोई नादिरशाह अथवा अहमद अब्दाली नहीं आया था।

सभी पूर्वी देशों के राजतन्त्रात्मक राज्यों की प्रवृत्ति एवं ब्रिटिश साम्राज्य जैसे एक आधुनिक शिष्ट साम्राज्य की प्रवृत्ति का अन्तर ही इस पतन का सर्वप्रथम कारण है। ऐसे आधुनिक साम्राज्य के भीतर एक स्व-आलोचनात्मक एवं सुधारात्मक प्रवृत्ति रहती है। इसीलिए पतन के नये दोषों तथा स्रोतों का शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है और उनके असाध्य होने के पूर्व ही उनका प्रबन्ध

कर दिया जाता है। पूर्वी राजतन्त्रात्मक राज्यों अथवा रोम तथा मैसीडोनिया जैसे प्राचीनकाल के यूरोपीय राजतन्त्रात्मक राज्यों में ऐसी व्यवस्था न थी।

दूसरे, पूर्वी राजतन्त्रात्मक राज्य प्रधान रूप से सम्राट् के व्यक्तित्व पर और किसी अंश तक शासन करने वाले अल्पसंख्यकों के चरित्र पर आश्रित हैं। दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्य प्रजातन्त्रात्मक है; इसमें समस्त ब्रिटिश जाति तथा उसमें लुप्त दूसरी जातियों का अधिकांश विश्व पर अधिकार है। इस पर किसी अकेले राजा अथवा अकेले परिवार का अधिकार नहीं है। यही कारण है कि यदि एक पीढ़ी का शासन करने वाला ब्रिटिश परिवार दूसरी पीढ़ी में भ्रष्ट हो जाय तो उसका स्थान लेने के लिए ब्रिटिश जाति में से नये तथा योग्य शासक निकल आते हैं। दूसरी ओर, मुग़लकालीन भारत में यहाँ पर पैदा हुए मुसलमानों का पतन तेजी से हुआ और यह आश्चर्यजनक था। इसे कोई वस्तु रोक न सकी क्योंकि उस समय न तो जन-शिक्षा ही थी, न जनता में इस सम्बन्ध में वाद-विवाद ही होता था और न किसी प्रकार का सामाजिक सुधार ही था। खैबर दर्रे के उस पार से आने वाले योग्य साहसी व्यक्तियों का आयात भी बन्द हो गया जिन्होंने अकबर और शाहजहाँ के शासनकाल के वैभव में योग दिया था। भारत के शासक परिवार के पतन को न तो असंख्य स्थानीय लोगों में से और न विदेशों से आये हुए थोड़े-से व्यक्तियों में से नये लोगों द्वारा रोका जा सका।

मुग़ल शासन का सबसे घातक दोष यह था कि इसने देश में सदैव सैन्य शासन के लक्षणों को ही कायम रखा और एक राष्ट्र अथवा एक सजातीय राज्य का निर्माण करने का यत्न नहीं किया। शाहजहाँ के स्वर्णयुगीन आगरा और दिल्ली के वैभव से हमें यह तथ्य नहीं भूल जाना चाहिए कि मुग़ल सम्राटों ने राजनीतिक मूलभूत सिद्धान्त (महान् लोगों के बिना महान् साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता) का कभी भी अनुसरण नहीं किया था। उन सम्राटों में सबसे अच्छे सम्राट के अन्तर्गत भी महान् मन्त्रियों एवं सेनानायकों के बावजूद, अतीत के सबसे बुरे दिनों की भाँति, समस्त जनता 'मानव भेड़ों' के ही समान रही। जिन अंग्रेजों ने भारतीय नवाबों और महाराजाओं को उखाड़ फेंका था, चाहे वे मुट्ठी ही भर रहे हों और उनमें से कुछ पेशेवर सैनिक भी न रहे हों, उनके पीछे ब्रिटिश प्रजातन्त्र की सामूहिक प्रतिभाओं एवं स्रोतों का एक वृहत् भण्डार था, जबकि हमारे नवाबों और महाराजाओं के पीछे थोड़े-से स्वार्थी अनुयायियों तथा किराये के सैनिकों के अतिरिक्त कोई न था।

उन लोगों ने विदेशी आक्रमणकारियों का किसी प्रकार का भी राष्ट्रीय विरोध न किया।

बगदाद के आरम्भिक अब्बासी खलीफाओं के दरबार में बुद्धिवादी (मुतज़ल) आन्दोलन के पतन के पश्चात् व्याख्या-कृत इस्लाम धर्म अत्यन्त जटिल, अनुरोध-शून्य तथा वातावरण के परिवर्तनों के अनुकूल अपनाने के अयोग्य हो गया। इसमें काल्विनवाद की भाँति एक अत्यन्त कट्टर धर्म की सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ आ गयी थीं। इस्लाम की इसी जटिलता के कारण सभी देशों में उसके अनुयायी किसी सीमा तक सफल होने में समर्थ रहे। किन्तु वहीं पर वे रुक गये जबकि प्रगति ही जगत् के जीवन का सिद्धान्त है। इसी समय जबकि यूरोप निरन्तर प्रगति कर रहा था, स्थिर मुसलमान उनकी अपेक्षा पीछे हट रहे थे और प्रति वर्ष ज्ञान, संगठन, एकत्र स्रोतों तथा अर्जित क्षमता में यूरोप और एशिया के बीच बड़ा अन्तर होता जा रहा था। इससे एशिया वालों को यूरोप वालों से मुकाबला करना अत्यधिक कठिन हो गया था। मुग़ल-साम्राज्य पर अंग्रेजों की विजय यूरोप के राष्ट्रों द्वारा समस्त अफ्रीका और एशिया के अवश्यम्भावी अधिकार का केवल एक अंश है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि प्रगतिशील जातियाँ रूढ़िवादी जातियों का स्थान उसी प्रकार ग्रहण कर रही थीं जिस प्रकार उद्योगी परिवार निद्रालु निरुद्योगी परिवारों का अपने समाज के नेतृत्व में स्थान ग्रहण करते हैं। इसलिए यदि हम अपने देश के इतिहास-अध्ययन से लाभ उठाना चाहते हैं तो हम आगे आयें और पंक्तिबद्ध हो जायें तथा इस महान् संसार को परिवर्तन के चक्करदार नाले में गहराई में तेजी के साथ बहने दें।

भारत के लिए ब्रिटेन का मुख्य रूप से सबसे बड़ा उपहार राजनीतिक है; आर्थिक उपहार तो केवल गौण है। वे व्यक्ति के लिए उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा और (उत्पादन तथा सेवा की) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता हैं। इन सबों ने पवित्र तथा सुविधाजनक न्यायालयों, योग्य पुलिस, यान्त्रिक आयात-निर्यात तथा एकसे सिक्के की अपेक्षा भी आधुनिक भारत की आर्थिक दशा की अधिक उन्नति की है। दूसरी ओर मुग़लकालीन भारत वस्तुतः एक सैन्य-शासन-प्रणाली के अन्तर्गत था और वह भी अर्द्ध-घुमक्कड़ लोगों द्वारा संचालित होता था। इस राजनीतिक तथ्य ने उस युग में हमारी आर्थिक स्थिति को पूर्णतः अपने अधीन कर लिया था। घुमक्कड़ जाति के शासकों के अधीन प्रजा का अवर्णनीय बौद्धिक एवं चारित्रिक पतन ही महान् मुग़लों के समय की कल्पित स्वर्ण-भूमि

की वास्तविक आर्थिक संकट की एकमात्र व्याख्या है। भारत ने आर्थिक क्षेत्र में भी ब्रिटिश शासन के राजनीतिक अथवा आर्थिक प्रभावों से भिन्न अन्य प्रभावों से अधिक लाभ उठाया है—अर्थात् व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, अधिकारों की सुरक्षा, और इन सबसे बढ़कर प्रगति की उस प्रवृत्ति तथा जनता की 'दास-भावना' के उस निवारण का लाभ जिसके लिए हम पश्चिमी शिक्षा, आंग्ल-विधि तथा आंग्ल-समाज के सम्पर्क के ऋणी हैं। "कान्फ्युसस के सिद्धान्तों को अनुसरण" करने की अपेक्षा इनके द्वारा भारतीय अपने राष्ट्रीय विकास की चरमसीमा पर पहुँचने के योग्य होंगे।

अध्याय १६

जानकारी के स्रोत

१. आईने अकबरी की आलोचना

मुग़ल शासन-पद्धति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का सर्वोत्तम ज्ञात स्रोत अबुल फजल की आईने अकबरी है। यद्यपि यह ग्रन्थ बाद की सरकारी हस्त-पुस्तिकाओं का मूल और कुछ अर्थों में आदर्श ग्रन्थ है, किन्तु फिर भी इसमें बहुत-से दोष हैं। भारत में यह अपनी कोटि का प्रथम ग्रन्थ था और इसकी रचना उस समय हुई थी जिस समय नवनिर्मित मुग़ल शासन अर्द्ध-तरलावस्था (half-fluid condition) में था। अतः अधिक समय के जमे हुए शासन के अनुभवी अधिकारी जिस प्रकार कार्य करने के अभ्यस्त थे, उस प्रकार की बातों को कहने की अपेक्षा अबुल फजल हम लोगों से केवल वही बातें कहता है जिनका पालन करना ही एक अधिकारी का उद्देश्य होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि वह लोगों के समक्ष शासन की वास्तविक कार्य-प्रणाली का सच्चा विवरण प्रस्तुत न करके एक आदर्श वस्तु प्रस्तुत करता है। इस पर भी, वह एक दम्भी अलंकारशास्त्री (rhetorician) है और जब वह एक तथ्य का उल्लेख करता है तो उसे अलंकारों के आवरण तथा अस्पष्ट भावों से आच्छादित कर देता है। इसलिए उसका ग्रन्थ शासकीय ढांचे का सही एवं विस्तृत चित्र प्रस्तुत करने में अधिक सहायता नहीं देता है। किन्तु जहाँ तक सांख्यिकीय भाग का सम्बन्ध है वह विस्तृत और शुद्ध है। जब हम आईने अकबरी के वर्णनात्मक भागों को पढ़ते हैं तो तथ्यों की अस्पष्टता एवं असत्यता के विचार से दुखी हो जाते हैं।

जैसा कि डब्ल्यू० क्रुक लिखते हैं, "जो कोई भी अकबर के शासन के विश्वकोशीय ऐतिहासिक ग्रन्थ आईने अकबरी को पढ़ता है, उसमें से किसी भी विभागीय स्वरूप के किसी अभाव को समझने में असफल नहीं हो सकता है। अकबर विस्तार का स्वामी था; किन्तु यहाँ पर इस विस्तार को उसकी चरमसीमा तक पहुँचा दिया गया है। इसमें हमें शिविर एवं राज्य-परिवार,

किन्तु उस समय से मैंने एक अच्छी दस्तूरुल अम्ल का अनुकरण और अध्ययन किया है। इसकी एक पाण्डुलिपि इण्डिया ऑफिस (लन्दन) के पुस्तकालय में 'फारसी सं ३७०' है। इसके दोनों सिरे खराब हैं। दूसरी ब्रिटिश म्यूजियम ओरिएण्टल सं० १६४१ है। यह पूर्ण है किन्तु इसका नाम ज़वाबिते आलमगीरी अथवा 'सम्राट् औरंगजेब के नियम' है। विभिन्न पाण्डुलिपियों से नकल करने के कारण नामों और तथ्यों में अन्तर होने के अतिरिक्त उसी पुस्तक की नकलों की दो पाण्डुलिपियाँ और हैं। उनमें सम्राट् के शासनकाल के तैंतीसवें अर्थात् १६९० ई० वर्ष तक के अंक दिये गये हैं जबकि मुग़ल-साम्राज्य बीजापुर, गोलकुण्डा और रायगढ़ (मराठा राजधानी) पर बलपूर्वक अधिकार कर लेने तथा इन तीनों राज्यों को दिल्ली राज्य में मिला लेने के पश्चात् अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया था। जगजीवनदास और राय छतरमल के ग्रन्थों में केवल अठारहवीं शताब्दी के मध्य के बाद के आँकड़े मिल सकते हैं। इनमें से अन्तिम का उल्लेख मैंने १९०१ ई० में प्रकाशित अपनी 'इण्डिया आॅव औरंगजेब' नामक पुस्तक में किया है।

ये दस्तूरुल अम्ल अथवा सरकारी पुस्तकें विभिन्न प्रान्तों की मालगुजारी, उनकी तहसीलों की संख्या, साम्राज्य के विभिन्न नगरों के बीच दूरी, राजदरबार में सरकारी दस्तावेजों से सम्बन्धित नियम, विभिन्न दीवानों के कार्यालयों को भेजे जाने वाले दस्तावेजों, राज्य के कुल व्यय, मनसबदारों तथा अन्य सैन्य-दलों की संख्या, मुसलिम तथा हिन्दू अमीरों एवं गायकों की साधारण उपाधियों, बख्शियों और दीवानों के कार्यों का विभाजन, खानसामा, बुयुतात, मीरआतिश, बर्कन्दाजों और दलों के अन्य विशेष वर्गों के मुशरिफ तथा अहदीस के बख्शी के कार्यों एवं सरकारी कार्यपद्धति, उच्च दीवान के कार्यालयों और उसके द्वारा, सम्राट् के यहाँ से प्राप्त, उसके पास उत्तर में भेजे गये, तैयार किये गये, दस्तखत किये गये अथवा सम्राट् के समक्ष प्रस्तुत किये दस्तावेजों, शाहजादों और मनसबदारों के नकद वेतनों से सम्बन्धित सूक्ष्म नियमों, अश्वारोही सेना के अश्वों को दागने और नाल लगाने के नियमों, साधनों के आधार पर अधिकारियों के वर्गीकरण, छुट्टी और समय से अधिक ठहरने की छुट्टी से सम्बन्धित नियमों, तथा एक अधिकारी के पद के अनुसार जागीर अधिकार में रखने वालों के भुगतान और विभिन्न श्रेणियों के मनसबदारों के बोझा ढोने वाले जानवरों के चारे के लिए अनुदान को व्यवस्थित करने के सम्बन्ध में हमें कम से कम शब्दों में परिचय कराती हैं।

इसके उपरान्त हमें (विभिन्न स्थानों में प्रचलित) बाँटों के कोष्ठक, भारत के बहार के विभिन्न देशों के सिक्कों का विनिमय-मूल्य, साम्राज्य के किलों की सूची, श्रेणी के अनुसार मनसबदारों की संख्या, पदोन्नति, पदच्युति तथा रुग्णावकाश से सम्बन्धित नियम—संक्षेप में वेतन सम्बन्धी सभी प्रकार के नियम, यूरोपीय बन्दूकचियों, खाई खोदने वालों तथा तोपचियों का विशेष वेतन [**जवाविते आलमगीरी, पृ० ६०ब–६२ब**], बन्दूक वाले फौजी सिपाहियों को बारूद-प्रदाय (सप्लाई) [**जवाविते आलमगीरी, पृ० ६३अ**], अस्त्र-शस्त्रों का वर्गीकरण, जजिया की दर, समुद्री यात्राओं के लिए अनुकूल मौसमों की सूची [**जवाविते आलमगीरी, पृ० ६७अ–६८अ**], ईरान की मालगुजारी, विभिन्न राजकुमारों, राजकुमारियों एवं अमीरों की जब्त की हुई सम्पत्ति, ईरान से प्राप्त उपहारों की सूची, शाही कोषागारों का धन [**जवाविते आलमगीरी, पृ० १२३२ब**], कारखानों की सूची [**जवाविते आलमगीरी, पृ० १३२ब-१३३अ**], औरंगजेब द्वारा हटाये गये आववावों तथा उसके द्वारा घोषित अवैधानिक प्रथाओं की सूची [**जवाविते आलमगीरी, पृ० १३५अ–१३७अ**], औरंगजेब के समय के दकन के कुछ किलों के वर्णन के साथ-साथ बीजापुर, गोलकुण्डा आदि के घेरे के समय उसके सैनिक उपकरणों का विस्तृत विवरण तथा सम्राट् के दकन सम्बन्धी अभियानों के विषय में और अधिक विवरण और उसके दकन के प्रान्तों से सम्बन्धित आँकड़े मिलते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इस दस्तूरुल अम्ल में कितनी अधिक उपयोगी और अत्यन्त नवीन सूचनाएँ एकत्र कर दी गयी हैं। दुर्भाग्य से दोनों पांडुलिपियाँ बहुत बुरी तरह से लिखी गयी हैं।

प्रसन्नता की बात यह है कि कुछ के सम्बन्ध में हम दस्तूर को बाद के एक ग्रन्थ से शुद्ध और पूरा कर सकते हैं जो भारत-ईरानी साहित्य का अपने ढंग का एक निराला ग्रन्थ है। मेरा तात्पर्य मीराते अहमदी अथवा गुजरात प्रान्त के अन्तिम शाही दीवान अली मुहम्मदखाँ द्वारा लिखित 'गुजरात के इतिहास' से है जो १७६१ ई० में पूरा किया गया था। लेखक ने अपने कार्यालय में सुरक्षित इस प्रान्त के अधिकारियों के नाम भेजे गये बहुत-से शाही फरमानों की पूर्ण प्रतियाँ दे दी हैं। इस दृष्टि से यह पुस्तक प्रामाणिक दस्तावेजों पर आधारित सही सूचनाओं की एक सच्ची खान है। दूसरे ग्रन्थों में दिये हुए इन में से कुछ फरमानों के पाठों की तुलना करने से अली मुहम्मदखाँ की ईमानदारी और कार्य-प्रवृत्ति सिद्ध हो जाती है। परिशिष्टांक अथवा तृतीय जिल्द में

प्रान्तीय शासन के प्रत्येक विभाग, अधिकारियों के कार्यों, कारखानों की कार्य-पद्धति, कोषागारों, करारोपण, वेतन तथा मालनिर्णय विस्तृत विवरणों तथा व्यक्तिगत जीवन-चरित्रों के सम्बन्ध में सूक्ष्म सूचनाएँ दी हुई है।

३. अधिकारियों के कर्त्तव्यों का रजिस्टर

मुग़ल शासन-पद्धति की जानकारी का बहुमूल्य स्रोत १७१५ ई० में (मुनेर के शाह अहमद मुनव्वर के शिष्य) हेदायेतुल्ला बिहारी द्वारा लिखा गया हेदायेतुल कवायद नाम का एक अत्यन्त दुर्लभ ग्रन्थ है। यह अधिकारियों के कर्तव्यों आदि के सम्बन्ध में एक उपदेश-पुस्तक के उद्देश्य से लिखी गयी थी।

हमें ज्ञात है कि अरब शासन के अन्तर्गत मिस्र ने अधिकारियों द्वारा लिखे गये बहुत-से ग्रन्थों को प्रकाशित किया था जो प्रशासन के छात्रों के लिए बड़े ही महत्त्व के हैं। "मुसब्बीहि सरकारी कागजों की (एक बहुत बड़ी) सम्पत्ति देते हैं। इब्नतुवैर में फातिमी दरबार के शिष्टाचार के अत्यन्त सूक्ष्म विवरण से यह विदित होता है कि दरबार की औपचारिकता की एक पुस्तक से उसकी नकल की गयी है। व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर इब्न मम्मती दीवानों के लिए नियमों का उल्लेख करता है और इसके पश्चात् अल-ओमरू एक उच्च न्यायालय का रजिस्टर प्रस्तुत करता है। इसी नमूने का एक अत्यन्त पूर्ण ग्रन्थ कल्काशन्दी का ग्रन्थ है। अन्तिम रूप से इब्न दुकमक तथा इब्न दजियान जैसे लेखक सरकारी परिभाषों के कागजों का प्रयोग अथवा उनकी प्रतिलिपि तैयार करते है। [एनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम, जिल्द २, पृ० २२]

हेदायेतुल कवायद में सूक्ष्म निर्देश है कि मुग़ल शासन के विभिन्न अधिकारियों को किस प्रकार आचरण करना चाहिए, उनसे किन कर्तव्यों के पालन की आशा करनी चाहिए, उन्हें क्या सतर्कता बरतनी चाहिए और उन्हें कौनसे कागज तैयार करने चाहिए अथवा किन कागजों की दो प्रतियाँ तैयार करनी चाहिए। यह एक कथनोपकथन के रूप में है। प्रत्येक भाग इस उक्ति के साथ आरम्भ होता है कि किसी पद (उदाहरणार्थ, फौजदारी) के लिए एक इच्छुक व्यक्ति उस कार्य में दक्ष व्यक्ति से पूछता है कि "अपने स्वामी को सन्तुष्ट करने, लोगों को प्रसन्न करने तथा अपने लिये एक अच्छा नाम और वैभव प्राप्त करने के लिए मुझे किस प्रकार कार्य करना चाहिए ? और विशेष गुणों की एक लम्बी सूची के साथ उसे उत्तर मिलता है। एक नवनियुक्त व्यक्ति को इन्हीं गुणों का अभ्यास करना चाहिए। (इस सूची के साथ-साथ) उसे उसके पद के कार्य की वास्तविक पद्धति, उसके आकर्षणों एवं खतरों के सम्बन्ध में भी

उत्तर मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्तर का एक अंश आदर्श अथवा साधारण नेक परामर्श है किन्तु इसका अधिकांश यथार्थ अनुभवों तथा मुग़ल शासकों के बहुत समय से देखे हुए व्यवहारों पर आधारित है। यहाँ पर हमें उस शासन का भीतरी दृश्य दिखायी देता है जो केवल सैद्धान्तिक लेखों में नहीं मिल सकता है।

हेदायेतुल कवायद की विषय-सूची :—ईश्वर, पैगम्बर और संरक्षक फकीर की प्रशंसा—लेखक तथा पुस्तक लिखने का अवसर—विषय-सूची पाँच 'बाबों' में विभक्त है—जो ४६ फस्लों में पुनः विभाजित हैं। प्रथम बाब में पूर्ण पुरुष (इंसाने कामिल), दर्विशों, सुल्तान, वकील और वजीर, खानसामा, बख्शी, गुसलखाने (स्नानागार) तथा दीवानखाना के दारोगा, सूबेदार, फौजदार, तोपखाने के दारोगा, मिंगबाशी (बन्दूकधारी सैनिकों का कप्तान) का वर्णन; द्वितीय बाब में सद्र, काजी, मुफ्ती, मुहतसिब, बाजार के मूल्य के निर्धारक, संवाददाताओं, बख्शी के पेशकार, नौकरों के पसन्द करने की क्रिया, अमीन, करोड़ी, कोतवाल, मीरे इमारत (भवनाध्यक्ष), मुशरिफ का वर्णन; तृतीय बाब में कचहरी आदि के ग्यारह तरह के दारोगाओं का वर्णन; चतुर्थ बाब में मुसाहिबों, किस प्रकार मालिक अपने नौकरों तथा माता-पिता अपने बच्चों के साथ व्यवहार करें, दूसरों के साथ व्यवहार करने के ढंग, दरबार आदि में जाने के ढंग, रहन-सहन, व्यय, वेशभूषा का वर्णन; पंचम बाब में यात्रा, जमादार, नाजिर, कार्यालयों के क्लर्कों (लिपिकों), मुस्तौफी, कानूनगो, जमींदार, दृश्यों (तमाशों) के दर्शकों का वर्णन है।

इस ग्रन्थ की केवल तीन पाण्डुलिपियाँ ज्ञात हैं—(१) इण्डिया आफिस पुस्तकालय, लन्दन को विलियम इरविन द्वारा अपनी मृत्यु के समय दी गयी पाण्डुलिपि, जहाँ इसे हेदायेतुल कवायद कहते हैं; (२) अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अब्दुस समद का संग्रह, जहाँ इसे हेदायेतुल कवानीन की संज्ञा दी गयी है; और (३) पटना के एक प्राचीन कायस्थ परिवार से प्राप्त मेरी पाण्डुलिपि जिसके आरम्भ के दो पन्ने और अन्त के चार पन्ने नहीं हैं। यह एक छोटी पुस्तक है जिसके प्रत्येक पृष्ठ में बारह और तेरह पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक पंक्ति केवल पौने तीन इंच लम्बी है। यह पुस्तक १६० पृष्ठों अथवा ८० फोलियो की है (जिनमें से प्रथम दो और अन्तिम चार गायब हैं।)

४. अन्य स्रोत

सोलहवीं शताब्दी के अकबरनामा से लेकर १७०९ ई० के बहादुर-

शाहनामा तक मुग़ल सम्राटों के दरबार के लम्बे ऐतिहासिक अभिलेखों में शासकीय नियमों अथवा कार्य-पद्धतियों में किये गये परिवर्तनों और नवीनीकरणों से सम्बन्धित सूचनाओं का संग्रह है।

अन्य पाण्डुलिपियों (उदाहरणार्थ निगारनामाये मुंशी[२] तथा इंशाये हर-करन) में अधिकारियों को उनके पदों पर नियुक्त करने से सम्बन्धित विशिष्ट पत्रों के रिक्त प्रपत्र दिये हुए हैं। ये उनके कार्यों की व्याख्या करते हैं।

शासन और अकबर के दरबार का फादर मान्सेरेयिट का ब्यौरा (अंग्रेजी अनुवाद, पृ० २०३-२१२, न्याय, पृ० २०६-२११) तथा डेलेट द्वारा दिया गया दरबार का अत्यन्त संक्षिप्त सन्दर्भ (अंग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ ६३-६६) अत्यन्त अल्प और सूक्ष्म है। मनुची अपनी पुस्तक स्टोरिया डु मोगोर, जिल्द २, पृ० ३२६-३६०, ४१५-४२१ और ४४६-४५२, में मुग़ल शासन-पद्धति, दरबार तथा समाज का वर्णन करता है जो यद्यपि संक्षिप्त और प्रायः आडम्बरपूर्ण है किन्तु आलोचना और व्यक्तिगत पर्यवेक्षण के लिए बहुमूल्य है। औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों के दरबार के समाचार-पत्रों में, जिन्हें अखबाराते-दरबारे मौला कहते थे, हमें शासकीय नियमों तथा पद्धति के वास्तविक प्रभावों के अनेक उदाहरणों का प्रासंगिक उल्लेख मिलता है। राजवादे तथा दूसरे लोगों द्वारा मुद्रित मराठी लेख (जिनमें अधिकांश कानूनी निर्णय तथा व्यक्तियों, अधिकार-पत्रों आदि से सम्बन्धित आदेश हैं) दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं। इनमें से अधिकांश सत्रहवीं शताब्दी के बाद के हैं।

(हारुन-अल-रशीद के अधीन बगदाद के प्रधान काजी) अबू युसुफ इब्न याकूब की 'किताबुल खराज' नामक पुस्तक में कट्टर हनफी सम्प्रदाय की मुसलिम संस्थाओं एवं प्रथाओं के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख है।

मुग़ल शासकीय प्रणाली के वास्तविक लक्षणों के अध्ययन के निमित्त एक अपरिहार्य पुस्तक है जो हैदराबाद (दकन) के रिकॉर्ड आफिस द्वारा प्रकाशित है और जिसका नाम "सलैक्टैड डाकूमिण्ट्स ऑव शाहजहाँ रेन" है। इसमें

नासिरुद्दीनखाँ, संचालक, दफ्तरे दीवानी, १९५०, की भूमिका है। इसमें १६२७ से लेकर १६५७ ई० तक के अनेक प्रकार के सरकारी अभिलेखों का मूल पाठ (कुछ के चित्र) और अंग्रेजी अनुवाद दिया हुआ है। इनके साथ ही साथ प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या तथा फरमानों अथवा भू-अनुदानों सम्बन्धी आदेशों से सम्बन्धित पूर्ववर्ती विस्तृत रीतियों के पालन का विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में मुग़ल सम्राटों तथा उनके अधिकारियों द्वारा निष्क्रान्त बहुत-से सरकारी कागज जयपुर राज्य के अभिलेख रक्षालय में सुरक्षित हैं। ये केवल हैदराबाद के संग्रह के आकार से कई गुने बड़े ही नहीं हैं अपितु अधिक उच्चकोटि और अत्यधिक महत्त्व के भी हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध अधीनस्थ राजकुमारों और उच्च सेनानायकों से है न कि निम्नकोटि के स्थानीय अधिकारियों से (जैसा कि हैदराबाद के रिकार्डों की दशा है)। इन दोनों अभिलेख रक्षालयों की सहायता से एक आधुनिक छात्र मुग़ल-साम्राज्य के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों का अनुमान कर सकता है।